प्रकाशक—
भारतीय अरुणोदय, प्रयाग ६

मिलने का पता—
शुभ तारायन, ६०२, दारागंज, प्रयाग

मुद्रक—
माधो प्रिंटिंग वर्क्स
बैरहना, प्रयाग

भूमिका

'वहता पानी' एक समस्यामूलक उपन्यास है। मनोरंजक घटनाओं के विकास के साथ-साथ इसमें शुद्धि के वर्तमान स्वरूप की खरी आलोचना की गई है। स्त्री-स्वातन्त्र्य का जो स्वरूप, अंगरेज तथा मुसलमान लोग भारत के लिए अतीव हितकर मान बैठे हैं, हिन्दू समाज के कल्याण की दृष्टि से वह कितना अहितकर है, स्त्रियों में शौकीनी की वृद्धि हमारे जीवन को कितना कृत्रिम, कितना दुर्व्यसनी बना रही है, शिक्षा केवल जीवन-निर्वाह का साधन न होकर जीवन में सत्य की खोज के प्रति प्रयत्नशील होनी चाहिये; इन वातों की इसमें इतनी अच्छी समीक्षा की गई है कि लेखक की विचार-शीलता की जितनी सराहना की जाय, थोड़ी है।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, कथानक, चरित्र-चित्रण तथा भाषा की प्राञ्जलता की दृष्टि से यह उपन्यास हिन्दी-साहित्य की शोभा है। लेखक का प्रथम उपन्यास बाबू साहब पढ़कर हमारे एक मित्र ने कहा था—'इस लेखक में अद्भुत शक्ति है। आश्चर्य नहीं, जो यह एक दिन प्रेमचन्द जी का स्थान छीन ले।' उस समय उनकी इस सम्मति को सुनकर मुझे विस्मय तो हुआ ही था, कुतूहल भी कम नहीं हुआ था। किन्तु आज इस उपन्यास को पढ़कर मुझे उन मित्र की परख की बात बार-बार याद आ रही है। यदि परिस्थितियों ने योग दिया, तो वह दिन दूर नहीं है, जब लेखक अपने उचित सम्मान का अधिकारी होगा ही। कोई भी बाधा उसकी इस प्रखर प्रतिभा के आगे खड़ी रह सकेगी, इसमें सन्देह है।

दारागंज
प्रयाग } **भगवतीप्रसाद वाजपेयी**

निवेदन

इस उपन्यास के पाठकों से मेरा एक अनुरोध है; वे पहले इसे मनोरंजन के लिए पढ़ें, किन्तु बाद को भारतीय समाज की एक ऐसी समस्या को हृदयंगम करने के लिए भी पढ़ें जो प्रत्येक क्षण हमारी दूरदर्शिता का आह्वान कर रही है। इस उपन्यास के समस्त पात्र कल्पित हैं, किन्तु उनका जीवन हमारे समाज के जीवित व्यक्तियों का जीवन है; यदि कमी है तो केवल इसी बात की कि कमला जैसी लड़कियाँ ही नहीं दिखायी पड़तीं। ऐसी लड़कियाँ हमारे समाज में उत्पन्न हों और उनकी संख्या बढ़ती चले, इसी उद्देश्य से इस उपन्यास की रचना की गयी है; साथ ही यह भी ईश्वर से प्रार्थना है कि उन्हें जीवन की ऐसी परिस्थितियाँ न प्राप्त हों जिनमें उनको आत्महत्या के लिए विवश होना पड़े।

—गिरीश

शिकायत किया करती हो सो उसका कारण केवल यही है कि इन असहाय बच्चों की सूरतें देखकर मेरा हृदय दया, ममता से ऐसा भर जाता है कि इन्हें सामने दुखी देखकर मैं अपना जेब खाली किये बिना रह नहीं सकता। मैं उन विद्यार्थियों की सहायता करता हूँ जो अपने घर से पढ़ने के लिए रुपया-पैसा नहीं पा सकते। ये मुझे दादा कहते हैं और मैं इनके इस प्यार-भरे सम्बोधन से कृतार्थ हो जाता हूँ।'

सन्तान की यह दार्शनिक परिभाषा करुणा देवी के शोक को घटाने की जगह बढ़ानेवाली थी। वे उद्वेग के कारण आकुल स्वरों में बोलीं, 'यह सब सही है, लेकिन कहीं ओस चाटने से प्यास बुझी है, औरों की सन्तान से कोई सन्तान वाला बन सका है? मैं तुम्हें दान देने से नहीं रोकती, तुम्हारे दया के कार्य में बाधक होना नहीं चाहती, लेकिन अपना अपना ही है, पराया पराया ही है। देखो न, चपला को भी तो तुम अपनी ही सन्तान समझते थे।'

यह कहने के साथ ही करुणा देवी के होंठों पर नैराश्य और व्यंग-सूचक एक हलकी मुसकराहट आ गयी और वे उनके मुख की ओर स्थिर दृष्टि से देखने लगीं। दीनानाथ के हृदय के अत्यन्त मार्मिक स्थल पर आघात करके इस दृष्टि ने उसमें एक भीषण कोलाहल सा उत्पन्न कर दिया। क्या मेरा सम्पूर्ण जीवन असफल हो गया? क्या जीवन में सन्तानोत्पत्ति का इतना बड़ा महत्व है?—ये प्रश्न अपने सम्पूर्ण भयावह स्वरूप में दीनानाथ के सामने उपस्थित होकर उनकी समस्त विद्या-बुद्धि, तर्क-विवेक को परीक्षा की कसौटी पर कसने लगे।

इसी बीच में नौकर शिवराम ने सवेरे दस बजे की डाक लाकर दीनानाथ के हाथ में दे दी। दीनानाथ बहुत ध्यान से पत्रों को देखने लगे; उन्हें बचाव की बहुत अच्छी जगह मिल गई।

करुणा देवी कुछ देर बेकार बैठी रहने के बाद घर में काम-काज देखने जाने लगीं तो दीनानाथ ने रोक कर कहा—'माँ, तुमसे एक सलाह करनी है, जरा बैठो तो।'

करुणा देवी बैठ गईं। दीनानाथ ने कहा—'माँ मुझे लखनऊ में यहाँ से अधिक वेतन की नौकरी मिल रही है, राय हो तो वहीं चले चले, यहाँ तो पूरा नहीं पड़ता।'

क०—'बेटा, यहाँ पूरा पड़ने की बात तो न कहो। घर का खर्चा १००) माहवारी से ज्यादा नहीं है। लेकिन तुम्हारे हाथ में आने पर वेतन अधिक हो या कम सब एक सा ही है, क्योंकि तुम रुपये इधर उधर बाँट दोगे और फाकेमस्त बने रहोगे। यहाँ से जाना व्यर्थ है। यह तीर्थ स्थान है। और कुछ न सही, यही समझ के सन्तोष कर लेती हूँ कि तीर्थवास कर रही हूँ। यहाँ सब लोगों से जान-पहचान भी हो गई है; घर का सा व्य-वहार हो गया है। इसलिए, जब तक कोई बहुत बड़ा लाभ न हो, यहाँ से जाना मुझे पसन्द नहीं है।'

दी०—'माँ, अब मैं यह अच्छी तरह समझ गया हूँ कि यदि गरीबों को सहायता देना पवित्र कार्य है तो क़र्ज लेना भी एक पाप है। मैं झूठ कभी नहीं बोलना चाहता, लेकिन जब वादे की तारीख़ पर रुपया इकट्ठा नहीं हो पाता और तक़ाजेवाले आ धमकते हैं तब मेरी जैसी दुर्दशा होती है और जिस प्रकार झूठ का सहारा लेने पर ही मेरा छुटकारा होता है उसे मेरा ही जी जानता है। लखनऊ चलने पर मैं अपना पूरा वेतन तुम्हारे हाथों मे रख दूँगा। तुम जितना उचित समझना मुझे गरीबों के लिए देना।'

इसी समय नीचे सड़क पर से आवाज आई—प्रोफेसर साहब, प्रोफेसर साहब!

बहता पानी

दीनानाथ अपने कमरे में बैठकर एक पुस्तक पढ़ रहे थे, इतने में उनकी माँ करुणा देवी आकर उनके सामने चटाई पर बैठ गईं। दीनानाथ ने कहा—'माँ कोई काम है क्या?'

करुणा देवी ने उत्तर दिया—'बेटा, मैं तुमसे एक बात कई दिनों से पूछना चाहती हूँ, लेकिन अभी तक कोई अवसर नहीं मिला। तुम्हारा चेहरा आज कल उतरा रहता है, भूख भी कम लगती है और जितनी लगती है उतना भी खाते नहीं हो। इसका क्या कारण है?'

दी०—'माँ तुम व्यर्थ ही घबराती हो, मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं है। यही आज कल कर्ज बहुत चढ़ गया है, उसी को चुका देने की चिन्ता रहा करती है।'

करुणा देवी ने बात काट कर कहा—'ना बेटा, यह सच नहीं है। अपनी माँ से झूठ मत बोलो। कर्ज क्या तब कम था जब डिप्टी रघुनाथ प्रसाद की बदली नहीं हुई थी और तुम उनके यहाँ नौ दस बजे रात तक बैठे रहते थे? रोज रोज

तुम्हारे देर से आने के कारण बहू अलग नाराज होती थी और मैं अलग ही भुनभुनाती थी ।'

दी०—"माँ, तुम तो जानती ही हो, मैं डिप्टी साहब की उस भोली-भाली छोटी लड़की को कितना मानता था । सीधी होने पर भी वह कितनी नटखट थी, उसकी बोली कितनी प्यारी थी, उसका चिढ़ना कितना मनोरंजक था । इसके सिवा दस बरस की लड़की होते हुए भी वह पढ़ने-लिखने में तेरह-चौदह साल की ऊँची कक्षाओं की लड़कियों के भी कान काटती थी; स्मरण-शक्ति इतनी अच्छी कि एक बार समझा दो तो शायद जन्म भर न भूले । उसे प्यार न करना असम्भव था, और माँ, मैं उसे बहुत प्यार करता था । उसे अपनी ही बेटी समझता था । उसके चले जाने से जरूर मैं उदास हो गया हूँ । किसी काम में जी नहीं लगता । कालेज में पढ़ाने का काम भी ठीक ठीक नहीं कर रहा हूँ । माँ, ऐसा जान पड़ता है, जैसे किसी ने मेरे शरीर में से प्राण ही निकाल लिया हो ।'

करुणा देवी की आँखों से आँसू की धारा बह निकली ।

दीनानाथ ने घबरा कर पूछा—'माँ, तुम रोती क्यों हो ?'

करुणा देवी ने आँचल की छोर से आँसुओं को पोंछते हुए कहा, -'बेटा, जब भीतर आग सुलगती है तब गरम गरम आँसू तो आप ही आ न निकलते हैं; उन्हें कोई रोक नही सकता । आज घर में आये बहू को बारह वर्ष हो गये, लेकिन भगवान ने उसकी गोद नहीं भरी । न जाने उनकी क्या इच्छा है ।'

यह कहकर फिर से आँखों में उमड़े हुए आँसुओं को करुणा देवी पोंछने लगीं ।

दीनानाथ ने कहा—'माँ, मेरे सन्तान नहीं हैं तो क्या हर्ज है ? मै देश के समस्त अनाथ बच्चों को अपनी सन्तान समझता हूँ । सच कहता हूँ, माँ, तुम जो बारम्बार मेरे खर्चीले हाथ की

चपला, श्यामकिशोर, और गायत्री आदि को भी देखे हुए छः महीने से ऊपर हो गये। चलो, उनसे भेंट भी हो जायगी।'

दीनानाथ ने उत्तर दिया—'माँ, मैं उन्हें चिट्ठी लिख चुका हूँ। यह भी लिख चुका हूँ कि सूर्य्यग्रहण के बाद आवेंगे, क्योंकि मैं जानता था कि उसके पहले तुम नहीं चल सकोगी। लेकिन माँ, यह तो बताओ, चपला के लिए क्या उपहार ले चलूँ? मुझे देखते ही जब वह मेरे पास दौड़ती हुई आकर गले से लिपट जायगी और कहेगी - 'चाचा, मेरे लिए क्या लाये हो,' तब मैं उसे ऐसी कौन सी चीज दूँगा जो उसने आज तक देखी नहीं। माँ, मैं यही कई दिनों से सोच रहा हूँ, लेकिन अभी कुछ स्थिर नहीं कर सका हूँ।'

क०—'भैया, है भी कठिन बात, मुझे भी तो नहीं सूझता कि कुछ बताऊँ। कारण, वह किसी गरीब की बेटी तो है नहीं; उसने देखने लायक कौन चीज न देखी होगी, पहनने लायक कौन चीज न पहनी होगी, और खाने लायक कौन चीज न खायी होगी? उसे किस बात की कमी है? सन्तान भी अधिक नहीं कि उसके माँ बाप उसका लाड़-प्यार कम करें, केवल दो लड़कियाँ, एक लड़का।'

दी०—'माँ, तुम गलत कह रही हो,तीन भी नहीं,केवल दो। तुम शायद कमला को चपला की सगी बहिन समझती हो, यह भ्रम है। वह वास्तव में एक अनाथ बालिका है। यह तो तुम जानती ही हो कि डिप्टी साहब कट्टर और उत्साही आर्य-समाजी हैं। उन्होंने सोचा कि अगर इस लड़की की परवरिश हमारे समाज का कोई व्यक्ति नहीं करेगा तो वह सहज ही ईसाइयों या मुसल्मानों के हाथ में पड़ जायगी; इसी भाव से उन्होंने उसे अपने घर में शरण दे दी। विशेष प्रशंसा की बात यह है कि दो होनहार सन्ततियों के रहते हुए भी उसे डिप्टी

साहब ने बहुत दया और प्रेम के साथ पाला-पोसा है। यहाँ तक कि उनके व्यवहार से यह नहीं जान पड़ता कि कमला उनकी लड़की नहीं है।'

क०—'तो इसी से सोच लो भैया, जो पराये बच्चे के साथ इतना प्रेम करता है वह अपने बच्चे के साथ कितना प्रेम करेगा !'

दी०—"नहीं माँ, यह मैं स्वीकार नहीं कर सकता कि डिप्टी-साहब चपला से मुझसे अधिक प्रेम करते हैं। उनकी पहली सन्तान श्यामकिशोर है और उसी को उन्होंने अपने हृदय का पहला प्यार दिया होगा। और माँ, मेरी पहली सन्तान तो चपला ही है न।'

क०—'बेटा, यह सब कहने-सुनने की बातें हैं।

इसके बाद उन्होंने मन ही मन कहा—हाय राम ! मौत के दिन बैठी गिन रही हूँ, लेकिन भैया की गोद में एक बच्चा देखने की साध पूरी होती नहीं दिखाई देती।

फिर बोलीं—'बेटा, मेरी एक बात मानोगे ?'

दी०—'माँ, तुम्हारी कौन सी आज्ञा का पालन करने से मैं चूका ? मैंने कौन सा अपराध किया है जो तुम इस तरह मुझसे पूछ रही हो ?'

क०—'बेटा, मैं बारम्बार सोचती हूँ कि तुम्हारा एक दूसरा विवाह हो जाय तो शायद मेरी वह आशा भी पूरी हो जाय जिसका पूरा होना अभी तक मै गूलर का फूल दिखायी देने के बराबर समझती हूँ। क्या तुम इसके लिए तैयार हो।'

दी०—'माँ, इन बातों में क्या रखा है ? क्यों मुझे और भी झंझट में डालना चाहती हो। एक ही औरत को मैं गले में बँधी हुई ढोल के बराबर समझता हूँ, क्या तुम्हारी इच्छा है कि और एक ब्याह करके मैं हिलडुल भी न सकूँ ?'

दीनानाथ कमरे में से बाहर निकल कर कोठे के बाजे पर खड़े हो गये। देखा तो एक छोटी सी मोटर खड़ी थी, उसमें पन्द्रह-सोलह वर्ष की एक लड़की बैठी थी। पोशाक से वह ईसाई लड़की मालूम हो रही थी। उन्होंने पूछा—'मुझे किसने आवाज दी?' इतने में एक युवक, जो मकान के दरवाजे के पास खड़ा होकर आवाज दे रहा था सामने सड़क पर आ गया।

दीनानाथ ने उसे देख कर कहा—'शिवप्रसाद! क्या तुम्हीं यह मोटर लेकर आए हो?'

शिव०—चलिए, आज आपको शहर के बाहर घुमा लावें। यह मोटर हमारे नये डिप्टी कलेक्टर साहब ललिताप्रसाद सिंह की है। और ये मृणालिनी देवी उन्हीं की एक मात्र कन्या हैं, जिन्हें पढ़ाने का भार मुझे मिला है। कपड़े पहन के जल्दी चले आइए।

करुणा देवी चिक की आड़ से मोटर में बैठी हुई लड़की को बड़े ध्यान से देख रही थीं।

दीनानाथ कमरे की ओर झुके तो करुणादेवी ने कहा—'भैया ये वही डिप्टी हैं न जो बाबू रघुनाथ प्रसाद की जगह पर आये मैं। बड़े भले आदमी मालूम होते हैं, तभी तो एक नई जान-पहचान के आदमी के साथ अपनी सयानी लड़की को घूमने के लिए भेज दिया है!'

दीनानाथ ने हँसकर कहा—'माँ, इसमें भलेपन या खोटेपन की कोई बात नहीं है। ये तो ईसाई हैं, इनके यहाँ का रवाज ही ऐसा है।'

करुणा देवी ने नाक सिकोड़ कर पूछा—'भैया ईसाई तो वही क्रस्तान को कहते हैं न? क्रिस्तान तो बड़े भ्रष्ट होते हैं, कभी नहाते नहीं, सुनते हैं खाने-पीने में बड़े गन्दे होते हैं। लेकिन यह लड़की तो बड़ी साफ और सुघर दीखती है।'

रेशमी कुर्ते की बटनें गले में लगाते हुए दीनानाथ ने फिर हँस कर कहा—'माँ, सभी क्रिस्तान बुरे और गन्दे नहीं होते। कोई-कोई तो ऐसे अच्छे आदमी होते हैं कि उनके पैरों में सिर रख देने को जी चाहता है। लँगड़े, लूले और कोढ़ी सभी उनकी सेवा के पात्र होते हैं। हम लोग तो बहुत करते हैं तो एक पैसा उनके आगे फेंक देते हैं। किन्तु बहुत से क्रिस्तान हम लोगों से बहुत आगे बढ़े हुए हैं। वे उन लोगों का घाव धोते हैं, उनके दवा-दरपन का प्रबन्ध करते हैं, उन्हें पेट भर के भोजन देते हैं और हो सकता है तो पढ़ाते-लिखाते भी हैं......'

दीनानाथ की बात पूरी नही हुई थी कि नीचे से आवाज आई—प्रोफेसर साहेब !

दीनानाथ ने फेल्ट कैप सिर पर, बनारसी दुपट्टा गले में डालते हुए कहा—'माँ, अब शेप बातें लौट कर बताऊँगा।'

क०—'भैया, वदली-बूँदी के दिन हैं,जल्दी आ जाना। बहू मायके नही गई थी तब देर करके आते थे तो उतनी दिक्कत नहीं थी। मै अधिक देर तक बैठी रह नहीं सकती,बड़ी कमजोरी आगई है।'

'वहुत अच्छा'—कहकर दीनानाथ ने पैरों को स्लीपर में डाला और सीढियों पर उतरकर वे मकान के बाहर आये। तीनों को लेकर मोटर बनारस की सड़कों पर होती हुई बनारस छावनी की ओर चलने लगी।

[२]

पन्द्रह-वीस दिन में लखनऊ चलने की बात निश्चित हो जाने पर एक दिन करुणा देवी ने कहा—'बेटा, डिप्टी रघुनाथ प्रसाद के नाम एक पत्र डाल दो कि हम लोग एक सप्ताह में सूर्यग्रहण के वाद आप के यहाँ आ रहे हैं, दो तीन दिन ठहरेंगे। मेरी वहुत वड़ी इच्छा प्रयाग में त्रिवेणी-स्नान की है।

नाथ ने बैठक खोल दी और डिप्टी साहब, श्यामकिशोर, तथा चपला के साथ आकर भीतर बैठे। शीघ्र ही रामकरन ने आकर पंखा झलना शुरू कर दिया।

दीनानाथ ने चपला को गोद में लेकर पूछा—'बेटी, मेरे लिए तू इलाहाबाद से क्या लायी है?'

चपला ने उत्तर दिया—'मैं क्या लाती? आप बताइए कि आप मेरे लिए क्या ले आने वाले थे?'

दी०—'तू ही बता, तुझे क्या चाहिए?'

च०—'सच सच बता दूँ, मुझे क्या चाहिए? मुझे जरूर दीजिएगा न? पहले तीन बार कह दीजिए—हाँ दूँगा, हाँ दूँगा, हाँ दूँगा, तब कहूँगी।'

चपला की इस बात को सुनकर डिप्टी साहब और दीनानाथ दोनो हँसने लगे। फिर हँसना रोक कर दीनानाथ ने कहा—'अच्छा बता, दूँगा, दूँगा, दूँगा।'

चपला को इतमीनान हो गया। उसने कहा—'मुझे आप अपनी एक तसवीर दीजिए जो आप ही के इतनी बड़ी हो। मैं उसे अपने कमरे में टाँगूँगी।'

दीनानाथ ने यह स्वीकार कर लिया।

जिस समय दीनानाथ चपला का यह दुलार कर रहे थे, कमला भी वहीं खड़ी थी। कमला की उम्र अब बारह वर्ष की थी और पोषिता बालिका होने की अपनी स्थिति को भी वह जानती थी। प्रकृति से उसे संकोचशीलता और झिझक मिली थी उसे इस जानकारी ने थोड़ा और बढ़ा दिया था। डिप्टी साहब ने चपला के लिए कभी कोई ऐसी बात नहीं की थी जो कमला के लिए भी न की हो, गायत्री देवी का भी यही हाल था; श्यामकिशोर दोनों को बहन ही की तरह मानता था; दीना नाथ भी कमला का प्यार करने की कोशिश करते थे। लेकिन,

जो लड़की अपने मानसिक चमत्कारों को निगूढ़ उदासीनता के गढ़ में छिपाये रखना ही पसन्द करती है उसके प्रति प्यार का भाव भी अगर संकुचित हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। चपला का लाड़ करने के लहजे में दीनानाथ को कमला का ख्याल नहीं रहा। चपला की बातें खतम होने पर एकाएक उनकी निगाह कमला पर गयी। उन्होंने उसकी सरलतामयी आँखों में ईर्ष्या का निवास देखकर कहा 'कमला! यहाँ आओ!' किन्तु कमला लजाकर वहाँ से घर के भीतर भाग गयी।

अपनी मन माँगी मुराद पाकर हर्ष से नाचती-कूदती चपला घर के भीतर पहुँची तो उसकी प्रफुल्लता देखकर सब का हृदय आनन्द से नाच उठा। ठीक इसी समय कमला किसी एकान्त जगह में औरों से मुँह छिपा कर रो रही थी।

उसी दिन दीनानाथ ने एक मित्र चित्रकार को अपना तथा चपला का एक तैलचित्र बनाने का आर्डर दे दिया।

सूर्य्य-ग्रहण के बाद दीनानाथ माँ को लेकर डिप्टी साहब के परिवार के साथ ही इलाहाबाद गये। वहाँ, जैसा कि माँ ने आशा की थी, त्रिवेणी-स्नान, अक्षयवट दर्शन, तथा अन्य स्थानों की सैर करने में उन्होंने दो-तीन दिन बिताये। इसके बाद लखनऊ चले गये।

[३]

दीनानाथ को बनारस से गये तीन चार वर्ष हो गये। धीरे धीरे उनकी स्मृति धुँधली पड़ने लगी। काशी के व्यस्त दैनिक जीवन के समुद्र में वह धुँधली स्मृति भी अब ऐसी डूबी जाती थी मानो उसका कोई भी नामलेवा नहीं था। किन्तु यह प्रकृति का नियम देखा जाता है कि अंधकार की काली छाती चीरकर ही मुसकराती हुई उषा संसार में आती है। शायद इसी नियम

क०—'ना बेटा, माँ अपने बच्चे को तकलीफ नहीं देना चाहती वह तो उसकी भलाई ही की बात सोच सकती है। मैं तुम्हें बंधन में नहीं डालना चाहती। मै तो तुम्हारे बन्धन को खोल देने के लिए उतावली हूँ। मै तुम्हारी तरह पढ़ी-लिखी तो हूँ नहीं। भैया! मेरी छोटी सी बुद्धि में यही आता है कि एक सन्तान हो जाने से तुम्हारा बन्धन और टूटेगा, क्योंकि अगर लड़का लायक निकल जाय तो तुम्हारे काम में हाथ बटा सकता है, तुम्हारी गृहस्थी के बोझ को हलका कर सकता है, तुम्हारी बीमारी में दवा-दरपन करके तुम्हें सुख दे सकता है।'

ये बातें हो ही रही थीं और इनके खतम होने का कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ रहा था कि इतने ही में नीचे किसी गाड़ी के आकर ठहर जाने की आवाज कान में पड़ी। कौतूहल-वश, साथ ही माँ की बातों को टालने के इरादे से दीनानाथ एक झोंके के साथ उठे और सामने जो कुछ देखा उससे उनका हृदय एकाएक नाच उठा। गाड़ी में से बाबू रघुनाथ प्रसाद अपने परिवार-समेत उतर रहे थे और उन्हीं के बीच जीती जागती ज्योति और चंचलता की मूर्त्ति सी चपला नौकर से कह रही थी—'चाचा जी को बुलाओ।' उसे यह क्या मालूम था कि उसके इन शब्दों मे कितना जादू है और जिसको पुकारने के लिए वह इतनी उतावली कर रही है तथा जिस पर वह जादू सब से अधिक काम कर सकता है वह गद्गद्-हृदय और पुलकित-शरीर होकर उसकी मधुमय बातों को सुन रहा है।

जिस आनन्द की हमें कोई आशा नहीं रहती वह जब एकाएक आता है तब हमारी इन्द्रियों को किंकर्तव्य-विमूढ़ कर देता है। दीनानाथ थोड़ी देर के लिए स्तम्भित से रह गये। परन्तु, शीघ्र ही वे अपनी इस आनन्द-निद्रा से जागे और माँ को इस आनन्द समाचार की सूचना देते हुए नीचे की ओर दौड़े।

परन्तु, माँ को इस सूचना की आवश्यकता नहीं थी। दीनानाथ के उठने के बाद ही वे भी उत्कण्ठा के साथ चिक के पास चली गई थीं और डिप्टी साहब की सन्तति को ईर्ष्या के साथ देख रही थीं।

चपला ने ज्यों ही दीनानाथ को देखा वह आकर उनकी कमर पकड़ कर लिपट गई। कमला में संकोच और गंभीरता अधिक थी; चपला की चंचलता को उसकी अमूल्य सम्पदा समझ कर शायद रंकता का अनुभव करती हुई ही वह उदास भाव से दूसरी ओर देखने लगी। डिप्टी साहब ने आगे बढ़कर हाथ मिलाया और कहा—'दीनानाथ बाबू, देखिए आप का स्वागत करने के लिए मैं सपरिवार कितनी दूर चला आया। आप की चिट्ठी मुझे कल मिली। उसके पहले ही हम लोगों ने सूर्य्य-ग्रहण-स्नान के लिए यहाँ आने की तैयारी कर डाली थी। चपला तो यहाँ आने के लिए आसमान सिर पर उठाये हुए थी।'

दीनानाथ ने हँसकर कहा—'चपला की माँ ने आप जैसे कट्टर आर्यसमाजी पति को इतना सनातनधर्म्मी तो बनाये ही रक्खा है! सच बात यह है कि हमारा सनातनधर्म्म जो अभी थोड़ा-बहुत हमारे हृदयों का अधिकारी बना हुआ है उसका कारण देवियों का उस पर अनुराग ही है।'

डिप्टी साहब ने कुछ झेंपकर कहा—'क्या कहूँ दीनानाथजी, घर में शान्ति बनाये रखने के लिए कुछ समझौता तो करना ही पड़ता है। आप स्वयं सनातनधर्म्मी होने के कारण गृह-शान्ति का इतना अधिक आनन्द लूटते हैं कि मेरी कठिनाइयाँ आप की समझ मे नहीं आ सकतीं।'

इसी बीच मे डिप्टी साहब के नौकर रामकरन ने शिवराम की सहायता से सब सामान मकान के भीतर रखवाया। गायत्री देवी, कमला, और नौकरानी रमदेइया घर के भीतर गईं। दीना-

कोशिशें की जाने लगीं, लेकिन मृणालिनी देवी ने उस अवस्था में हिन्दू समाज को ग्रहण करना स्वीकार किया जब उसे काशी के पंडित सनातनधर्म के झंडे के नीचे स्वीकार करें। उस दशा में उसने अकेले ही नहीं, बनारस पुलिस कप्तान की कन्या कुमारी मारगरेट समेत हिन्दू धर्म्म को स्वीकार कर लेने का वादा किया। आर्य्यसामाजिक उपदेशक आपस में कानाफूसी करने लगे कि मृणालिनी से ऐसा कहलाने में उसके पिता मिस्टर सिंह की एक चाल है।

जो हो, शुद्धि-सभा वालों को सफलता नहीं मिली। दूसरे दिन बड़े समारोह के साथ ईसाइयों ने शिवप्रसाद को ईसाई धर्म्म में दीक्षित किया और शिवप्रसाद मिस्टर सिंह के यहाँ जामाता के रूप में रहने लगा।

[४]

असफलता समस्त उत्साह को ठंढा कर देती है। जिस अवस्था मे दीनानाथ और रघुनाथप्रसाद को मस्तक में असफलता की टीका लगाकर शिवप्रसाद के पतन का समाचार सुनना और शाम की गड़ी से लौटना पड़ा उसमें उनकी वेदना और निराशा का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। रेलगाड़ी के डब्बे में दोनों आदमी बैठे तो लगभग सारा रास्ता मौनता ही में कट गया, प्रयाग स्टेशन पर उतरने के समय अलबत्ता दो-चार शब्दों का विनिमय हो सका। शिवप्रसाद को गँवाकर मानों आज वे सर्वस्व गँवा चुके थे, इस नवयुवक का इतना अधिक मूल्य इन लोगों की आँखों में भी आज से पहले नहीं था।

स्टेशन पर श्यामकिशोर, चपला, कमला सभी शिवप्रसाद सम्बन्धी समाचार को जानने के लिए आये थे। लेकिन दीनानाथ और उनसे अधिक रघुनाथप्रसाद का रुख ऐसा था कि उनके कहे बिना ही सारी बात समझने वालों की समझ में आ गयी।

निस्सन्देह दीनानाथ और रघुनाथप्रसाद एक दम से गंभीर ही नहीं बने रहे, उनके चेहरे पर मुस्कराहट भी आयी, हँसी भी आयी, लेकिन प्रसन्नता के भीतर शिवप्रसाद के सम्बन्ध में सर्वथा मौन रह जाने का जो प्रयत्न छिपाये छिप नहीं रहा था वह सिद्ध कर देता था कि वास्तव में उनके हृदय में कष्ट है और उनका विनोद एक कृत्रिम प्रदर्शनमात्र है।

रात भर रह कर सबेरे जब दीनानाथ स्नानादि से निवृत्त हुए तो रघुनाथप्रसाद और श्यामकिशोर ने दीनानाथ से एक दिन रह जाने के लिए आग्रह किया; इस आग्रह में चपला ने भी सम्मिलित होकर इसे बलवान बना दिया, विशेष बात तो यह थी कि सदा गंभीर बनी रहने वाली कमला ने भी दीनानाथ को रोकने के प्रयत्न में सहयोग किया। दीनानाथ के हृदय में कभी कभी यह भाव उदित होता था कि कहीं कमला की उचित से अधिक उपेक्षा करके वे कोई बहुत बड़ा अपराध न कर रहे हों। उनका यह भाव उत्पन्न होने के साथ ही मिट भी जाता था; कमला की गंभीरता इसके विकसित और प्रगतिशील होने में प्रधान रूप से बाधक थी। किन्तु आज जब कमला अपनी प्रकृति के प्रतिकूल व्यवहार कर बैठी, तब उन्हें यह अनुभव हुए बिना नहीं रहा कि संसार में सब कुछ परिवर्त्तनशील है। इतना ही अनुरोध दीनानाथ के लिए यथेष्ट था; किन्तु शायद अब भी किसी को दीनानाथ के रुकने का विश्वास नहीं था; क्योंकि भीतर से रमदेइया ने आकर कहा—'सरकार, बहूजी ने कहा है कि आज आप नहीं जा सकेंगे, कुछ आवश्यक काम है।' उस समय श्यामकिशोर दीनानाथ के पास ही बैठे थे। रमदेइया की बात सुनकर दीनानाथ ने मुस्कराते हुए उनसे कहा - 'क्यों भाई, यह आप लोगों ने कैसा षड्यन्त्र रचा है? वास्तव में मै स्वयं भी यहाँ आज भर

की यथार्थता प्रमाणित करने के लिए दीनानाथ और डिप्टी रघुनाथ प्रसाद भी काशी में अपने अनेक मित्रों और हितैषियों को आनन्द और आश्चर्य्य के समुद्र में निमग्न करते हुए एक दिन एकाएक आ पहुंचे।

दीनानाथ और रघुनाथप्रसाद दोनों के काशी में आने का एक कारण था। समाचारपत्रों की कृपा से यह समाचार प्रयाग और लखनऊ तक भी आसानी से पहुँच गया था कि शिवप्रसाद नाम का एक कालेज-विद्यार्थी वहाँ के ईसाई डिप्टी कलेक्टर की कन्या के रूप-पाश में बद्ध होकर ईसाई धर्म्म में दीक्षित होने जा रहा है। बात साधारण सी थी, लेकिन ऐसी घटनाओं द्वारा दिन पर दिन क्षीण होती जाती हुई हिन्दू जाति का शोचनीय चित्र सामने खड़े हो जाने से हिन्दू सुधारकों को जो आत्म-स्मृति की झलक मिल जाया करती है उसका दौरा हो गया था और अनेक धारावाहिक लेखों ने हिन्दी-पाठकों को रोचक पठन-सामग्री की बहुलता से संतुष्ट कर दिया था। डिप्टी रघुनाथप्रसाद सरकारी नौकरी में होने पर भी अपने आर्य्यसमाजी भावों को छिपा सकने में असमर्थ थे। यदि वे किसी युवक को इस प्रकार हाथ से निकलते देखते थे तो उनकी छाती पर साँप लोट जाता था। ऐसी अवस्था में प्रकट रूप से वे भले ही कुछ काम न करें, लेकिन भीतर भीतर इस अवांछनीय घटना को रोकने के लिए अपना पूरा जोर लगाने के उद्देश्य से काशी आये बिना नहीं रह सके; विशेष कर यह सोच कर कि शिवप्रसाद संभवतः उनसे प्राप्त पूर्व्व सहायताओं का स्मरण करके उनका कहना मान ले। उन्होंने ही प्रयाग से एक पत्र दीनानाथ के पास लखनऊ भेज दिया था, जिससे दीनानाथ भी प्रयाग आकर उनके साथ हो लिये थे।

शिवप्रसाद-सम्बन्धी इस घटना का कशाघात पाकर कुम्भ-

कर्णी नींद सोनेवाली काशी की शुद्धि-सभा भी चेती थी; आर्य्य-समाज भवन में उसका एक विशेष अधिवेशन किया जा रहा था प्रमुख व्याख्याताओं में, जिनके नाम सूचना-पत्र में विज्ञापित किये गये थे, अध्यापक दीनानाथ का भी नाम था। स्थानीय व्याख्यानदाताओं के व्याख्यान के अनन्तर दीनानाथ की बारी आयी और जनता में अच्छी जगह पाने के लिए विशेष उत्कण्ठा बढ़ गयी।

दीनानाथ ने अपने व्याख्यान में कहा:—

"शिवप्रसाद को मै अच्छी तरह जानता हूँ। वह एक ग़रीब लड़का था। उसकी विधवा माँ ने किसी तरह उसे पाला-पोसा है। उसके ईसाई हो जाने से उस बूढ़ी माँ का जो हाल होगा, उसका ख्याल ही आने से मेरा हृदय टूक टूक हो रहा है। हमारा धर्म्म है कि पूरी कोशिश करके हम शिवप्रसाद को विधर्म्मी होने से बचाएँ। किन्तु लक्षणों से मुझे जान पड़ता है कि शिवप्रसाद बच नहीं सकेगा, क्योंकि वह कुमारी मृणालिनी देवी को त्याग नहीं सकेगा। क्या ऐसा नही हो सकता कि शिव-प्रसाद मृणालिनी के साथ ब्याह कर ले और फिर भी हिन्दू बना रहे? किन्तु शायद यह काशी के पंडितों को स्वीकार न होगा। औरों को जाने दो, स्वयं शिवप्रसाद की माता ही इस बहू को अपनाने के लिए तैयार न होगी। प्रणय का प्रथम आवेग बड़ा ही प्रबल होता है, ऐसी दशा में मुझे तो निराशा होती है, और ऐसा निश्चित जान पड़ता है कि हम शिवप्रसाद को खो देंगे।

ये थोड़े से शब्द कह कर दीनानाथ ने अपना वक्तव्य समाप्त किया। उपस्थित जनता में शिवप्रसाद और मृणालिनी देवी का वैदिक पद्धति से विवाह कर देने के पक्ष में बहुत अधिक उत्साह दिखायी पड़ा।

रह जाना चाहता हूँ; क्योंकि आज रविवार होने के कारण आप सब लोगों को छुट्टी है। इतने दिनों के बाद भेंट होने पर इतनी जल्दी चले जाने का मन आप ही नहीं होता। किन्तु मैं कर्त्तव्य और आनन्दोपभोग के द्वन्द्व के बीच में पड़ा हूँ। माँ को तो आप जानते ही हैं, हमेशा अस्वस्थ रहती हैं; किन्तु स्त्री की स्वास्थ्यसमस्या किसी भी समय चिन्ता-जनक हो सकती है, वहाँ प्रत्येक क्षण मेरा अभाव दोनों को असुविधाकर होता होगा; बेचारा शिवराम अलग ही कुड़मुड़ा रहा होगा। जो हो, आज भर तो मैं अवश्य ही रहूँगा, क्योंकि हम लोगों को अभी बहुत सी बातें करनी हैं।'

श्या०—'क्या आप लोगों पर शिवप्रसाद के ईसाई हो जाने का कोई विशेष प्रभाव पड़ा है? लेकिन आप लोगों के दृष्टिकोण में कुछ ऐसी भिन्नता है कि दोनों व्यक्तियों का एक मत होकर काम करना ही कठिन है।'

रघुनाथप्रसाद श्यामकिशोर की यह बात सुनने पर दीनानाथ की ओर मुँह फेर कर बोल उठे—'देखिए, बाबू दीनानाथ श्यामकिशोर की यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है। अगर आप उस अपरिमित हानि का अनुमान करें जो ईसाई और विलायती महिलाओं के चक्कर में पड़ कर धर्म्म-भ्रष्ट तथा अन्त में देशद्रोही बनने वाले हमारे युवकों के सदा के लिए खो जाने से हमें हो रही है तो आप नारी-स्वतंत्रता के उस रूप से न भड़के जिसे मैं पसन्द करता हूँ। सच बात तो यह है कि आर्य-संस्कृति की रक्षा के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि हमारा वामांग भी हमसे सहयोग करे और उसी प्रकार करे जिस प्रकार पाश्चात्य महिलासमाज अपने पुरुष-वर्ग के साथ करता है। भला सोचने की बात है कि आज कल मुसलमानों की संख्या सात करोड़ कैसे हो गयी? ईसाइयों का समाज दिनों

दिन क्यों विशाल होता जा रहा है? भाई, मैं तो समाज में क्रान्ति का दर्शन करना चाहता हूँ; हमारा समाज इतना रोगग्रस्त हो गया है कि विशेष प्रभावशाली औषधि के बिना उसका उद्धार नहो हो सकता।'

श्यामकिशोर की आँखें पिता ही की ओर लगो हुई थीं; वह उनकी बातों को पसन्द कर रहा है—यह भाव उसके चेहरे पर अंकित हुए बिना नहीं रह सका।

दीनानाथ ने उत्तर दिया—'स्त्रियों की स्वतंत्रता का मै विरोधी नहीं। मै स्वयं अपनी स्त्री को अपने काम-काज के लिए कहीं भी आने-जाने की स्वतंत्रता देता हूँ। मैं उन्हें बाजार में, मेले ठेले में, मन्दिर में, तथा अन्य, जहाँ भले आदमी हों, जाने देता हूँ। मेरी स्त्री ने कभी नहीं कहा कि वह परतंत्र है। मेरे पिता ने माता जी को भी इसी तरह की स्वतंत्रता दे रक्खी थी। वास्तव में मेरे घर में तो परदा है ही नहीं। आप अभी आज मेरे घर पर चलें तो मेरी पत्नी से भी बातचीत कर सकते हैं। हाँ, आप के यहाँ अलबत्ता घोर परदा है; चपला की अम्मा को आप परतंत्र कह सकते हैं!'

रघुनाथप्रसाद ने जोश के साथ कहा—'भाई, अगर चपला की अम्मा परदा करती हैं तो इसमें मेरा क्या अपराध है! मैं उन्हें समझाता-बुझाता हूँ, संसार के भिन्न भिन्न समाजों में क्या सुधार हो रहे हैं, यह सब उन्हें बताता हूँ। लेकिन उन पर कुछ असर ही नहीं होता। मेरे और उनके बीच इस सम्बन्ध की कितनी बहसें हुआ करती हैं—यह आप श्याम से पूछ लें। वे तो स्वतंत्रता की कद्र ही नहीं करतीं, यही नही चपला और कमला को भी अपने ही ढाँचे में ढालना चाहती हैं। इन विषयों को लेकर मेरी उनकी न जाने कितने बार लड़ाई हो गयी है, बोल-चाल तक बन्द रहा है।'

श्यामकिशोर बोल उठे—'लेकिन मुसलमानों की स्त्रियाँ तो आजाद नहीं हैं, बाबू जी।'

रघु०—'मुसलमान कुमारियाँ किसी भी विद्यार्थी के साथ प्रेम करने और उसे मुसलमान बनाकर विवाह करने के लिए तो स्वतन्त्र हैं। मै तो इतने पर भी समझौता करने के लिए तैयार हूँ। अगर हिन्दू लड़कियाँ भी प्रणय और विवाह-सम्बन्धी पूर्ण स्वतंत्रता पा जाँय; आर्य्य धर्म में दीक्षित करके यदि वे भी अपने प्रेमियों को आर्य्य बना सकें तो भले ही वे कठोर से कठोर परदे में रखी जायँ मै अधिक आपत्ति नहीं करूँगा।'

दीनानाथ रघुनाथप्रसाद के इन तर्कों का उत्तर दे सकते थे, और उनकी कुछ प्रवृत्ति भी इस ओर हो रही थी, किन्तु अचानक उनका ध्यान चपला और कमला की ओर चला गया। उनके हृदय में आशंका उत्पन्न हुई—कहीं रघुनाथप्रसाद की स्त्री स्वतंत्रता की मिथ्या धारणा इन कन्याओं का अनिष्ट न कर बैठे। वे थोड़ी देर के लिए अप्रासंगिक कल्पनाओं में उलझ गये। उनको मौन देखकर रघुनाथप्रसाद ने समझा कि मेरी विजय हो गयी। मुसकरा कर उन्होंने कहा—'दीनानाथ बाबू आप मौन क्यों हो गये?'

दीनानाथ—'मैं सोच रहा हूँ कि आपसे कहाँ तक सहमत हो सकता हूँ।'

इसी समय रामकरन ने तीन तश्तरियों में ताजा हलुआ, समोसे, नमकीन और दूध लाकर चम्मच समेत मेज पर रख दिया। कुर्सियाँ खिसका कर तीनों व्यक्ति मेज के चारों ओर बैठ गये, और खाने लगे।'

दीनानाथ ऐसी बहस नहीं पसन्द करते थे, जिसका उद्देश्य केवल बहस हो। यह तो स्पष्ट ही था कि रघुनाथप्रसाद पचास

वर्ष की उम्र तक डिप्टीकलेक्टरी करने के बाद भारतवर्ष व्यापी हिन्दू समाज में क्रान्ति करने के अयोग्य थे; वर्तमान समय में तो अवकाश ही का अभाव था, किन्तु उन्हें विश्वास था कि पाँच वर्षों के बाद जब पेंशन का अवसर आ जायगा और उन्हें पूरा समय मिलेगा तब भी वे किसी विस्तृत क्षेत्र में क्रान्ति करने में असमर्थ होंगे। ऐसी अवस्था में उनकी विचारधारा चपला और कमला ही के भविष्य को सम्भवतः सर्वनाश की ओर ठेलेगी। शीघ्र ही गंभीर होकर दीनानाथ ने कहा—'डिप्टी साहब, आप पेंशन लेने के बाद क्या काम करेंगे।'

रघु०—'मैंने तो निश्चय कर लिया है कि एक बार मैं हिन्दू समाज की वर्तमान मनोवृत्तियों को बदलने की कोशिश करूँगा।'

दी० —'अर्थात्।'

रघु०—'अर्थात् मै हिन्दू समाज को यह बतलाऊँगा कि वे भी ईसाइयों और मुसलमानों की तरह लड़कियों से हिन्दुओं की सख्या शक्ति बढ़ाने अथवा कम से कम स्थिर रखने में सहायता लें। नही तो परिणाम यह होगा कि प्रणय के आवेग को रोकने में असमर्थ होकर हमारे कमलकिशोर और रामलाल सलीम और जेकब के रूप में परिणत हो जायेंगे।'

दी० —'आप का यह विचार हिन्दुओं की आन्तरिक शक्ति के लिए अत्यंत घातक है। क्या आपने इस पर कभी विचार किया है कि हिन्दू संसार में इतने दिनों तक किस प्रकार जीवित रह सके हैं, जबकि उनकी समकालीन जातियों का आज कहीं नामनिशान भी दिखायी नही पड़ता।'

डिप्टी साहब ने तुरंत ही उतर दिया—'इसका एक मात्र कारण यह है कि हिन्दू समाज ने सदा ही अपने आप को आवश्यकता के अनुसार समय के अनुकूल बनाया है। मुझे आशा है

कि वह अब भी अपने को सँभाल लेगा। मुझे खेद है, अपने जीवन का प्रायः सम्पूर्ण अंश मैंने पेटपूजा ही में लगा दिया। फिर भी एक वृद्धा जितना कर सकता है उतना तो मैं अवकाश मिलने पर अवश्य ही करूँगा। मैं एक ऐसी संस्था को स्थापित करने की चिन्ता में हूँ जिसके द्वारा यह स्पष्ट किया जा सके कि हिन्दू नारी को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान किये बिना हिन्दू समाज को स्वतंत्रता नहीं मिल सकती।'

दीनानाथ ने चम्मच तश्तरी पर रखते हुए कहा—'यदि आप मुझे क्षमा करें तो मैं कहूँगा कि आप के सामाजिक विचार अत्यन्त भ्रान्तिपूर्ण हैं और उनसे हमारे समाज की सेवा न होगी, उलटे उसकी बहुत अधिक क्षति होगी मैं स्त्रियों की स्वतन्त्रता का विरोधी नहीं हूँ, लेकिन जिस ढंग की स्वतन्त्रता आप उन्हें देना चाहते हैं उससे हमारा समाज रसातलगामी हो जायगा। अब तक हिन्दू समाज के दीर्घजीवी और शक्तिशाली बने रहने का प्रधान कारण यह है कि उसने देश और काल के अनुसार अपने शरीर पर की पोशाक तो बदल दी, किन्तु आत्महनन नहीं किया, आत्मवंचना नहीं की। हिन्दू समाज की सबलता का एक मात्र रहस्य यह रहा कि उसने मिथ्या पाखंड की आराधना से अपने आप को अन्य समाजों की अपेक्षा अधिक बचाया। आप उसके इसी गुण को दोष समझते हैं। ईसाइयों के लिए यह घोर कलंक की बात है, यदि स्त्रियों के अलक-जाल में फँसा कर वे हिन्दू युवकों को बहका रहे हैं, इसी तरह मुसल्मानों के लिए भी यह लज्जा की बात है, यदि वे हिन्दू स्त्रियों का अपहरण कर के अथवा स्त्रियों के जाल में हिन्दू युवकों को फँसा कर मुसल्मानों की संख्या बढ़ाना चाहते हैं। धर्म्म की दृष्टि से न ये ईसाई किसी काम के, और न ये मुसल्मान किसी काम के। इसी तरह हिन्दू लड़कियों की सहायता से आप जिन ईसाइयों और मुसल्मानों

को हिन्दू बनायेंगे वे किसी काम के हिन्दू नहीं होंगे, उनसे हमारे समाज का अपकार ही होगा।'

'क्या अपकार होगा ?'—डिप्टी साहब ने भी खाना बंद करके पूछा।

दीनानाथ ने ग्लास होठों के पास पहुँचाया और दो घूँट पानी पीने के बाद रूमाल से मुँह हाथ पोछ कर कहा—'डिप्टी साहब, यदि आप की बतायी हुई पद्धति पर काम किया जायगा तो हिन्दू समाज के रक्त की शुद्धता का थोड़ा ही दिनों में लोप हो जायगा। शास्त्रकारों का यों भी मत है कि कलियुग में समाज वर्णसंकर हो जायगा, किन्तु आप शायद उसका समय बहुत ही समीप लाना चाहते हैं। जो हो, आप की इस कार्य्य-पद्धति से मैं सहमत नहीं हो सकता और गंभीरतापूर्वक आप से निवेदन करता हूँ कि अपने इन उलझे हुए विचारों का प्रयोग हिन्दू कन्या पर न कर दीजिएगा। एक मित्र की इच्छा, सम्मति, अनुरोध का, तर्क की कसौटी पर न सही, भावुकता ही कसौटी पर कस कर, पालन कीजिएगा।'

डिप्टी साहब पर दीनानाथ के स शब्दों का बड़ा प्रभाव पड़ा, कारण यह था कि दीनानाथ के चेहरे पर इस समय वह भावुकता थी जो बहस करने वालों में नहीं, सच्ची बात कहने वालों में उस समय देखी जाती है जब किसी असत्य बात से वे उत्तेजित और आहत कर दिये जाते हैं। रघुनाथ-प्रसाद कुछ ठिठक से गये, श्यामकिशोर भी पहले पिता की बातों में बहुत दिलचस्पी ले रहे थे, लेकिन अब उनकी सहानुभूति दीनानाथ के पक्ष में हो गयी। ऐसा जान पड़ने लगा मानो पिता-पुत्र दोनों ने दीनानाथ की विजय स्वीकार कर ली। इस बीच में उन्होंने भी दो चार मिनट अपने हाथ-मुँह धोने में लगा दिये। इसके बाद श्यामकिशोर ने कहा—'अच्छा

प्रोफेसर साहब, आज का आप का कार्यक्रम क्या रहेगा! क्या गंगा-स्नान करने भी चलिएगा ?'

दीनानाथ ने कहा—'अच्छा तो है, लखनऊ में रहने का कुछ प्रायश्चित्त भी हो जायगा।'

दीनानाथ के इन शब्दों के समाप्त होते ही डिप्टी साहब ने श्यामकिशोर से कहा—'भाई, आज चलो सब कोई स्नान कर आवें। अपनी माता से भी कह दो। चपला, कमला सब चलें। आज एक काम की बात यह हो जाय कि दीना बाबू के सामने तुम्हारी माँ का परदा टूट जाय। यह सचमुच बड़ी वाहियात बात है कि जिन बातों के लिए मै औरों से कहता रहता हूँ वे मेरे ही घर में नहीं हो पातीं!'

'बहुत अच्छा,' कह कर श्यामकिशोर चले गये। डिप्टी साहब ने ड्राइवर को बुला कर मोटर तैयार करने के लिए कहा।

थोड़ी देर में सब लोग गंगा जी की ओर चल पड़े। गायत्री देवी के चेहरे पर आज घूँघट नहीं था।

स्नान करके लौटने पर दीनानाथ चपला से कुछ बातें कर ही रहे थे कि डाक के चपरासी ने चपला के हाथ में एक तार लाकर रख दिया; श्यामकिशोर और डिप्टी साहब दोनों ही इस समय मकान के भीतर चले गये थे। चपला ने तार पर दीनानाथ का नाम देख कर उनके हाथ में उसे रख दिया।

दीनानाथ ने तार खोल कर पढ़ा उसमें लिखा था :—

Daughter-in-law seriously ill; return immediately.

Karunadevi,

[बहू की तबीयत बहुत खराब है; शीघ्र लौटो। करुणा देवी।]

दीनानाथ ने कहा—'चपला अब मुझे शीघ्र से शीघ्र यहाँ से चला जाना चाहिए। जाओ, घर में यह समाचार दे दो।'

चपला का उत्साह ठंढा पड़ गया; वह उदास हो गयी। उसने घर में जाकर अपनी यह उदासी सब को बाँट दी।

श्यामकिशोर और डिप्टी साहब दोनों की यह राय हुई कि दो बजे वाली गाड़ी से बाबू दीनानाथ चले जायँ। गायत्री देवी ने भोजन तैयार कराने में जल्दी शुरू की। उन्होंने नौकरानी और महाराजिन का कुछ काम चपला और कमला को भी सौंप दिया; साथ ही स्वयं भी काम में जुट गयीं। इस प्रकार बात की बात में भोजन तैयार हो गया। लगभग बारह बज गये थे।

दीनानाथ, श्यामकिशोर और डिप्टी साहब सब एक साथ ही भोजन करने बैठे, गायत्री देवी परोसने का काम करती रहीं। डिप्टी साहब को यह प्रसन्नता थी कि आज उनके घर में परदे का बचा-खुचा अंश भी नष्ट हो गया था।

एक बजे दीनानाथ से डिप्टी-साहब घर ही पर विदा माँग कर विश्राम करने चले गये। किन्तु श्यामकिशोर, चपला और कमला स्टेशन पहुँचाने के लिए चलीं।

घर पर जो बहस छिड़ी थी उसमें श्यामकिशोर पिता के प्रति संकोचवश भाग नहीं ले सका था; उसकी कसर उसने अब मिटाने का प्रयत्न किया, ताँगे पर बैठ जाने के बाद श्याम-किशोर ने दीनानाथ से पूछा—'चाचा जी, मैं तो सोचता हूँ कि धर्म्म ही ने भारतवर्ष का सत्यानाश किया है, इसलिए धर्म्म का नाश करना सब से पहले जरूरी है। मुझे तो आश्चर्य्य होता है कि पिता जी के अतिशय आर्य्यसमाज-प्रेम की वृद्धि में आप भी सहायक हो जाते हैं। मेरा तो खयाल है कि शिवप्रसाद हिन्दू धर्म्म को माने, या आर्यसमाज को मानें, या ईसाई मजहब का भक्त बन जाये—इन बातों से कुछ होने जाने का नहीं, हमें तो अधिक ध्यान देश को आजाद बनाने की ओर देना चाहिए।'

कमला और चपला दोनों ने दीनानाथ का उत्तर सुनने के लिए ध्यान एकाग्र कर लिया। दीनानाथ ने कहा—

'श्यामकिशोर,तुम्हारे शब्दों में मुझे कुछ सार मालूम होता है; इसमें कोई शक नहीं कि हमारे देश में धर्म्म कलह का कारण हो गया है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हम धर्म्म ही से घृणा करने लगें। धर्म्म और ईश्वर विवाद की वस्तु नहीं हैं, लेकिन हमारा अभिमान इनको भी विवाद का विषय बना कर हमारे सिरों के फूटने और हड्डियों के टूटने का अवसर उपस्थित कर देता है। धर्म्म के इस रूप का मैं भी प्रेमी नहीं हूँ,किन्तु साथ ही धर्म्म का जो सच्चा स्वरूप है मैं उससे प्रेम लगाये बिना रह भी नहीं सकता। रूस के उन उत्साही विकृत मस्तिष्क ईश्वर-द्रोहियों का मैं समर्थन नहीं कर सकता जिन्होंने एक प्रस्ताव पास करके ईश्वर का वहिष्कार घोपित किया था। सच बात यह है कि सत्य, धर्म्म और ईश्वर की भावना के बिना मैं उच्च जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकता। इस वहिष्कार घोपणा के वाद भी मैं तो उन पागलों में ईश्वर-प्रेम की यथेष्ट मात्रा देखता हूँ। वोलशेविज्म की सत्ता में भी मुझे तो युग धर्म्म और युग सत्य की गुरु गंभीर गर्जना ही दिखायी पड़ती है।'

श्या०—'तो आपकी दृष्टि से न वावू जी का रास्ता ठीक है, और न रूस वालों का ?'

दी०—'तुम्हारे इस कथन को थोड़े से संशोधित रूप में मैं ग्रहण कर लूँगा यदि रूस वालों के वोल्शेविज्म में पीड़ित मानव जाति अथवा उसके किसी अंश के लिए कोई सदेश है तो मैं यही मानूँगा कि वह, देशकाल की सीमा में आवद्ध, ईश्वर और सत्य ही के किसी परिमित स्वरूप का प्रतिनिधि है और इस प्रकार उसमें जो कुछ सार हे उसे मैं ग्रहण कर लूँगा। इसी

प्रकार मैं अपने किसी बहकते हुए या बहके हुए भाई को समझा-बुझा कर अपने समाज में फिर लौटा लाना चाहता हूँ और उसके लिए थोड़ी सी कोशिश करता हूँ तो इसमें कोई आपत्ति-योग्य बात नहीं। हम लोग शिवप्रसाद को रूप के जाल में फँसा कर अपनी माता तथा अपने समाज पर अत्याचार करने से रोकने के लिए ही गये थे; यह तो हम सब का परम कर्त्तव्य है। अपनी कर्त्तव्य-सीमा का अतिक्रमण हम तब करेंगे जब ईसाइयों की तरह धन औषधि तथा शिक्षादान और कभी कभी नारी-रूप का आकर्षण प्रस्तुत कर के हम पर धर्म्मावलम्बियों को अपने धर्म्म में दीक्षित करने का प्रयास करने लगें। यदि हम आर्य्य ऋषियों और मुनियों के वंशज, अक्षय आध्यात्मिक ज्ञान के उत्तरा-धिकारी भी, इस प्रकार के अज्ञान के चक्कर में पड़ जाँय तो यह हमारा घोर पतन होगा। मुझे खेद है कि डिप्टी साहब इस मिथ्या धर्म्म-प्रचार में विश्वास रखते हैं और अधिक खेद इस बात का है कि उनसे अच्छी तरह बातचीत करने का यथेष्ट समय नहीं मिला'

ताँगा स्टेशन के पास आ रहा था। इसलिए बात का रुख पलट कर दीनानाथ ने चपला से कहा—'चपला तुमने मित-व्ययिता पर कुछ पढ़ा या नहीं ?'

"मेरी रीडर में इस विषय पर एक पाठ तो है"—चपला ने उत्तर दिया।

दी०—"तब तो तुमने उसे खूब अच्छी तरह याद किया ही होगा। यह न समझो कि मैं तुम्हारी परीक्षा लेना चाहता हूँ। मेरा लक्ष्य तो एक बहुत साधारण बात की ओर है, और वह यह कि तुम अपनी पोशाक पर खर्च कम करो और अपनी बड़ी बहिन कमला की तरह सरलता-प्रिय बनो।"

चपला ने कुछ शरमाते हुए कहा—"चाचाजी, मैंने अपना इस सम्बन्ध का व्यय बहुत कम कर दिया है। वास्तव में इस खर्च को बढ़ाने का उत्तरदायित्व पिता जी पर है। बहिन के पास भी बहुत से कीमती कपड़े बक्स में पड़े हैं। यह अवश्य सच है कि पुस्तकों के अध्ययन से ही इन्हें इतना अवकाश नहीं मिलता कि ये उनका उपयोग कर सकें। लेकिन चाचा जी, अच्छे कपड़े पहनना, सफाई से रहना तो कोई खराब बात नहीं है।"

दी०—"अपनी इच्छाओं में, अपनी आवश्यकताओं में सादगी रखने से औरों का उपकार तो होता ही है, अपना भी उपकार होता है। अपव्यय शराब, गाँजा, भाँग इत्यादि से कम नशा करने वाला नहीं है और इसीलिए उतनाही निन्दनीय भी है, इस लत के शिकार होकर हम अपने साथ वाले गरीबों को ललचा कर पतित करते हैं, और धीरे-धीरे स्वयं भी पतित होकर नष्ट होते हैं। यदि गंदगी का नाम सादगी नहीं है तो सफाई का नाम अपव्यय भी नहीं हो सकता।"

इसी समय ताँगा रुक गया, स्टेशन आ गया। बातें जहाँ की तहाँ छूट गयीं। सब लोग उतर पड़े। श्यामकिशोर शीघ्र ही जाकर ड्योढ़े दर्जे का टिकट लाये। कुली ने सामान गाड़ी के डब्बे में पहुँचा दिया। गाड़ी में दस पन्द्रह मिनटों की देर थी। इसलिए चलते समय की थोड़ी सी चलती बातें भी हो गयीं।

श्यामकिशोर ने पूछा—'अब आपके दर्शन की आशा कब की जाय ?'

दीनानाथ ने हँसकर कहा—'जभी तुम्हारी शादी पड़ेगी तभी आऊँगा, या फिर तुम मेरे यहाँ आओ।'

श्यामकिशोर ने मुसकरा दिया।

उसके भाव का शायद थोड़ा सा इशारा पाकर दीनानाथ ने

श्यामकिशोर के बोल सकने के पहले ही कहा—'आगामी होली के दिन मेरा सालगिरह है।'

यह बात सुनकर सब लोग हँस पड़े, कमला की भी गंभीरता का बाँध टूट गया।

थोड़ी देर में गाड़ी ने सीटी दी। श्यामकिशोर, कमला और चपला—सब लोग उतर पड़े और तब तक प्लेटफार्म पर खड़े रहे जब तक दीनानाथ मुसकराते और दोनों हाथ जोड़े हुए चलती गाड़ी की खिड़की में सिर निकाले दिखायी पड़ते रहे।

× × × ×

ताँगा श्यामकिशोर, कमला और चपला को लेकर जब घर पहुँचा तब डिप्टीसाहब आराम कुर्सी में लेटे हुए अँगरेजी का एक समाचार-पत्र पढ़ रहे थे।

[५]

लगभग पाँच वर्ष हो गये जब शिवप्रसाद बी० ए० के द्वितीय वर्ष में पढ़ते समय सौन्दर्य्य और सुविधा के जाल में फँसकर ईसाई हुए थे, उन्हीं दिनों उनकी दुःखिनी माता का, असह्य वेदना के कारण, शरीरान्त हो गया था। इस प्रकार हिन्दू समाज से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा गया था; उनके दिन आनन्द और चैन से कटते थे। लेकिन यह चैन अधिक टिकाऊ नहीं हो सका, एम० ए० पास होने के बाद लंदन मिशन हाई स्कूल के अध्यापक-पद पर वे पूरे दो साल भर भी न रह पाये थे कि मृणालिनी क्षय-रोग से आक्रान्त होकर परलोकवासिनी हो गयी, बेचारे शिवप्रसाद का सर्वस्व लुट गया। मृणालिनी के मरने के छः मास बाद ही उसकी माँ का भी देहान्त हो गया।

मृणालिनी देवी के मर जाने पर शिवप्रसाद के जीवन में कोई परिवर्त्तन नहीं दिखायी पड़ा, जिसका एक कारण यह भी हो सकता है कि ईसाई सुन्दरियों की मंडली में शिवप्रसाद का

अबाध प्रवेश था। हाँ, विधुर होने से एक लाभ यह भी अवश्य हुआ कि शान्ति की खोज में गीता और उपनिषदों के अनुभव प्राप्त करने के लिए थियासोफिस्टों का दरवाजा खटखटाने से चित्त के साथ-साथ आँखों की प्यास को शान्त करने का एक नया रास्ता निकला—हिन्दू सुन्दरियों से भी सम्पर्क बढ़ने लगा। हिन्दी के दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रों में शिवप्रसाद के लेख निकलने लगे, जिनमें गीता और उपनिषदों का महत्व प्रतिपादन प्रधान विषय होता था।

डिप्टी ललिताप्रसादसिंह की अवस्था अब लगभग ४७ वर्षों की थी; शिवप्रसाद की २७ वर्षों का। स्पष्ट रूप से दोनों के वय में यथेष्ट अंतर था; एक वृद्धता की ओर ढल रहा था, तो दूसरा यौवन के मध्याह्नकाल में प्रवेश कर रहा था। किन्तु ललिताप्रसाद का हृदय अभी प्रायः उतना ही अतृप्त था जितना शिवप्रसाद का। वास्तव में मृणालिनी और मिसेज सिंह के मर जाने के बाद दोनों अधिकांश में मित्रों की भाँति रहते और प्रायः स्त्रियों के सौन्दर्य्य की आलोचना अत्यन्त स्वच्छन्दता के साथ करते थे। मृणालिनी की सखी कुमारी मारग्रेट का निखरा हुआ मंजुल लावण्य भी कभी कभी दोनों की चर्चा का प्रिय विषय हो जाता था।

कुमारी मारगरेट में शरीर-चांचल्य की वह विशेषता तो थी ही जो पाश्चात्य देशों की कुमारियों की एक मनोहर विभूति है, साथ ही उसमें २२-२३ वर्ष के अल्पवय ही में भारतीय धर्म्मग्रन्थों के अँगरेजी अनुवाद पढ़ने पर हिन्दू समाज के आदर्शों के साथ सहज सहानुभूति और अपनी परिस्थितियों से असन्तोष उत्पन्न हो गया था। उसके पिता कप्तान मिस्टर हेनरी को उसकी इस प्रवृत्ति का कुछ ज्ञान था, किन्तु इसमें वे किसी प्रकार की हानि नहीं समझते थे; हानि समझने का कोई कारण

भी नहीं था; इसका अधिक से अधिक शोचनीय परिणाम यही हो सकता था कि वह हिन्दू धर्म्म को ग्रहण कर ले, सो इसमें उन्हें कोई आपत्ति ही नहीं थी; हाँ शर्त्त यही थी कि कुमारी मारगरेट किसी भिखमंगे के गले में जयमाला न डाल दे।

एक दिन मिस्टर ललिता प्रसाद ने कुमारी मारगरेट के इसी ऐब की शिकायत मिस्टर हेनरी से की। मिस्टर हेनरी ने हँसकर उत्तर दिया—'भाई अब वह पढ़ी-लिखी और काफी समझदार हो गयी है। ऐसी अवस्था में मुझे उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार का भय नहीं है। फिर भी यदि आपको उसकी यह प्रवृत्ति नही रुचती तो उसे इंजील की खबियों की ओर क्यों नहीं आकर्षित करते ?'

ललिताप्रसादसिंह ने उतर दिया, 'बहुत अच्छा, यह काम मैं करूँगा।'

इसी समय कुमारी मारगरेट, जो सन्ध्या समय कही घूमने चली गयी थी, बाहर से साइकिल पर आ गयी। वसन्त ऋतु की मादक चाँदनी में उसके चाँद से चमकते हुए चेहरे की मनोहर मुसकराहट ने उनकी आँखों में ठण्डक भर दी। वह अभी वैठी नहीं थी कि मिस्टर हेनरी ने शिकायत के ढंग पर उससे कहा—'मिस, वाइबिल में तुम्हारी शिक्षा के सम्बन्ध में मिस्टर सिंह को सन्देह और असन्तोष है। तुम इनसे अपनी शंकाओं का समाधान क्यों न किया करो।' 'शंकाओं का समाधान !' आश्चर्य्य के स्वर में कुमारी मारगरेट ने कहा, 'मुझे ईसाई धर्म पर शंका कैसी ? और मुझ मे शंका करने की योग्यता कैसी !'

मि० सिंह—'फिर क्या वात है कि तुम हिन्दू धर्म्म की ओर आकर्षित हो रही हो—वही हिन्दू धर्म जिसकी संकीर्णता से ऊब कर मैंने ईसामसीह की गोद में शरण ली ?'

मिस्टर हेनरी को इस बातचीत में कोई दिलचस्पी नहीं थी, इसके अतिरिक्त उन्हें कलेक्टर से मिलने जाना भी था। अतएव उन्होंने कहा 'मिस्टर सिंह, मैं आवश्यक कार्य्य से जा रहा हूँ इसका यह अर्थ नहीं कि आप अपनी बातों को संक्षिप्त करें; आप मिस मारगरेट से अच्छी तरह बातें कीजिए।'

यह कह कर मिस्टर हेनरी ने एक मुसकराहट के साथ मिस्टर सिंह से विदा ली और मोटर में बैठकर कलेक्टर के बँगले की ओर प्रस्थान किया।

इस क्षणिक विराम के अनन्तर मिस्टर सिंह ने कहा—'कुमारी मारगरेट, मेरा प्रश्न अनुचित तो नहीं है ?'

कु० मा०—'मैं तो ईसाई धर्म्म को प्यार करती हूँ, इसी लिए हिन्दू धर्म्म की ओर भी आकर्षण का अनुभव करती हूँ। मैं तो इन दोनों में भेद कम और सादृश्य अधिक देखती हूँ; दोनों की प्रकृत विशेषता है सहनशीलता।'

'तुम महान् भ्रम में हो, मेरी भोली मारगरेट!' मिस्टर सिंह ने जोर के साथ कहा, ''हिन्दू धर्म्म कदापि सहनशील नहीं है। उदाहरण के लिए दूर जाने की आवश्यकता नहीं, शिवप्रसाद को ईसाई धर्म्म में दीक्षित करते समय हिन्दी के समाचार-पत्रों अथवा हिन्दुओं द्वारा सम्पादित अँगरेजी के पत्रों में प्रकाशित लेखों को यदि तुमने ध्यान से देखा होता तो तुम्हें हिन्दू धर्म्म की सहनशीलता का परिचय मिल गया होता।'

तुरंत ही कुमारी मारगरेट ने कहा—'मुझे उन लेखों को पढ़ने की बिलकुल ही आवश्यकता नहीं, क्योंकि मैं तो जानती हूँ कि मेरे सार्वजनिक घोषणा कर देने पर भी सनातन-धर्मियों ने अपने समाज के भीतर मुझे लेना स्वीकार नहीं किया। यदि वे लोग हमें ग्रहण कर लेते तो मैं और मृणालिनी दोनों ही हिन्दू धर्म्म को स्वीकार कर लेतीं।'

मि० सिं०—'मुझे यह आज मालूम हुआ कि तुम दोनों के कथन में कोई गम्भीरता भी थी; मैंने तो उसे पूरा पूरा मजाक समझा था।'

मा०—'जरा सोचिए तो सही, आपकी क्या हालत हो यदि किसी भले घर की हिन्दू कुमारी ईसाई होने के लिए घोषणा करे! क्या काशी के पंडितों की तरह आप के पादरी भी अपना धीरज बनाये रख सकेंगे? मैं तो सोचती हूँ कि शायद आप सिर के बल चल कर उसके पास पहुँचेंगे!'

यह कह कर मारगरेट बड़े जोर से हँस पड़ी।

थोड़ी देर के बाद वह फिर बोली—'क्षमा कीजिएगा, हम इस देश को बहुत सी बातें सिखला सकते हैं, लेकिन धर्म्म की शिक्षा नहीं दे सकते। यह बात तो हमें स्वयं इससे सीखनी है। खैर, इन बातों को जाने दीजिए, कहिए आज कल आप की तबियत कैसी है?'

यह कह कर मारगरेट नें अपनी माधुरी-भरी दृष्टि मिस्टर सिंह के चेहरे पर स्थित कर दी।

मिस्टर सिंह ने कहा—'तबियत का हाल पूछ कर क्या करोगी मारगरेट! हृदय के घावों पर अगर मरहम पट्टी करो तो कुछ बतलाऊँ भी। इतना तो मुझे विश्वास है कि मेरा दुख तुम दूर कर सकती हो। मैं अपने हृदय के भावों को बहुत दिनों से छिपाये हूँ, लेकिन अब देखता हूँ कि अगर डाक्टर से रोग का हाल नहीं बताता तो मर जाऊँगा। मिस मारगरेट, मै तुम्हें प्यार करता रहा हूँ, और आज तो तुम्हारे बहुत ही उदार हृदय का परिचय पाकर अपना आपा भी खो बैठा हूँ।'

मिस्टर हेनरी की सजी हुई बैठक में इस समय सन्नाटा था, केवल खिड़कियों से आनेवाले हवा के झोंके बंगले के

भीतर वाली फुलवारी के फूलों की महक, और चिड़ियों की चहक की कहानी संक्षेप में कह जाया करते थे।

कुमारी मारगरेट ने एक हलकी मुसकराहट के साथ उत्तर दिया—'मिस्टर सिंह,आपने अपना प्यार मुझ पर केन्द्रित करके अच्छा नहीं किया। मैंने तो अपना यह जीवन अभागे हिन्दुओं की सेवा के लिए अर्पित कर दिया है। संसार की उच्चतम सभ्यता की अधिपति यह जाति आज-कल आत्म- विश्वास से इतना रहित हो गयी है कि यह अपने गुणों ही को अवगुण समझने लगी है, और अत्यन्त लोलुप होकर हम लोगों के उन अवगुणों को ग्रहण कर रही है जिनसे मेरा जी ऊब गया है। मेरे हृदय में न जाने कैसे यह बात बैठ गयी है कि मै इस प्राचीन जाति के उद्धार-कार्य्य में कुछ हाथ बँटा सकती हूँ। ऐसी अवस्था में मेरे जीवन के कार्य्य-क्रम में विवाह को तो कोई स्थान ही नहीं मिल सकता।'

मिस्टर सिंह इन बातों से निराश होने वाले नहीं थे। उन्होंने कहा—'मिस मारगरेट, किताबों को पढ़ कर अभी तुमने हिन्दू धर्म को सारे गुणों की खान और हिन्दू समाज को संसार भर की सहानुभूति के योग्य समझ रक्खा है, लेकिन, अगर तुम सच-मुच धोखा नहीं खाना चाहती हो तो सब से पहले इस धर्म्म और समाज के सम्बन्ध में कुछ अधिक अनुभव प्राप्त करने की कोशिश करो। यदि तुम मेरी जीवन-संगिनी हो जाना स्वीकार कर लो तो शायद तुम्हारा सफलतापूर्वक ऐसा कर सकना अधिक सम्भव हो। अभी तो मुझे हिन्दूधर्म्म और समाज से महान् घृणा है, यह भी सम्भव है कि तुम्हारे कारण इन दोनों के प्रति मेरे भाव बदल जायँ। यह विश्वास रक्खो कि तुम्हारे जीवन के कार्यक्रम को मेरे कारण कोई आघात नहीं पहुँच सकेगा।'

कुमारी मारगरेट को यह स्वप्न में भी ख्याल न था कि मिस्टर सिंह उसके पीछे दीवाने हो रहे हैं। वह मृणालिनी के साथ एक ही स्कूल में पढ़ती थी, इसी सिलसिले से वह कभी कभी मिस्टर सिंह के यहाँ भी आती जाती थी। उनकी स्वर्गवासिनी धर्म्म पत्नी ने अपने प्यार से उसे अपनी ओर आकर्षित कर लिया था, सरकारी पद के लिहाज़ से मिस्टर सिंह और मिस्टर हेनरी में काफी रब्त-ज़ब्त थी। मारगरेट ने यह कभी कल्पना ही नहीं की थी कि सदा के प्रसन्न-चित्त रहने वाले मिस्टर सिंह के हृदय रूपी फूल में, पुत्री और पत्नी के अभाव से, उदासी का एक ऐसा कीड़ा प्रवेश कर गया होगा जिसके कारण उसका इतना महत्त्व बढ़ेगा। कुछ सोच कर कुमारी मारगरेट को वृद्धता की ओर उन्मुख मिस्टर सिंह पर दया आगयी और शायद करुणा के इस आवेग में वह मिस्टर सिंह को धीरज बँधाने के लिए कुछ शब्द कहती, किन्तु मोटर की आवाज से पिता को आता समझ कर उसने बात बदल दी और कहा—'यह बतलाइए कि आप मुझे बाइबिल पढ़ाना कब से शुरू करेंगे ? मै आप के यहाँ आऊँ या आप मेरे यहाँ आवेंगे ?'

मि० सिंह—'यों तो तुम जभी मेरे वहाँ आओगी, अपने असीम उपकारों के बंधन में बाँध लोगी, लेकिन केवल पढ़ने के उद्देश्य से आने के लिए तो मैं तुम्हें अपने यहाँ आने की तकलीफ न दूँगा। और अगर तुम मेरी राय पसंद करो तो मै तो कहूँगा कि हम लोग प्रति दिन शाम को हवाखोरी के लिए चला करें; दिल बहलाव के साथ साथ यह पढ़ाई भी होती रहेगी।'

कुमारी मारगरेट का चेहरा हँसी से खिल उठा। उसने मन ही मन मिस्टर सिह की बुद्धि की प्रशंसा की, जिसके द्वारा वे एक ही निशाने में दो चिड़ियों का शिकार करना चाहते थे। उसने रूमाल के द्वारा अपनी हँसी को रोकने की चेष्टा की। फिर एक

मधुर मुसकान से अपने अरुण अधरों को उसी प्रकार रंजित करते हुए जिस प्रकार चाँदनी गुलाबी गालों को करती है, उसने कहा, 'मिस्टर सिंह, मुझे आप का प्रस्ताव पसन्द है, उससे आपका जी वहल जायगा, और मेरी शिक्षा हो जायगी—इसमें दोनों का समान लाभ भी है।'

कुमारी मारगरेटकी बात खतम होते होते मिस्टर हेनरी आ गये और ड्रइङ्गरूम में प्रवेश करते हुए बोले—'हल्लो, मिस्टर सिंह, अभी आप यहाँ हैं। जान पड़ता है, आज आपने मिस को बाइबल पढ़ने के लिए राजी कर लिया है।'

यह कह कर मिस्टर हेनरी एक सोफे में बैठ गये। लेकिन समय काफी बीत चुका था; बैठते ही कलाई-घड़ी की ओर उनके दृष्टिपात करने का यही संकेत था। अतएव मिस्टर सिंह यह कहते हुए उठ खड़े हुए—'मिस्टर हेनरी, मिस मारगरेट एक बहुत समझदार और सुसंस्कार-सम्पन्न युवती हैं, इन्हें बाइबिल से वैसी घृणा नहीं है जैसी मैं कल्पना किया करता था। कल से हम लोगों ने संध्या का समय इस कार्य्य के लिए नियत किया है। अब आज्ञा दीजिए, चलूँ।'

मिस्टर हेनरी ने तुरंत ही हाथ बढ़ाते हुए मुसकरा कर कहा—'मैं अभी से आप के इस परिश्रम के लिए, जो आप मिस मारगरेट के लिए करेंगे, धन्यवाद देता हूँ।'

'इसमें धन्यवाद की आवश्यकता कहाँ ?'—मिस्टर सिंह ने मिस्टर हेनरी से हाथ मिलाते हुए कहा—'यह तो हम लोगों के लिए मनोरञ्जन का काम है।'

मिस्टर हेनरी तुरन्त ही भीतर चले गये।

कुमारी मारगरेट से हाथ मिलाने में मिस्टर सिंह को विशेष आनन्द आया।

वे अनेक बार कुमारी मारगरेट से हाथ मिला चुके थे, लेकिन आजकल न जाने क्यों जब कभी वे ऐसा करते थे तब उन्हें अनुभव होता था जैसे कोई सम्मोहिनी शक्ति उनके थके-हारे कलेजे को शीतलता प्रदान कर रही है। विशेष कर आज तो वे ऐसे व्याकुल और स्मृति-हीन से हुए कि मिस्टर हेनरी को बैठक में से गया हुआ देख कर उन्होंने कुमारी मारगरेट से हाथ मिलाते समय उसकी कोमल कलाइयों को चूम भी लिया।

(६)

शिवप्रसाद के हिन्दी लेखों की कीर्ति रघुनाथप्रसाद के कानों में अच्छी तरह पड़ चुकी थी और उससे वे दिन प्रति दिन उनकी ओर आकर्षित ही होते गये थे। ऐसी अवस्था में जब बड़े दिनों की तातील में उन्होंने सपरिवार काशी की यात्रा की, तब शिवप्रसाद से भेंट करना तथा उनकी प्रस्तुत विचार-धारा परिचय प्राप्त करना भी अपने कार्य्य-क्रम के भीतर रक्खा और वहाँ पहुँचते ही नौकर के हाथ पत्र भेज कर उन्हें चाय पीने के लिए निमन्त्रित किया।

नियत तिथि और समय पर शिवप्रसाद डिप्टी रघुनाथप्रसाद के स्थान पर चाय पीने के लिए गये। डिप्टीसाहब, श्यामकिशोर और चपला मेहमान का स्वागत करने के लिए विशेष उत्कंठित थीं। कमला ने शिवप्रसाद के ईसाई होने के बाद उनकी जो एक कल्पित मूर्त्ति अपने मन में बना रक्खी थी उसके प्रति स्वभावतः उसके हृदय मे श्रद्धा नही थी। निस्सन्देह वह बी०ए० के द्वितीय वर्ष में पढ़ रही थी और डिप्टीसाहब का प्रभाव भी उस पर कुछ पड़ा ही था, किन्तु इन दोनों से अधिक उस पर गायत्री देवी का प्रभाव था। शिवप्रसाद के प्रति गायत्री देवी के हृदय में घृणा का पार न था। वे बारम्बार कहा करती थीं कि जिसने अपनी बूढ़ी माँ की— उस माँ की जिसने मजदूरी कर करके उसका पालन-

पोषण किया था— हत्या कर डाली वह भला गीता और उपनिषद् का पाठ करके क्या कमा लेगा? शिवप्रसाद के सम्बन्ध में गायत्री देवी की इसी धारणा ने कमला के हृदय में घर कर लिया था। यही कारण था जो गायत्री ही की तरह कमला को शिवप्रसाद का स्वागत करने में विशेष उत्साह का अनुभव नहीं होता था

चपला का स्वभाव भिन्न था। लड़कपन से ही वह ऐसे मौकों पर, जब घर में किसी तरह की चहल-पहल होती थी, वड़ी प्रसन्न हुआ करती थी। उसकी यह आदत वर्तमान समय में उसके यौवन और शैशव के वीच में एक सुन्दर सन्धि उपस्थित कर रही थी। डिप्टी रघुनाथप्रसाद शानदार आदमी थे, किन्तु गायत्री देवी एक सरल नारी थीं। चपला को पिता-माता की यह देन उचित अंशों में प्राप्त हुई थी; रहन-सहन में, वेष-भूषा में वह खर्चीली थी, साथ ही अत्यन्त विश्वासशील और निष्कपट-हृदय थी। शिवप्रसाद का स्वागत करने के लिए उसकी उत्कंठा के मूल मे एक वात और थ ; वह उस आदमी को देखना चाहती थी जिससे उसकी माता और वहिन को उतनी ही चिढ़ थी जितनी उसके पिता को प्रीति।

श्यामकिशोर ने शिवप्रसाद को कभी कभी दीनानाथ के घर पर, वनारस में देखा था। तव उन्होंने उनको एक गरीब लड़के की तरह रहते पाया था। इस कारण उन्हें यह देखने की उत्सुकता अवश्य थी कि ईसाई होने पर, साथ ही एक सरकारी पदाधिकारी के निकट सम्वन्धी होने पर, उनके जीवन में किन

समावेश हो गया है।

शिवप्रसाद पूरे सूट में आये। एक हाथ में हैट थी, दूसरे में दो उँगलियों से वे एक सिगार थामे हुए थे, जिसमें से धुँआ निकल रहा था और जिसे थोड़ी थोड़ी दूर पर वे मुँह में लगा लेते थे। गोरा चेहरा, दाढ़ी-मूँछ सफाचट, सिर के वाल काले

होटों पर एक हलकी मुसकराहट—ये सब शिवप्रसाद को किसी भी सुन्दर युवती की दृष्टि में सुन्दर प्रतीत कराने के लिये यथेष्ट थे।

पिता और पुत्र मकान के फाटक पर ही शिवप्रसाद का स्वागत करके भीतर बैठक में ले गये, जहाँ बिजली की रोशनी हो रही थी। एक बड़ी गोलमेज चाय के अनेक पात्रों के साथ सजी-सजायी रक्खी गयी थी; उसके चारों ओर अनेक कुर्सियाँ थीं। गायत्री देवी ने परदा निस्सन्देह तोड़ दिया था, लेकिन वे उस मंडली में बैठकर प्रसन्न हो ही नहीं सकती थी जिसमें शिव-प्रसाद का आदर करना एक विशेष बात हो। सबसे पहले डिप्टी साहब ने एक एक कर सबसे शिवप्रसाद का परिचय कराया। श्यामकिशोर का परिचय पानेपर शिवप्रसादने कहा 'शायद मैंने आप को डी० ए० वी० कालेज, लखनऊ के प्रोफेसर दीनानाथ के यहाँ कभी देखा है, सम्भवतः तब जब वे बनारस के हिन्दू कालेज में थे।'

श्यामकिशोर ने स्वीकार किया। इसके बाद सब लोग कुर्सियों पर बैठे। कमला सब लोगों के साथ बैठी तो सही, लेकिन चाय पीने की अभ्यस्त न होने के कारण वह केवल एक दर्शक के रूप में ही रही। सब के बर्तनों में चाय ढालने का सेवा-कार्य्य चपला ने किया।

शिवप्रसाद नारी-मनोविज्ञान के पंडित थे; उनकी सूक्ष्म दृष्टि ने कमला की विरक्ति के भावों को पहचान लिया। किन्तु इससे वह निराश नहीं हुए, क्योंकि उनका मत था कि अनुरक्ति और विरक्ति एक ही वस्तु के, परिस्थिति-भेद से, दो विभिन्न नाम हैं। उन्होंने शिष्टाचारपूर्वक पूछा - "आप चाय क्यों नहीं पीतीं? क्या तबियत अच्छी नहीं है?"

कमला ने कुछ उत्तर नहीं दिया। डिप्टी साहब को यह एक त्रुटि सी प्रतीत हुई। बोले, 'कमला बी० ए० के अन्तिम वर्ष की तैयारी कर रही है, अधिक परिश्रम से इसने अपने आपको अस्वस्थ बना लिया है, इसीलिए चाय वह नहीं पी रही है।"

शि०—"लेकिनशायद कमला देवी ने चाय के उन विज्ञापनों को नहीं पढ़ा जिनमें लिखा रहता है कि जीवन में चाय ही सब रोगों की एक मात्र दवा है!"

यह कह कर शिवप्राद बड़े जोर से हँस पड़े। उनकी इस हँसी में सभी ने योग दिया। कमला श्यामकिशोर की ओर देख कर हँसने लगी। इस समय चपला शिवप्रसाद के प्याले में चाय ढाल रही थी; सब लोगों की हँसी ने उसे ऐसा दुचित्ता बनाया कि उसका हाथ हिल गया और उसकी केहुनी के धक्के से शिवप्रसाद का सिगार जिसे हाथ में लिये हुए थे, टेबुलक्लाथ पर गिर गया। चपला अपनी इस असावधानी पर शरमा गयी और जब सिगार उठाते हुए शिवप्रसाद ने मुस्कराकर उसपर एक उड़ती दृष्टि डाली तब आँखों, कपोल और होठों पर लज्जा के चिह्नों को उसने प्रकट कर दिया। तुरंत ही उधर से ध्यान हटा कर शिवप्रसाद चम्मच द्वारा चाय ले लेकर पीने लगे। डिप्टी-साहब और श्यामकिशोर ने भी पीना शुरू किया। इस प्रकार चपला की उस साधारण त्रुटि की ओर किसी का ध्यान न गया। हाँ, कमला की सूक्ष्म दृष्टि से वह न बच सकी। आवश्यकता-नुसार सब को चाय दे चुकने के बाद चपला ने अपने लिए भी एक प्याले में चाय ले ली। शीघ्र ही इस कार्य्य से निवृत्त होकर डिप्टी साहब ने धार्मिक विषयों पर चर्चा छेड़ते हुए पूछा—'मिस्टर शिवप्रसाद, मैं जानना चाहता हूँ कि ईसाई धर्म्म के सम्बन्ध में आपके क्या अनुभव हुए ?'

शि०—'ईसाई धर्म्म स्वयं तो बहुत अच्छा है, लेकिन मेरा खयाल है कि बीसवी सदी में वह चल नहीं सकता। यदि ईसाई धर्म्म की कसौटी पर हम सब कसे जायँ तो शायद एक लाख आदमियों के बीच में एक ईसाई कठिनता से मिलेगा। मै यह नहीं मान सकता कि इतने अधिक लोग झूठे, वेईमान, और पांखडी ही हैं। वास्तवमें ईसाई धर्म्म को समयके अनुसार बदलना चाहिए; वह वर्त्तमान समय की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता; इसीलिए मैं तो थियासोफो कीओर झुक रहा हूँ।"

डि० र०—'मेरा खयाल है कि आपने आर्य्यसमाज को विशेषताओं की ओर ध्यान नहीं दिया, इस देश में यदि कोई धर्म्म समस्त वर्त्तमान आवश्यकताओं की पूर्त्ति करता है तो वह आर्य्यसमाज ही है, ब्रह्मो समाज भी इसकी बराबरी नहीं कर सकता। यह तो आप मानते ही हैं कि हमारे यहाँ धर्म्म का वकास बहुत ऊँचे पैमाने पर किया जा चुका है। हमारे स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इस पूरे विकास से तो लाभ उठाया है लेकिन उसकी कमजोरियों को अलग कर दिया है। आप थियासोफी को कैसा समझते हैं?'

शिवप्रसाद न थियासोफी के पक्ष में थे और न आर्य्यसमाज के, उसी तरह जिस तरह वे स्वयं ईसाई धर्म के पक्ष में न थे। लेकिन डिप्टी साहब की हाँ में हाँ मिलाना इस समय आवश्यक था। इसलिए उन्होंने कहा—'बाबू साहब, ईसाई धर्म्म को तो मैंने भीतर से देख ही लिया, थियासोफो का रंग भी देख लिया। मेरा भी यह खयाल होता जा रहा है कि यदि भारतवर्ष का कोई भी सर्वमान्य धर्म्म हो सकता है तो वह आर्य्यसमाज ही हो सकता है, आपका तो जीवन ही इसी धर्म्म के भीतर बीत रहा है, इसलिए शायद आप को उसकी खूबसूरती का पूरा अनुभव न होता हो; परन्तु मुझे तो दूर से ऐसा मालूम होता है

मानों स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भारतवर्ष के सभी भिन्न मत-वालों को एक राह पर लगाने के लिए ही आर्य्यसमाज की बाँसुरी बजायी थी। ईसाई धर्म्म की उदारता, इस्लाम का विश्वबन्धुत्व, और प्राचीन आर्य्यों का दर्शन—इन तीनों के सार से उन्होंने आर्य्य-समाज- रूपी इत्र तैयार किया है।"

शिवप्रसाद के इस व्याख्यान ने डिप्टी साहब और श्याम-किशोर को उनकी ओर अधिकाधिक आकर्षित, चपला को चकित, और कमला को विरक्त बना दिया।

कमला मन ही मन कहने लगी इस ढोंगी, असत्य के पुतले को तो देखो ! कैसी विवेचना !! कैसा गहरा ज्ञान-प्रदर्शन !!

चपला ने सोचा—कितना बड़ा विद्वान् है ! सभी धर्मों की गूढ़ बातों को समझ सकता है !!

डिप्टी साहब के मुँह में तो पानी भर आया। किस दिन आर्य्य-समाज में इसे दीक्षित कर लूँगा, यही सोचते-सोचते वे कुछ दुचित्ते से हो गये। फिर जब होश में आये तो बोले—"मुझे मिस्टर सिंह से भी भेंट करनी है। उनका कौन सा दिन और समय सुविधा का है ?"

"आजकल उनसे मिलना आसान नहीं है। हाँ, यदि आप कुमारी मारगरेट की कृपा प्राप्त कर लें तो उनसे मिल सकते हैं; कुमारी मारगरेट ही आजकल उनका कार्य्यक्रम बनाती हैं; वे यहाँ के कप्तान मिस्टर हेनरी की कन्या हैं और आजकल मिस्टर सिंह उन्हें बाइबिल पढ़ा रहे हैं, जिससे उनका अतिशय हिन्दू धर्म्म-प्रेम उन्हें ईसाई धर्म्म से विचलित न कर दे।"

र०—'तो मैं कुमारी मारगरेट ही से मिलना पसंद करूँगा। क्या आप इसमें सहायक हो सकते हैं ?'

शि०—'हाँ, मैं चाय के लिए उन्हें निमंत्रित कर दूँगा; आप भी वहीं पधारिए।'

र०—'यह तो ठीक है। आप व्यवस्था कीजिए।'

शि० - 'और उसी चाय पार्टी में मिस्टर सिंह भी आप ही आ जायँगे - यह कहकर शिवप्रसाद हँस पड़े। शिवप्रसाद के ख्याल से रघुनाथप्रसाद ने भी मुसकरा दिया।

शीघ्र ही शिवप्रसाद ने उनसे विदा माँगी और कहा—'आज आप की बातें सुनकर बड़ा आनन्द हुआ। शीघ्र ही इलाहाबाद में इस तरह के अधिक अवसर पाने की आशा है, क्योंकि इस छुट्टी के बाद वहाँ के क्रिश्चियन कालेज में मुझे अध्यापक का कार्य्य करने के लिए आना होगा।'

'अच्छा! यह तो आपने अच्छा हर्ष-समाचार सुनाया। यह भीतर ही भीतर कब कर डाला; कल शाम तक तो मुझे कुछ बतलाया न था'—डिप्टी साहब ने कहा।

शिवप्रसाद ने उत्तर दिया - 'कल अगर आप का आदमी थोड़ी ही देर और ठहर गया होता तो मुझे इतनी देर में यह समाचार न देना पड़ता।'

यह हर्ष-समाचार कमला को उत्साहित नहीं कर सका। चपला निस्सन्देह शिवप्रसाद को कुछ कौतूहल की दृष्टि से देखने लगी थी, अतएव, वह तो एक प्रकार से सन्तुष्ट ही थी।

डिप्टी साहब और श्यामकिशोर शिवप्रसाद को फाटक तक पहुँचाने के लिए चले गये।

इस समय अवसर पाकर चपला ने सबसे पहला जो काम किया वह था कमला के पास जाकर उसे एक अपराध का अपराधी बना देना। चपला ने कहा 'जीजी, तुमने तो आज मुझे बहुत ही अधिक लज्जा की स्थिति में डाल दिया। न तुम्हारी चायवाली चर्चा चली होती, न उस पर बेहद हँसी मचती, और न मेरा हाथ उस असावधानी के साथ बेबस हो जाता जिसकी

याद आते ही मेरा सिर नीचा हो जाता है। कहीं अम्मा से न कह देना जीजी ?'

कमला ने उत्तर दिया—'अपनी असावधानी के लिए तो मुझे दोष दे रही हो, लेकिन अपने हृदय के अंतरतम में छिपे हुए आह्लाद के लिए किसी को धन्यवाद भी तो दो। क्या शिवप्रसाद के प्रति कृतज्ञ होना भी तुम भूल जाओगी ?'

इस समय कमला के अधरों पर एक विचित्र मुसकराहट और आँखों में भाव-परीक्षा की अत्यन्त सूक्ष्म चेष्टा प्रकट हो रही थी।

चपला कुछ शरमा गयी। शिवप्रसाद के प्रति कमला अभी जितनी उदासीन बनी रह सकी थी उतनी चपला नहीं रह सकी थी। यह सोचकर कि मेरे इस भाव को कमला जीजी ने हृदयंगम कर लिया, चपला के हृदय में एक प्रकार की बेचैनी पैदा हुई। उसके चेहरे पर इस अशान्ति के भाव की झलक देखकर कमला ने कहा—'चपला, तुम यह स्वप्न में भी मत सोचो कि मैं इस तरह की कोई भी बात, संकेत-रूप में भी, अम्मा से कह सकती हूँ। लेकिन यह तुमसे अवश्य कहूँगी—और तुम्हारे हित के लिए इतना कहना मेरा धर्म्म है—कि शिवप्रसाद से सावधान रहो।'

'क्यों ?' चपला ने उत्कण्ठापूर्वक पूछा।

क०—'तुम्हारा यह प्रश्न ही शिवप्रसादके सम्बन्धमे तुम्हारे मनोभावों को प्रकट कर रहा है। मै तुम से अपने जी की बात कह रही हूँ कि शिवप्रसाद के लिए तुमने अपने हृदय का द्वार खोल कर अच्छा नहीं किया। तुम जो मुझे किताब का कीड़ा कहा करती हो, सो तो सच है ही, लेकिन इस कीड़ेपन ने मुझे पुरुष-जाति के बहुत से रहस्यों को समझा दिया है। मैं तो शिवप्रसाद को देखते ही ताड़ गयी कि यह बड़ा ही होशियार शिकारी

है; मेरा समझना थोड़ ही देर में यथार्थ भी सिद्ध हो गया; उसका जादू तुम्हारे ऊपर चल गया। अच्छा एक बात तो बताओ चपला! तुम्हें दीनानाथ अच्छे लगते हैं या शिवप्रसाद? मनुष्यता के नाते दोनों को तौल कर बताओ।'

च०—'मनुष्यता के नाते दीनानाथ तो शिवप्रसाद से बहुत ही अधिक भले आदमी कहे जाएँगे। लेकिन—'

कमला ने बीच ही में बात काट कर आँखें नचाते हुए कहा—"हाँ हाँ, मैं स्वयं कहे देती हूँ—लेकिन शिवप्रसाद प्रिय अधिक लगते हैं। यही न चपला? या और कुछ?"

चपला के कपोलों पर लालिमा दौड़ गयी। वह बोली—"जीजी, मैं तुम्हारे सामने कसम खाती हूँ कि अब कभी शिवप्रसाद का मुँह भी न देखूँगी, उसकी चर्चा भी न सुनूँगी। लेकिन ईश्वर के लिए आज जो कुछ भी इस सम्बन्ध में बातें हुईं यही अंतिम हों।"

क०—"नहीं, नहीं, चपला! तुम जल्दी कर रही हो। मैं यह नहीं कहती कि ससार में तुम दीनानाथ से अधिक प्यार किसी को न करो, यह कहना तो वैसा ही होगा जैसा यदि मैं कहूँ कि बाबू जी या अम्मा जी को छोड़ कर तुम किसी को मत चाहो। अगर शिवप्रसाद को मैं तुम्हारे प्रेम के योग्य समझती तो मैं उसकी आलोचना न करती; उसके स्थान में किसी दूसरे भले आदमी के प्रणय-सूत्र में यदि तुम बँध जाओ तो तुमसे बड़ी होने के नाते मैं तुम्हें आशीर्वाद ही दूँगी, किन्तु जो आदमी रूपवती स्त्रियों के प्रेमपाश में फँस कर अपना धर्म्म परिवर्तन कर सकता है उसे मैं भला आदमी नहीं समझती, और उससे तुम्हें बचाने के लिए मैं प्रयत्न करना नहीं छोड़ूँगी।"

यह नहीं कहा जा सकता कि चपला को किसी बहुत भले आदमी से प्रेम करते हुए देख कर कमला वास्तव में प्रसन्न होकर

हृदय से आशीर्वाद दे सकती या नहीं। एक बात तो अब भी स्पष्ट थी; शिवप्रसाद कमला की दृष्टि में एक अत्यंत पतित, और घृणा के योग्य व्यक्ति थे, किन्तु फिर भी न जाने क्यों कमला की नेकनीयती से भरी हुई इस सलाह में, सात परदे के अन्दर छिप कर बैठने पर भी ईर्ष्या देवी के दर्शन, सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर, हो ही सकते थे। कमला के चरित्र में, स्वभाव में, न जाने कैसे एक बहुत बड़ी दुर्बलता प्रवेश कर गयी थी—वह किसी वस्तु के प्रति तब तक कोई इच्छा नहीं रखती थी जब तक चपला उसके लिए आग्रह नहीं प्रकट करती थी। चपला जिस गुलाब के फूल को अपने बालों में गूँथती, जिस केश तेल, क्लिप, वेसलीन, साड़ी जाकेट, शू, पुस्तक का व्यवहार करने लगती वही कमला की दृष्टि में मूल्यवान हो जाता था और तब या तो इच्छित वस्तु को प्राप्त कर के वह अपनी वासना की तृप्ति करती थी या उसकी तरह तरह से आलोचना करके उस वस्तु ही को उपेक्षणीय सिद्ध कर देती थी। बेचारी सीधी-सादी चपला कमला के हृदय और मस्तिष्क की इस गूढ़ प्रवृत्ति को समझ नहीं पाती थी।

चपला कुछ कहने ही वाली थी, तब तक डिप्टी साहब, और श्यामकिशोर शिवप्रसाद को विदा करके चले आये। चपला और कमला दोनों ने श्यामकिशोर को पिता से कहते सुना—'बाबू जी, मैंने प्रायः नये सम्प्रदाय को अंगीकार करने वालों में इतनी उदारता नहीं देखी। वास्तव में यदि इसी तरह की उदारता का विकास हिन्दुओं, मुसलमानों, और ईसाइयों सभी की मनोवृत्तियों में हो जाय तो भारतीय स्वराज्य का प्रश्न हल करने में देर ही न लगे।"

ये बातें पूरी होते होते चपला और कमला भी पिता-पुत्र की बातचीत में शामिल हो गयीं। रघुनाथप्रसाद एक कुर्सी पर बैठ गये; और लोग भी चारों ओर बैठ गये। रघुनाथप्रसाद बोले—

'श्याम,मेरा तो ख्याल है कि समझाने-बुझाने से यह आर्य्य-समाज के भीतर आ जायगा। तुम्हें शायद यह नहीं मालूम कि यह हमारी ही जाति का है—अगरवाला है। ईश्वर की दया से हमारी विरादरी में काफी पढ़े-लिखे लोग हो गये हैं; मुझे पूर्ण आशा है कि वे सब इसका स्वागत करेंगे।'

श्या०—'स्वागत तो करेंगे, लेकिन ईसाइयों और मुसलमानों की तरह थोड़े ही स्वागत करेंगे!'

र०—'उन्हीं की तरह करना पड़ेगा। बेटा,इस समय हिन्दुओं को निगल जाने के लिए ईसाई अलग मुँह बाये बैठे हैं, मुसल्मान अलग। अगर आत्मरक्षा के लिए हम उनसे लड़ना चाहते हैं तो उन्हीं के से अस्त्रों को भी काम में लाना पड़ेगा।'

श्यामकिशोर को एक बार तो यह समझ पड़ा कि बाबू जी बिलकुल सही कह रहे हैं; लेकिन शीघ्र ही उसे सन्देह हो गया। उसने कहा—'बाबू जी क्या आपका यह मत नहीं है कि ईसाइयों और मुसल्मानों ही की तरह शुद्धि का काम करने से उनसे वैर-विरोध बढ़ जायगा!'

र०—'इसमें क्या शक कि ऐसा होगा, परन्तु केवल इसी डर से हम अपना कर्त्तव्य-पालन क्यों बन्द कर दें। हम आर्य्य-समाजियों का तो यह उसी तरह मिशन है जिस तरह ईसाइयों और मुसल्मानों का; सनातन धर्म्मी अलबत्ता भीगी बिल्ली बने रहें। मुझको तो शुद्धि का कार्य्य उतना ही प्रिय है जितना साँस लेना।'

'किन्तु क्या आप का यह ख्याल नहीं है कि हिन्दुओं और मुसल्मानों में फूट हो जाने से अँगरेजी सरकार उससे अनुचित लाभ उठायेगी'···दबी जबान में श्यामकिशोर ने कहा।

रघुनाथप्रसाद ने उत्तर दिया—'बेटा सौ बात की एक बात

यह है कि मुझे सल्तनत पीछे चाहिए; पहले जिन्दगी की जरूरत है।'

पिता के स्वर में वह दृढ़ता थी जिसने श्यामकिशोर को आगे बोलने नहीं दिया।

तब तक रामकरन ने आकर भोजन का प्रश्न छेड़ दिया। विषय जहाँ का तहाँ छूट गया।

[७]

शिवप्रसाद ने शीघ्र ही चायपार्टी की आयोजना कर डाली और एक ओर तो मिस मारगरेट को और दूसरी ओर सपरिवार रघुनाथप्रसाद को निमंत्रण दे दिया। मिस्टर सिंह भी, शिवप्रसाद की इच्छा से, निमंत्रण देने में सम्मिलित हो गये। साढ़े चार बजे संध्या का समय नियत हुआ। अपने सजे हुए कमरे में उचित समय पर सब प्रबन्ध ठीक करा कर मिस्टर सिंह शिवप्रसाद से टहलते हुए बातें कर रहे थे कि एकाएक कुमारी मारगरेट साइकिल पर आ गयी। बात जहाँ की तहाँ छोड़ कर मिस्टर सिंह मारगरेट की खातिरदारी में लग गये। शिवप्रसाद मन ही मन यह समझते थे कि यह काम उनका था, लेकिन वे अपने प्यारे दुःखग्रस्त ससुर के दिल-बहलाव में बाधा नहीं डालना चाहते थे, विशेष कर जब उनके पास उसका परिमित साधन ही था।

आठ ही दस मिनटों में श्यामकिशोर, चपला और कमला को लिये हुए खुली घोड़ा-गाड़ी में बाबू रघुनाथप्रसाद भी आ गये।

इस मंडली में बाबू रघुनाथप्रसाद का ठाट सब से निराला था। बावन वर्षों की उम्र में वे सफेद बालों से घबराते नहीं थे; यों कहना चाहिए कि उनकी धुली हुई सफेद पगड़ी ने सफेद बालों को भी खुल कर हँसने का मौका दे दिया था। सफेद गरम

कपड़े की अचकन, वैसा ही पायजामा, कुछ भूरापन लिये हुए मोजा लाल रंग का शू और हाथ में चाँदी की मुठिया वाली एक खबसूरत, फिर भी मजबूत मोटी छड़ी---संक्षेप में इतने ही से पाठक अपने सामने डिप्टी कलेक्टर नहीं, सुधारक बाबू रघुनाथ-प्रसाद का चित्र खड़ा कर लें।

ज्यों ही बाबू रघुनाथप्रसाद गाड़ी में से उतरे, शिवप्रसाद ने दौड़ कर उनका स्वागत किया। श्यामकिशोर पूरे सूट में थे और दाहिने हाथ पर ओवर कोट रक्खे हुए थे। चपला और कमला की पोशाक में भी कुछ अन्तर था, किन्तु उससे इतना ही प्रकट होता था कि एक में सुन्दरी समझे जाने, प्यार किये जाने की प्रकट लालसा है तो दूसरी में शायद किसी कारण-वश संकुचित होकर वही लालसा वेष-भूषा की लापरवाही में व्यक्त हो रही है। इस साधारण किन्तु शीघ्र ध्यान में न आने वाले अन्तर को छोड़ कर अन्य विशेषताएँ दोनों नवयुवतियों में प्रायः एक ही सी थीं शू, मोजा, साड़ी, स्वेटर, हाथों में सोने के दो दो कङ्कण, कलाई घड़ी, कानों में सोने के इयररिंग, और दाहिने हाथों पर गरम शाल। मिस्टर सिंह अपनी बैठक से निकल कर बरामदे में इस मंडली का स्वागत करने के लिए खड़े थे, और शिवप्रसाद द्वारा परिचय की रस्म अदाई के बाद उन्होंने आगन्तुकों को बैठक में ले जाकर यथाविधि कुमारी मारगरेट से जो बाबू रघुनाथप्रसाद के प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिए खड़ी हो गयी थी, सब का परिचय कराया। इसके बाद सब लोग कुर्सियों पर, जो एक बड़ी गोलमेज के चारों ओर रक्खी हुई थीं, बैठ गये। कुमारी मारगरेट स्वभावतः आकर्षित होकर चपला और कमला के पास बैठी और श्यामकिशोर और रघुनाथप्रसाद एक साथ रहे। शिवप्रसाद और मिस्टर सिंह थोड़ी देर तक

मेहमानदारी में लगे रहने के बाद चाय-पान में सहयोगी हो गये।

इस चाय-मंडली में दो पुरुष तो किसी भी गम्भीर प्रश्न पर गम्भीर विचार उपस्थित करने के सर्वथा अयोग्य थे—ये थे मिस्टर सिंह और शिवप्रसाद। मिस्टर सिंह को आज कुमारी मारगरेट संसार के सम्पूर्ण सौन्दर्य की खान के रूप में दिखायी पड़ रही थी; इसी तरह शिवप्रसाद की दृष्टि में चपला विश्व की अखिल छवि की अधिकारिणी प्रतीत हो रही थी। निस्सन्देह कुमारी मारगरेट के रूप ने श्याम-किशोर की आँखों में भी चकाचौंध उत्पन्न कर दिया था; किन्तु यह युवक आसक्ति के नशे में बेहोश नहीं था। स्त्रियों मे चपला भले ही कुछ अन्यमनस्क दीख रही हो, किन्तु कुमारी मारगरेट तो उत्साह की उतनी ही दमकती हुई मूर्ति हो रही थी जितनी कमला गम्भीरता की। ऐसी अवस्था में बातचीत का श्रीगणेश कुमारी मारगरेट ही को करना पड़ा। उसने कहा—'मिस्टर प्रसाद –,' उसका वाक्य पूरा नहीं हो पाया था कि अचानक उसे किसी बात का ख्याल आ गया और उसने शिवप्रसाद की ओर मुस्कराते हुए देख कर कहा, 'मेरा मतलब आप से नहीं है।' उसके इस कथन ने सभी के चेहरों को हँसी से नहला और हास्य की ध्वनि से बैठक को गुंजा दिया। फिर से शान्ति स्थापित हो जाने पर बाबू रघुनाथप्रसाद की ओर देखते हुए मारगरेट ने कहा—'मिस्टर प्रसाद, एक प्रश्न के सम्बन्ध में मैं आप से कुछ पूछना चाहती हूँ—'आप के ख्याल में हम लोगों के समाज में स्त्रियों का आदर अधिक है या आप के समाज में ?'

मंडली में से हर एक की आँखें रघुनाथप्रसाद की ओर चली गयीं; थोड़ी देर के लिए चम्मचों ने भी काम करना बन्द कर दिया।

रघुनाथप्रसाद बड़े धर्म्म-संकट में थे। यदि वे कह देते कि हमारे यहाँ स्त्रियों का बहुत अधिक आदर है तो वर्त्तमान दशा की ओर तुरन्त ही उनका ध्यान खींचा जा सकता था। यदि यह न कह कर वे कह देते कि हमारे यहाँ स्त्रियों का आदर नहीं है तो इससे उनके सामाजिक अभिमान को धक्का लगता था। किन्तु इन दोनों अवस्थाओं से भी अधिक भद्दा था इस प्रश्न की अवहेलना करना अथवा इसके उत्तर में विलम्ब करना। अतएव उन्होंने कहा—'हमारे ऋषियों ने नारी-सम्मान के लिए तो बहुत आदेश दिया है, लेकिन शिक्षा के अभाव से हमारी स्त्रियों का विशेष अथवा उचित आदर नहीं हो पाता, इसमें सन्देह नही।'

रघुनाथप्रसाद की वाणी की दुर्बलता से उत्साहित होकर मि० सिंह बोले उठे—'हिन्दू समाज में नारी का स्थान गाय-भैंस से अधिक नहीं है; हिन्दुओं ने उसे गुलामी के बंधन से जकड़ रक्खा है; वह अपने मन के अनुसार विवाह नहीं कर सकती, समाज में आ जा नहीं सकतीं; घर के भीतर वह इस तरह बंद रखी जाती हैं कि बाहरी संसार की हवा भी उसके बदन में नहीं लग सकती।'

शिवप्रसाद ने कहा—यह बात तो नहीं है। प्राचीन हिन्दू अपनी स्त्रियों का बड़ा आदर करते थे। स्त्रियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में काम करती तथा पुरुषों को सहायता देती थीं। आज कल भी शिक्षित हिन्दुओं में परदे की उतनी कड़ाई नहीं है जितनी अशिक्षितों में देखी जाती है। शिक्षित हिन्दू स्त्रियाँ वर्त्तमान समय में भी देश के राजनैतिक, सामाजिक और

धार्म्मिक क्षेत्रों में नेतृत्व कर रही हैं। ऐसी अवस्था में यह व्यापक रूप से नहीं कहा जा सकता कि हिन्दुओंने अपनी स्त्रियों को गुलाम वना रक्खा है।'

शिवप्रसाद का यह भाषण चपला के लिए तो संतोषप्रद था ही, कमला को भी अच्छा लगा। कुमारी मारगरेट की निर्भीकता से प्रभावित होकर इस वातचीत में उसने भी भाग लेने का निश्चय किया, विशेषकर जव चाय-पान की रस्म अदाई का नाम मात्र करने के कारण उसके पास अवकाश का वाहुल्य था। उसने कहा—'मैं तो नहीं समझती कि हम लोग किस दृष्टि से पुरुषों की गुलाम हैं। मेरी माता जी का तो कहना है कि ईसाई समाज में स्त्रियाँ गुलाम हैं; वहाँ नारी और पुरुष का सम्वन्ध एक सौदे पर टिका रहता है; इस सौदे में कोई जरा सा दवा कि उस पर छापा पड़ा। इसके विपरीत हिन्दू नारी अविवाहितावस्था में पिता की, विवाहितावस्था में पति की; विधवावस्था में पुत्रों की सहायता पाकर जीवन-पर्य्यन्त अच्छे कामों में लगी रहती है। अपने पति के साथ उसका सम्वन्ध तो अटूट है।'

कमला को अपनी वात समाप्त करते देखकर श्यामकिशोर ने कहा—'अभी हम लोगों की वातचीत बिना किसी उद्देश्य के चल रही है। पहले हम यह तय करलें कि जीवन में हम करना क्या चाहते हैं? एक समय था जव हमें समाज के साधारण संगठन के सिवा और अधिक की आवश्यकता नहीं थी, हमारे पास कोई सामूहिक समस्याएँ नहीं थीं, कोई ऐसे संकट नहीं थे जिन्हें सामाजिक रूप से दूर करने के लिए सचेष्ट होने पर व्यक्ति को विशेष हानि थी। किन्तु अव वह समय इस देश का, भारतीय समाज का नहीं रहा; अव यह अनिवार्य्यत: आवश्यक हो गया है कि हम सव अपनी सम्पूर्ण व्यक्तिगत प्रतिभा,

योग्यता और बल लेकर एकत्र हों और ऐसे समाज का निर्माण करें जिसमें भविष्य में प्रत्येक व्यक्ति को विकास की उचित सुविधा रहेगी। हमारे देश में इस समय अनेक ऐसी शक्तियाँ काम कर रही हैं जो न केवल हमारे धन पर बल्कि हमारे व्यक्तित्व पर भी आक्रमण कर रही हैं और उसे कुचल कर मिट्टी में मिला देना चाहती हैं। इस अन्याय को रोकने के लिए हर एक भारतीय नवयुवक और नवयुवती को अग्रसर होना चाहिए। इस प्रयत्न में यदि हम हिन्दू नारी को अपना भाग लेने से रोकते हैं और यदि हमारे रोकने से स्त्रियाँ रुकती हैं तो निस्सन्देह स्त्रियों को हमने गुलाम बना रक्खा है। मेरा मत है कि स्त्रियों को इस नवीन क्षेत्र में भी काम करने की काफी स्वतंत्रता दी जा रही है। ऐसी दशा में यह कैसे कहा जा सकता है कि हिन्दू नारी गुलाम है ?"

श्यामकिशोर का यह छोटा सा व्याख्यान सुनकर एक अनूठी, अज्ञात, सरस भाव- लहरी कुमारी मारगरेट के हृदय-सरोवर में तरंगित हो गयी; बिजली की रोशनी में श्यामकिशोर के स्वस्थ शरीर, मनोहर वेषभूषा, और इन सब से अधिक स्वस्थ और मनोहर विचार-धारा का परिचय पाकर उसके मन में श्यामकिशोर के प्रति एक तीव्र आकर्षण का अनुभव हुआ। श्यामकिशोर को अपनी ओर आकर्षित करने के अभिप्राय ही से उसने चाय का प्याला और चम्मच अपने सामने से मेज के मध्यभाग की ओर खिसकाने और जेब में रूमाल निकाल कर मुँह पोंछने के बाद एक हलकी मुसकान के साथ कहा—'मैं चाहती हूँ कि मेरी छोटी बहन चपला भी इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करें !'

इस समय तक लगभग सभी लोग चाय पीना समाप्त कर चुके थे; चपला भी अब मुँह-हाथ पोंछ ही रही थी। मिस्टर

शिवप्रसाद ने नौकर को आवाज दी; उसने आकर सब बर्तन मेज से उठा लिये और मेज को एक बड़ी तौलिया से पोंछ दिया। इस विघ्न के समाप्त होते ही चपला ने कहा—'मैं तो यह जानती ही नहीं कि हिन्दू नारी परतंत्र क्यों कही जाती है; मुझको, मेरी बहिन को, मेरी माता को परतंत्रता का बिल्कुल अनुभव नहीं। मेरी माता जी अपनी इच्छा से परदा किया करती थीं; लेकिन हाल ही में पिता जी की आज्ञा से वे भी किसी से परदा नहीं करतीं और अब कहती हैं कि न केवल वे बहुत बड़ी ग़लती में थीं, बल्कि परदे के कारण संसार के बहुत अधिक अनुभव से उन्होंने अपने आपको वंचित कर लिया था।'

चपला की बात समाप्त होते ही रघुनाथप्रसाद ने कहा—'श्यामकिशोर, कमला और चपला ने जो कुछ कहा है वह प्रायः ठीक है, लेकिन अगर देश की उन स्त्रियों की ओर ध्यान दिया जाय जो हिन्दू समाज की मध्य श्रेणी से सम्बन्ध रखती हैं तो उनकी अवस्था दयनीय अवश्य है। मैं तो सरकारी नौकरी के कारण अपने विचारों के अनुसार काम नहीं कर पाया, नहीं तो देश में इस समय एक भीषण सामाजिक क्रान्ति दिखायी देती। अब बावन वर्ष की उम्र में यह आशा भी नहीं रह गयी कि भविष्य में कोई ठोस सेवा-कार्य्य कर सकूँगा। फिर भी मैं श्यामकिशोर, कमला और चपला को इसी उद्देश्य से उच्च शिक्षा दे रहा हूँ कि ये वह काम करें, जिसे मैं नहीं कर सका। श्यामकिशोर के गत वर्ष ग्रेजुएट हो जाने पर सरकारी नौकरी के बहुत से मौके थे। लेकिन मैंने इन्हें वकील बनाने ही का निश्चय किया, क्योंकि वकालत करते हुए ये समाज-सेवा का बहुत अच्छा अवसर पा सकेंगे। कमला और चपला से भी मुझे

नौकरी नहीं करानी, इन्हें भी मैं समाज सेवा के काम ही में डाल दूँगा।'

कुमारी मारगरेट ने कहा—'आप के इस कार्य्य में यदि मैं भी कुछ सहायक हो सकूँ तो मै सहर्ष आप का हाथ बँटाऊँगी क्या आप अभी यहां कई दिन ठहरेंगे ?'

र०—'नहीं, परसों तो मैं चला जऊँगा, क्योंकि कचहरी तीसरी जनवरी को खुल जायगी और एक दिन पहले जाना चाहता हूँ। यदि आप चाहें तो कल कुछ बातें हो सकती हैं।'

मा०—'मैं एक ऐसी संस्था को जन्म देना चाहती हूँ, जो भारतवर्ष की स्त्रियों में स्वतंत्रता का भाव फैलावे, मुझे इस देश के प्रति बड़ी श्रद्धा है, और इसी श्रद्धा से प्रेरित होकर मैं इसकी कुछ सेवा करना चाहती हूँ।'

र०—'इस संस्था को तो आज ही जन्म दे दीजिए, रहा कार्य्यक्रम, सो उसके सम्बन्ध में बातचीत होती रहेगी। मैं समझता हूँ इसका नाम रखिए—'स्वतंत्र 'नारी-समाज' और इसके मंत्री का काम आप ही सँभालिए।'

मा०—'मैं तो इस काम में अपना सारा समय लगाऊँगी, लेकिन मंत्री का पद मुझे न सौंपिए।'

र०—'आप चाहे काम कुछ न करिए, लेकिन मंत्री के पद पर आप ही का नाम रहेगा; श्यामकिशोर को आप सयुक्त मंत्री के पद पर रख सकती हैं।'

इस प्रस्ताव से कमला की आँखों के आगे अँधेरा छा गया; किसी अप्रिय परिणाम का स्मरण करके वह काँप उठी।

मिस्टर सिंह, शिवप्रसाद और श्यामकिशोर के आग्रह करने पर कुमारी मारगरेट ने मंत्रीपद स्वीकार कर लिया।

इसी प्रकार मिस्टर सिंह सभापति, बाबू रघुनाथप्रसाद उप-

सभापति और शिवप्रसाद, दीनानाथ, कमला, तथा चपला का नाम प्रबन्ध-समिति के लिए पसंद किया गया। निश्चय किया गया कि इस संस्था की स्थापना हो।

लगभग सात बजे यह चायपार्टी विसर्जित हुई।

[८]

लखनऊ ने दीनानाथ के जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन कर दिया था; उनकी दानशीलता ने भी वहाँ एक संयत रूप धारण कर लिया था। बनारस में उन्होंने माता करुणादेवी से जो वादा किया था उसका ठीक ठीक पालन करने से उनकी आर्थिक अवस्था अब वैसी खराब नहीं थी जैसी बनारस में थी। यही नहीं, गत छः सात वर्षों में उन्होंने कई हजार रुपयों की बचत भी करली थी और अब वे लखनऊ में एक सुन्दर मकान भी बनवा रहे थे। इधर शिवप्रसाद वाले मामले में जाकर इलाहाबाद से आने के बाद फिर वे वहाँ नहीं जा सके थे। चपला को निस्सन्देह उन्होंने भुलाया नहीं था और जब तब उसके और कमला के लिए लखनऊ से कुछ उपहार भेज दिया करते थे, और उनके, श्यामकिशोर तथा रघुनाथप्रसाद के कुशल-समाचार पूछ लेते थे।

बड़े दिनों की छुट्टी समाप्त होने के लगभग एक मास बाद फरवरी के प्रथम सप्ताह में एक दिन जब वे अपने अर्द्ध-निर्म्मित भवन के बरामदे में आराम कुर्सी पर बैठे-बैठे मजदूरों के कार्य का निरीक्षण कर रहे थे, एजेंट ने 'भारत-सेवक' नामक दैनिक पत्र उनके सामने छोटी मेज़ पर रख दिया। दीनानाथ ने सब ओर से ध्यान हटा लिया, और 'भारत-सेवक' खोल कर देखना शुरू किया। 'भारत-सेवक' की एक टिप्पणी ने सबसे पहले उनका ध्यान आकृष्ट कर लिया। वह इस प्रकार थी :—

'प्रयाग के कुछ सुधारकों ने बड़े साहसपूर्वक' 'स्वतंत्र नारी-समाज' नामक संस्था को जन्म दिया है। इसके प्रधान सूत्रधार बाबू रघुनाथप्रसाद डिप्टी कलेक्टर, इलाहाबाद जान पड़ते हैं। इलाहाबाद के कमिश्नर ग्रंट साहब इसके संरक्षक और उक्त बाबू रघुनाथप्रसाद इसके उपसभापति हैं। बड़े मार्के की बात तो यह है कि बनारस के पुलीस सुपरिंटेडेंट की कन्या कुमारी मारगरेट इसकी मंत्री हैं। सदस्यों के लिए १५) वार्षिक फीस है।

'स्वतंत्र नारी समाज' के संचालकों से हमारा एक निवेदन है, उन्होंने इस संस्था को बहुत छिपे-छिपे क्यों जन्म दिया है? जहाँ तक हमें मालूम है, इलाहाबाद में भी इसका उचित विज्ञापन नहीं किया गया, साथ ही इसके उच्च पदाधिकारियों में सरकारी नामों को देख कर यह सन्देह भी होता है कि यह कोई संस्था नहीं, बल्कि एक नये ढंग का क्लब है, जिसमें अंग्रेज और ईसाई पुरुषों को हिन्दुस्तानी महिलाओं के साथ नाचने का मौका मिलेगा। क्या हमारे समाज की उन्नति का यही ठीक रास्ता है? हमें तो बाबू रघुनाथप्रसाद की बुद्धि पर तरस आता है, जो हिन्दू महिलाओं को पाश्चात्य देशों की औरतों की तरह सम्मानित वेश्याएँ बनाने ही में स्त्रियों की स्वतंत्रता की कल्पना करते हैं।'

यह टिप्पणी पढ़कर दीनानाथ ने समाचार-पत्र को मेज पर रख दिया और इस संस्था के सम्बन्ध में कुछ विचार करना शुरू किया। तुरन्त ही उनका ध्यान चपला और कमला की ओर गया। उन्होंने देखा कि बाबू रघुनाथप्रसाद इन दोनों लड़कियों का भविष्य जीवन नष्ट किये बिना नहीं रहेंगे। एक बार तो उन्हें कुछ विरक्ति का अनुभव हुआ, किन्तु बाद को अपने कर्त्तव्य के सम्बन्ध में उदासीन रह जाना भी एक अपराध के बराबर

जान पड़ा। कुर्सी पर से उठकर उन्होंने बरामदे के पास वाले कमरे की एक आलमारी में से लेटर पेपर और फाउन्टेनपेन निकाला और निम्न लिखित चिट्ठी बाबू रघुनाथप्रसाद के नाम लिखी :—

प्रिय बाबूसाहब,

जैराम जी की

इधर बहुत दिनों से आप का कोई समाचार नहीं मिला। मैं भी कुछ कामों से, विशेष कर अस्वस्थ पत्नी की सेवा-सुश्रूषा से ऐसा व्यस्त रहता हूँ कि आज धीरे-धीरे पाँच वर्ष बीतने आये और इलाहाबाद तक मैं आ न सका। कुछ दिन हुए चपला की एक चिट्ठी आयी थी, शायद एक साल के लगभग हुआ होगा। उस चिट्ठी में उसने अपने एफ० ए० और श्यामकिशोर के बी० ए० पास होने का समाचार लिखा था मैंने उसका उत्तर तो भेज दिया था लेकिन फिर कोई चिट्ठी आप के यहाँ से नहीं आयी।

यह चिट्ठी लिखने का एक विशेष कारण है। मैं नहीं जानता कि बाबू श्यामकिशोर तथा दोनों लड़कियों की शादी के लिए आप क्या सोच रहे हैं। मेरी राय है कि अब तीनों का विवाह शीघ्र से शीघ्र हो जाना चाहिए। अब इस कार्य में विलम्ब होना अनुचित है।

मेरी स्त्री का स्वास्थ्य आज-कल कुछ चिन्ताजनक हो रहा है। एक तो सदा से ही वे पूर्ण रोगिणी रही हैं, इधर भावी मातृत्व के भार ने उन्हें और भी पीड़ित कर रक्खा है। मैं तो लड़के के लिए उतना उत्सुक नहीं हूँ जितना पत्नी के स्वास्थ्य के लिए, क्योंकि मेरा दृढ़ विश्वास है कि उसके वियोग को मैं नहीं सहन कर सकूँगा। माता जी भी आज-कल अपनी बहू से बहुत प्रसन्न हैं, किन्तु अगर लड़का न हुआ, लड़की हो गयी तो उनका भाव

पहले का सा ही हो जायगा।

हुसेनगंज में मकान बनवा रहा हूँ; करीब क़रीब तैयार हो गया है; थोड़ी कसर बाकी है।

आशा है आप सकुशल हैं।

दीनानाथ।

यह पत्र लिफाफे में बन्द करके दीनानाथ ने डाक में छोड़ने के लिए नौकर के हवाले कर दिया।

[६]

श्रीमती गायत्री देवी की समझ में यह बात न आती थी कि सुधारक लोग लड़कों और लड़कियों की शादी जल्दी क्यों नहीं होने देते। अगर उनका बस चलता तो न जाने कब उनके घर में पतोहू के पाँव पड़ चुके होते और लड़कियाँ एक या दो बच्चों की माँ हो गयी होतीं। उनकी सिधाई समझिए या बाबू रघुनाथ-प्रसाद की नीति-कुशलता, कारण कुछ भी हो, किन्तु इस समय श्यामकिशोर २४ वर्ष के, कमला २१ वर्ष की, और चपला १६ वर्ष की थी और फिर भी ये सब के सब अविवाहित थे। इधर गायत्री देवी ने एक और विचित्रता बा० रघुनाथप्रसाद की बात-चीत में देखी, वह यह कि वे कमला के विवाह की तो चिन्ता प्रकट करते थे, उसके लिए पसन्द का कोई लड़का न मिलने की शिकायत भी करते थे, लेकिन चपला का नाम ही नहीं लेते थे। अगर गायत्री देवी हठपूर्वक चपला की चर्चा छेड़ती भी थीं तो रघुनाथप्रसाद तुरन्त ही उत्तर दे देते थे कि कमला परायी लड़की है, साथ ही चपला से दो वर्ष बड़ी है, इसलिए उसके विवाह का प्रबन्ध अधिक शीघ्र होना चाहिए। बेचारी गायत्री देवी के पास फिर कोई उत्तर न रह जाता था।

कमला से गायत्री देवी कोई बात छिपाती न थीं। एक दिन उन्होंने उससे दोपहर के समय हँसी में पूछा—'बेटी, अब तो तुम समझने-बूझने लायक हुई, यह तो बताओ कि तुम्हारे लिए कैसा घर-बर ढूँढूँ।' गायत्री देवी ने सहज भाव से यह प्रश्न किया था, किन्तु न जाने क्यों कमला दुखी हो गयी। कोई भी उत्तर दिये बिना वह अपने कमरे में जाकर, किवाड़ी बन्द कर लेट रही।

घर के काम-काज से छुट्टी पाकर रमदेइया थोड़ा विश्राम करने जा रही थी, तब तक उस पर गायत्री देवी की निगाह पड़ गई। उसने बचने की कोशिश की, लेकिन जब हाथ के इशारे से मालकिन ने उसे बुलाया तब मन ही मन कुड़मुड़ाती हुई वह आयी। गायत्री देवी ने मुसकरा कर उसे चटाई पर बैठ जाने को कहा। मालकिन से उसने इतना आदर कभी नहीं पाया था, इसलिए वह बहुत प्रसन्न हुई।

गायत्री देवी ने कहा—'एक बात पूछूँ, तू बता सकेगी?

'जानती हूँगी तो बताऊँगी क्यों नही, आप तो मालकिन ही नहीं, मेरी माता के तुल्य हैं'—रमदेइया ने उत्तर दिया।

गायत्री—'इन लड़कियों से कभी तेरी बातचीत भी होती है? मैं जानना चाहती हूँ कि ये अपनी शादी के बारे में क्या सोचा करती हैं। रमदेइया बेटी, हम लोग एक की जगह चार खर्च करने को तैयार हैं, लेकिन पसंद का लड़का भी तो मिले।'

र०—'माँ जी, आप नाराज न हो तो बताऊँ।'

गा०—'कह भी।'

र०—'कमला दीदी से अक्सर मेरी बातें हुआ करती हैं। एक दिन वे कहती थीं कि बाबू श्यामकिशोर का व्याह हो लेगा

तब मेरा ब्याह हो सकेगा। फिर एक दिन कहने लगीं कि मैं तो ब्याह ही नहीं करूँगी। क्या भैयाजी के साथ कमला दीदी का ब्याह नहीं हो सकता माँ जी?'

गा०—'अरी पगली, होने को तो संसार में क्या क्या नहीं होता, लेकिन जिसे बेटी बनाकर पाला उसे बहू कैसे बना लूँ? क्या कमला ऐसी बात भी कहती थी?'

र०—'नहीं, कहती तो नहीं थीं, लेकिन उनकी बातों से जान पड़ता है कि वे भैया जी को जी-जान से प्यार करती हैं। आपकी सगी बेटी तो वे हैं नहीं।'

ग०—'मैं तेरी वकालत नहीं चाहती; मैं तो कमला के भावों को समझना चाहती हूँ। क्या वह भी कभी ऐसी बात मुँह पर लायी थी?'

ज०—'आप कमला दीदी के सामने मेरा नाम न खोलें तो मै बता सकती हुँ, क्योंकि अगर आप उनसे पूछ बैठेंगी तो वे तुरन्त समझ जायँगी कि मैंने ही आप से कहा है।'

ग०—'नहीं, नहीं, रमदेइया, यह बात मैं अपने मन ही में रक्खूँगी। तू निडर होकर बता।'

र०—'परसों मैंने कहा, कमला दीदी, यह जो सभा बाबू जी ने खोली है उसमें हिन्दू, मुसल्मान, और क्रिस्तान सभी एक साथ बैठकर खाते हैं; कहीं ऐसा न हो कि आपस में शादी-ब्याह भी होने लगे। इसके उत्तर में उन्होंने कहा था कि साल ही दो साल में तुम सुन लेना कि एक ईसाई लड़की और हिन्दू लड़के तथा ईसाई पुरुष और हिन्दू लड़की के बीच में ब्याह हो गया। बहुत पूछने पर यह भी बताया कि इन चार में से दो इसी घर के हैं।'

गा०—'नाम भी जरूर ही बतलाया होगा। तुम कहे जाओ, तुम्हारी एक बात भी तीसरे कान में न पड़ने पावेगी।'

र०— 'हाँ. अम्मा, इसका ध्यान बनाये रहियेगा। उन्होंने बताया था कि बनारस से जो ईसाइन लड़की मारगरेट आयी है वह श्यामबाबू को बहुत चाहती है और शिवप्रसाद की आँख चपला पर लगी हुई है। उन्होंने कहा कि श्याम बाबू तो अभी मारगरेट के चक्कर में नही पड़े हैं, लेकिन चपला मन ही मन शिवप्रसाद को प्यार करने लगी है। कमला दीदी की ये बातें सुन कर मैंने उनसे कहा कि श्यामबाबू को मारगरेट के जाल से बचा लीजिए, नहीं तो मालकिन रो रो कर मर जायँगी।'

गायत्री देवी के माथे पर चिन्ता की रेखाएँ खिच गई,उन्होंने रमदेइया के मुँह पर अपनी आँखे गड़ा दी।

रमदेइया फिर बोली—'मेरे ऐसा कहने पर कमला दीदी ने कहा—मैं चपला को तो नहीं बचा सकती, हाँ, बाबू श्यामकिशोर को जरूर ही रोक सकती हूँ। लेकिन इस काम में मै तभी सफल हो सकती हूँ जब मेरा व्याह उनके साथ हो जाय; और मेरा व्याह उनके साथ हो सके, यह सम्भव नही, क्योंकि मेरी जाति-पाँति का कोई पता नहीं। यह कहते कहते कमला दीदी की आखों में आँसू आ गये थे। तो अम्मा जी, क्या सचमुच कमला दीदी का व्याह श्याम बाबू से नहीं हो सकता? बहुत अच्छा तो हो, आखिर छोटी दीदी कहीं चली ही जायँगी, क्यों न कमला दीदी को बहू बना लीजिए।'

गा०—'अरी पगली, कैसी बातें करतीं है। जो अब तक भाई बहन होकर रहे उन्हीं की शादी हो! लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे!!'

र०—'अम्मा जी अगर श्याम बाबू उस मेम के फेर में पड़ कर ईसाई हो जायँगे तब क्या करोगी?'

गा०—'अरे कहीं कुछ नहीं। वह लड़का और ही ढंग का

है; उसे कोई मेम नहीं बहका सकती। अच्छा जा, अब तू भी थोड़ा आराम कर ले।'

रमदेइया छुट्टी पाकर अपनी कोठरी में चली गई। गायत्री देवी भी चारपाई पर लेटकर गहरे विचार में डूब गयीं।

[१०]

कमला के विवाह के लिए बाबू रघुनाथप्रसाद एक योग्य वर की खोज में लगे हुए थे। 'स्वतंत्र नारी-समाज' की जो टीका-टिप्पणी पत्रों में प्रकाशित हुई उससे उन्होंने निश्चय कर लिया था कि बी० ए० की परीक्षा से निवृत्त होने के बाद ही कमला गृहिणी के रूप में परिणत कर दी जाय; वे कमला को एक थाती समझते थे और उसे अपने किसी प्रयोग का आधार बनाकर अपने ऊपर कलंक नहीं लगाना चाहते थे। रही चपला, सो उसके लिए वे अधिक चिंतित नहीं थे; क्योंकि उन्हें विश्वास था कि शिवप्रसाद शीघ्र ही बिरादरी में आ जायगा और अग्रवाल हो जाने पर वह उनका एक आदर्श जामाता होने के योग्य था।

कमला बड़े धर्म्म-संकट में पड़ी हुई थी। उसने निश्चय कर लिया था कि यदि विवाह करूँगी तो बाबू श्यामकिशोर के साथ, अन्यथा विवाह करूँगी ही नहीं। यदि उसका वश चलता तो वह गायत्री देवी और बाबू रघुनाथप्रसाद दोनों से चिल्ला कर कह देती कि मुझे अपनी बहू के रूप में स्वीकार करके इसी घर के एक कोने में पड़ी रहने दो, किन्तु उसका सारा बल, सारा संकल्प भी अधरों तक इस बात को नहीं आने देता था और अपनी इस विवशता के कारण वह शक्ति-हीन मिट्टी की तेजः-शून्यता का अनुभव करने लगती थी।

परीक्षा समाप्त हो जाने पर एक दिन अचानक उसके जी में आया कि दीनानाथ बाबू के पास पत्र लिखकर उनसे पूछूँ कि विवाह करना चाहिए या नहीं? इसी समय उसे उनके उस पत्र

की याद आयी जो उन्होंने, कई मास पहले बाबू रघुनाथप्रसाद के पास भेजा था और जिसे उसने कहीं मेज पर पड़े देख लिया था। 'स्वतंत्र नारी-समाज' के गत दो-तीन अधिवेशनों में शिवप्रसाद की ओर चपला का वृद्धिशील आकर्षण देख कर उसने दीनानाथ को उससे उदासीन बना देने का यह अच्छा अवसर समझा था। इसके अतिरिक्त बहुत सी ऐसी बातें थीं जिन्हें वह किसी प्रकार भी बाबू श्यामकिशोर से नहीं कहना चाहती थी; उसे आशा थी कि शायद उसके पत्र के उत्तर में बाबू दीनानाथ वे ही सब बातें लिख भेजें; उस अवस्था में केवल पत्र बाबू श्यामकिशोर को दिखला देने से उसका बहुत कुछ काम हो सकता था। यही सब सोच-विचार कर कमला ने बक्स में से लेटरपेपर और लिफाफा निकाल कर पत्र लिखना शुरू किया—

श्रद्धेय चाचा जी,

प्रणाम।

आशा है, इस सम्बोधन के लिए आप मुझे क्षमा करेंगे। एक अभागिनी अनाथ बालिका को आप इतना अधिकार देने में संकोच नहीं करेंगे, इसका मुझे दृढ़ विश्वास है।

आप की सेवा में यह धृष्टता करने का एक ऐसा प्रसंग उपस्थित हो गया कि मैंने उसकी शरण में जाना ही उचित समझा, संकोच और झिझक ने मुझे रोका, किन्तु आपकी उदार प्रकृति याद आयी और मैं दुस्साहस के हाथ की कठपुतली हो गयी। अस्तु।

पता नहीं, बाबू जी ने आपके पत्र का उत्तर दिया या नहीं, किन्तु यह तो मैं जानती हूँ कि आप की नेक सलाह का उन पर कोई असर नहीं। बेशक वे मेरे विवाह के लिए प्रयत्नशील हैं, और जब से बाबू श्यामकिशोर एल० एल० बी० (पहला साल)

की परीक्षा से निवृत्त हुए हैं तब से समय समय पर वे उन्हें इस कार्य की ओर अधिक ध्यान देने के लिए सचेत करते रहते हैं।

आपको शायद न मालूम हो, शिवप्रसाद यहाँ क्रिश्चियन कालेज में अध्यापक होकर आ गये हैं, अप्रेल तक चपला को अँगरेजी पढ़ाने आते थे। उनके कारण माता जी से बाबू जी की प्रायः लड़ाई हो जाया करती है। बाबूजी सदा उन्हीं का पक्ष ग्रहण किया करते हैं; शायद बाबू जी को आशा है कि वे बहुत जल्द आर्य्यसमाज में आ जायँगे।

कुमारी मारगरेट की भी बाबूजी खूब आवभगत कर रहे हैं; उनके कारण भी माता जी प्रायः बाबू जी से बहस किया करती हैं। माता जी को न जाने कैसे यह शक हो गया है कि बाबू श्यामकिशोर कुमारी मारगरेट के चक्कर में पड़ कर ईसाई हो जायँगे। अपनी इस आशंका को एक बार तो उन्होंने बाबूजी से साफ साफ प्रगट कर दिया। उत्तर में बाबू जी ने कहा कि बाबू श्यामकिशोर के ईसाई होने के पहले मारगरेट ही हिन्दू हो जायगी और शायद तुमसे भी अधिक कट्टर सनातनधर्म्मी निकले।

जो हो, इन बातों से मुझे कोई मतलब नहीं;मैं तो अपनी ही समस्याएँ लेकर आपके समाने उपस्थित होना चाहती हूँ, आप अनुभवी पुरुष हैं, आशा है, आप मेरे जीवन का कोई ऐसा लक्ष्य स्थित करेंगे जिसे प्राप्त करने के लिए मैं अपने सम्पूर्ण मनोबल को नियोजित करने में आनन्द का अनुभव करूँ।

संक्षेप में, मेरे सामने प्रश्न यह है कि मैं बाबुजी के ऋण से किस तरह उऋण होऊँ? यदि यह मान लूँ कि बाबू जी ने अपने आप को हिन्दू समाज का एक प्रतिनिधि मान कर मेरी सहायता की है तो यही प्रश्न यों हो जाता है—मैं हिन्दू समाज से किस प्रकार उऋण होऊँ? बाबू जी किसी धनवान युवक के साथ मेरा

विवाह कर देंगे, मेरे लड़के-बच्चे होंगे और मैं ताँगों और मोटरों पर घूमती फिरूँगी—क्या इसी जीवन को स्वीकार करके मैं हिन्दू समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकूँगी, उसके उस क़र्ज़ को चुका सकूँगी जो मेरे कंधों पर लदा है ?

उक्त जीवन को स्वीकार करने की अपेक्षा क्या यह अधिक अच्छा न होगा कि मैं जीवन भर अविवाहिता रह कर, अपनी प्यारी बहनों की, अपने प्यारे भाइयों की कुछ सेवा करूँ ? 'स्वतंत्र नारी-समाज' ऐसी संस्थाएँ हमारे देश में स्त्रियों के लिए जिस स्वतंत्रता का आदर्श रखने जा रही हैं, क्या वह, आपकी समझ में, हानिकर नहीं ? और क्या आप इससे सहमत नहीं हैं कि स्त्रियों को स्वतंत्रता नहीं, स्वच्छन्दता देने की हवा, यदि कोई रुकावट न डाली गयी तो, देश भर में शीघ्र ही फैल जायगी। क्या आपका यह ख्याल नहीं है कि रुकावट डालने के इस कार्य को स्त्रियाँ जितनी खूबी और साथ ही प्रभावशीलता के साथ कर सकेंगी उतनी सफलता के साथ पुरुष नहीं कर सकेंगे ?

कृपा करके थोड़ा सा समय निकाल कर मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दीजिए और भ्रान्ति में पड़ी हुई एक लड़की को जीवन में सफलता का सच्चा मार्ग दिखाइए।

सुना है, आप वहाँ के 'महिला-विद्यालय' के मन्त्री हैं। यदि विद्यालय में मेरे योग्य कोई काम निकल सके तो मैं आप की बड़ी कृतज्ञ हूँगी; बी० ए० पास होने पर मैं शीघ्र ही बाबू जी को अपने सब तरह के भार से मुक्त कर देना चाहती हूँ !

यहाँ सब कुशल है। आप की कृपा की भिखारिन,

कमला

पत्र समाप्त करने पर उसे लिफाफे में बन्द करने के पहले कमला ने पढ़ना शुरू किया। लगभग तीन बजे होंगे। इसी समय श्यामकिशोर एक पत्र लिये हुए कमला के कमरे में आये।

आये तो थे वे इस खयाल में कि कमला को कुछ चिढ़ाकर यह पत्र दिखलाऊँगा, किन्तु कमला के हाथ में भी एक पत्र देख कर वे स्वयं उसे देखने के लिए उत्कण्ठित हो गये। श्यामकिशोर ने पूछा, 'किसे चिट्ठी लिखी है, कमला!'

कमला ने बदले में पूछा, 'तुम्हारी वह कैसी चिट्ठी है, भैया?'

श्यामकिशोर ने कहा, 'तुम बताओ तो मैं बतलाऊँ।'

कमला ने भी अनुकरण किया, 'तुम बतलाओ तो मैं बतलाऊँ।'

एक दूसरे के हृदय में पत्रों को देखने की एक गम्भीर इच्छा न होती तो यह विनोदपूर्ण कलह कुछ समय तक चलता; शीघ्र ही उत्कण्ठा से पीड़ित होकर दोनों ने समझौता कर लिया, और एक दूसरे से पत्र बदल लिया।

कमला ने पत्र शीघ्र ही समाप्त करके कहा—'कुमारी, मारगरेट तो बहुत बढ़िया पत्र लिखती हैं, भैया तुम इनको शीघ्र ही हिन्दू बनाकर इनके साथ ब्याह क्यों नहीं कर लेते, एक अँगरेज़ पत्नी के रहने से आपको भविष्य में, राजनैतिक कार्यों में खूब सहायता मिलेगी।'

कुछ ठहर कर कमला ने एक मधुर व्यङ्गपूर्ण मुसकराहट के साथ कहा—'भाईसाहब, कुमारी मारगरेट यदि मेरी भाभी हुई तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप को स्वराज्य के लिए शायद कुछ भी श्रम करने की आवश्यकता, नहीं रह जायगी।'

श्यामकिशोर ने आश्चर्य के साथ पूछा, 'यह कैसे?'

'इस साधारण बात को भी आपने नहीं समझा? या आप समझ कर भी बेसमझ बन रहे हैं।' कमला ने उत्तर दिया।

श्यामकिशोर ने कहा, 'नहीं, नहीं, कमला! मैं बिलकुल नही समझा। मिस मारगरेट से ब्याह करने के कारण वह परिस्थिति किस तरह उत्पन्न होगी जिसमें मुझे या मेरे जैसे

अन्य व्यक्तियों को स्वराज्य के लिए कोई उद्योग करने की आवश्यकता न रह जायगी, मै तुम्हारी बातों पर विचार करूँगा और यदि मुझे विश्वास हो गया कि मिस मारगरेट से व्याह करने में मेरे देश का इतना भला होने की सम्भावना है तो मैं अवश्य ही उससे व्याह कर लूँगा।'

कमला कुछ गम्भीर हो गयी।

श्याम०—'कमला, यह तुमने मजाक ही किया था क्या? शायद तुम्हारा खयाल हो कि अँगरेजों के साथ उठना-बैठना, शादी-व्याह करना ही स्वराज्य है। हमारे देश के कितने ही भले पढ़े-लिखे नेता भी, जो अँगरेजों के साथ डिनर खाने का मौका पा जाते हैं, स्वराज्य को अपनी हथेली में रक्खा हुआ समझने लगते हैं, ऐसी दशा में अगर तुम इस तरह की बात सोचो तो इसमें अचरज ही क्या है?'

गम्भीरता को अपने मार्ग में बाधक देख कर कमला ने अपनी परिहास-वृत्ति को जगाने की चेष्टा की; जब श्यामकिशोर बातें कर रहे थे उस समय उसका प्रयत्न मन के भीतर चल रहा था। ज्यों ही श्यामकिशोर चुप हुए, उसने कहा—'भाई साहब, क्या अँगरेज लड़की से व्याह करने पर आपको अपने स्वराज्य-सम्बन्धी उद्योग में उसके अगणित मित्रों से सहायता नहीं मिलेगी?'

यह कह कर वह जोर से हँस पड़ी।

कमला कुमारी मारगरेट की आलोचना क्यों कर रही है, यह रहस्य श्यामकिशोर की समझ में नहीं आया; अधिक से अधिक वे इतना ही सोच सके कि धार्मिक प्रवृत्तियों के कारण यह 'स्वतंत्र नारी समाज' के सिद्धान्तों और कार्यों से सहमत नहीं है। बोले, 'कमला, इन बातों मे क्या रक्खा है, न मैं अभी स्वराज्य के लिए कोई उद्योग ही कर रहा हूँ और न इसी बात

का पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में कुछ कर सकूँगा; केवल स्वप्न देखने से लड्डू आप से-आप किसी के मुहँ में नहीं पहुँच जाता। हाँ, यह तो बताओ कि तुम विवाह न करने की बात क्यों सोच रही हो ? मेरी समझ में तुम्हारे इस विचार से बाबू जी को बड़ा कष्ट होगा।'

'विवाह करने से मैं घृणा नहीं करती हूँ, लेकिन विवाह बाजार का सौदा नहीं है; जिस की ओर हृदय स्वभाविक रीति से दौड़ता है उसी के साथ विवाह होना चाहिए। जब मुझे कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा तब मैं विवाह कर लूँगी'—कमला ने उत्तर दिया।

श्यामकिशोर ने हृदय की अस्थिरता को दबाते हुए कहा—'कमला, यदि तुम विवाह न करोगी तो मै भी नहीं करूँगा।'

यह कहकर श्यामकिशोर कमरे के बाहर चले गये। कमला बड़ी गम्भीर चिन्ता में डूब गयी, विशेष रूप से यह सोच कर कि श्यामकिशोर के चेहरे पर अन्तिम शब्दों का उच्चारण करते समय जैसी गम्भीरता छा गयी थी वैसी उसने पहले कभी देखी नहीं थी। लक्षणों से कमला ने यह असंदिग्ध रूप से स्थिर कर लिया कि विवाह न करने का मेरा निश्चय बाबू श्यामकिशोर को प्रिय नहीं है, किन्तु, इस अनुमान-क्षेत्र में पहुँचकर उसे एक प्रकार का सन्तोष हुआ; उसका चित्त भविष्य के बहुत से सुनहले स्वप्नों के झूले में झूलने लगा; जीवन का एक सुन्दर लक्ष्य सामने देख कर वह प्रसन्नता से नाचने लगा, मानो मोर ने बादलों के दर्शन पा लिये हों।

कुछ देर तक इस प्रसन्नता का रस चखने के बाद उसने रमदेइया को बुलाया और लेटर बक्स में छोड़ आने के लिए उसके हाथ में चिट्ठी दे दी। रमदेइया चिट्ठी लेकर दो कदम भी

न गयी होगी कि कमला ने आवाज दी—सुनो, सुनो। रमदेइया शीघ्रता से आयी, बोली—का बात है, बीबी जी।

कमला इस समय विनोद में थी और कुछ विनोद करना चाहती थी, उसने तनिक सा मुसकराते हुए कहा—"मैंने तुम्हें यह चेतावनी देने के लिए बुलाया है कि कहीं मेरी यह चिट्ठी तुम रामकरन के हवाले मत कर देना, अक्सर तुम में यह आदत देखी गयी है, और वह गधा भी तेरे ऐसी फूहड़ औरतों के चक्कर में पड़ कर दिन भर दुगनी मिहनत करता रहता है।" रमदेइया हँस पड़ी। बोली; "यह क्या कहती हो बीबी जी, कोई हलका काम हुआ तो मैं उससे करा लेती हूँ; करूँ क्या, वह मुआ आप ही दौड़ता है। और न सुनोगी, इस बूढ़े खूसट की हिम्मत! कहता है कि तुम अपने आदमी को छोड़ कर मेरे साथ व्याह कर लो। भला इसके लिए मैं अपना आदमी छोड़ दूँगी? बड़ा बेसमझ है।'

यह कह कर रमदेइया चल पड़ी। अगर वह रुकती तो कमला की इच्छा कुछ और छेड़छाड़ करने की थी।

[११]

लगभग तीन सप्ताहों बाद एक ही डाक से कमला को दो पत्र मिले, दोनों लिफाफों में थे; किन्तु दोनों के ऊपर, पते की बाईं ओर भेजनेवालों के नाम लिखे थे—एक पर था मिस मारगरेट का, और दूसरे पर दीनानाथ का। कमला मिस मारगरेट ही की ओर अधिक आकृष्ट हुई, लिफाफा फाड़ कर उसने पढ़ना शुरू किया। पत्र अँग्रेजी में था, उसका अनुवाद इस प्रकार होगा—

काशी

प्रिय बहन;

काशी में आप का दर्शन पाकर मैं आपकी ओर स्वभावतः खिँची थी। गत फरवरी मास में 'स्वतन्त्र-नारी-समाज' की

स्थापना के सिलसिले-में भी यद्यपि दो ही तीन दिन के लिए प्रयाग में हम लोगों का साथ हुआ था, तथापि आपने अपने मनोहर व्यक्तित्व का जादू मेरे ऊपर डाल दिया था। कलाई पकड़ कर पहुँचा पकड़ना एक पुरानी कहावत है, लेकिन वह मनुष्य के हृदय की कभी न बुझनेवाली प्यास की कहानी को आज भी स्पष्ट भाषा में कह रही है, और मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मैं इसी प्यास को शिकार हूँ। उम्र में शायद मै आप से तीन-चार साल बड़ी हूँगी, लेकिन आप के अनेक गुणों को देख कर मैं आपको अपने से बड़ी मानती हूँ।

मैं चाहती हूँ कि मेरा और आपका एकाध महीने के लिए साथ हो। मिस्टर सिंह नैनीताल जा रहे हैं; पिता जी ने उनके साथ मुझे भी नैनीताल जाने की अनुमति दे दी है। बनारस की गरमी से मेरा छुटकारा हो जायगा, यह सोचकर तो मैं प्रसन्न हूँ, लेकिन मिस्टर सिंह ज्यों ज्यों बुढ़ापे की ओर ढल रहे हैं त्यों त्यों दया के पात्र होते जा रहे हैं, स्त्री और पुत्री के मर जाने के बाद से उन्होंने जैसे अपना सारा धीरज, सारी सहन-शक्ति गँवा दी है, और कभी कभी तो वे ऐसी मूर्खता-भरी बातें करने लगते हैं कि ऊब सी मालूम होने लगती है। यहाँ तो उन्हें सरकारी कामों में काफी समय और ध्यान देना पड़ता है, इसलिए उनकी मूर्खता या सनक, जो भी कहो, कुछ दबी रहती है। लेकिन नैनीताल में उन्हें चौवीसों घंटों की छुट्टी रहेगी; वहाँ तो मुझे भय है, वे मुझे खिझा लेंगे।

ऐसी अवस्था में मेरा ध्यान आप और चपला की ओर गया। आप लोग भी इलाहाबाद की भयङ्कर गरमी से परेशान होंगी। इसलिए क्या मैं आशा करूँ कि आप मेरा साथ देंगी।

बा० श्यामकिशोर और चपला को तो राजी कर लेना आपके बायें हाथ का खेल है।

पत्र का उत्तर शीघ्र दीजिएगा।

आपकी स्नेहाभिलाषिणी
मारगरेट

इस पत्र का पढ़ना समाप्त करके कमला ने इसे लिफाफे में रख लिया और दूसरा लिफाफा फाड़कर पढ़ना शुरू किया। बाबू दीनानाथ ने लिखा था—

प्रिय कमला,

आशीर्वाद।

तुम्हारा पत्र ठीक समय पर मिल गया था। खेद है, उत्तर विलम्ब से जा रहा है, जिसका प्रधान कारण है तुम्हारी चाची का पन्द्रह दिन के एक बालक को छोड़ कर स्वर्ग की यात्रा कर जाना। आज उनके देहावसान का पन्द्रवाँ दिन है।

तुमने जो प्रश्न पूछे हैं उन्होंने मेरे हृदय में बड़ी उथल-पथल मचा दी है। मै स्वयं सोचने लगा हूँ कि मैं अविवाहित क्यों नहीं रहा। यदि मैंने ऐसा किया होता तो आज मेरे जीवन की धारा किसी अन्य दिशा में प्रवाहित होती। मुझे तो ऐसा मालूम होने लगा जैसे किसी ने अचानक आकर जगा दिया हो; तुम्हारे पत्र में जो सन्देश विद्यमान है उसने अपने प्रथम आवेग में मुझे उसी प्रकार मोहित कर लिया जैसे हरिण वेणु के मधुर स्वर से हो जाता है। हृदय को इतना प्रिय लगने वाला पत्र आज तक मेरे पास नहीं आया।

किन्तु तुम्हारे पत्र को जब दूसरी बार पढ़ा तब मुझे अपनी भूल मालूम हुई। मैंने सोचा, कहीं तुम भावुकता के नशे में पड़ कर तो ऐसी बातें नहीं लिख रही हो? या किसी मानसिक वेदना के वशीभूत होकर तो यह त्याग नहीं कर रही हो? तुम्हारे ये

उद्गार किसी अस्थिर चित्त रूपी आकाश के उड़ते हुए पखेरू तो नहीं हैं ? इन आशंकाओं ने मुझे अपने ही जीवन का सिंहावलोकन करने की ओर प्रेरित किया और तब मुझे बड़ी निराशा हुई।

फिर मैंने सोचा, क्या यह सम्भव नहीं कि मेरी अपेक्षा तुममें अधिक दृढ़ता हो; ऐसी दशा में तुम्हें उत्साहित न कर के क्या मै एक बहुत बड़े पाप का भागी न बनूँगा ? क्या मेरा यह कार्य्य समाज के लिए अहितकर न होगा ? किन्तु जैसे यह सम्भव है वैसे ही क्या यह सम्भव नहीं कि तुम्हारे वर्त्तमान विचारों में उतना बल न हो जितना तुम्हें या मुझे इस समय समझ पड़ रहा है। इस परिस्थिति में तुम्हें संयत बनाने के स्थान में यदि मैंने तुम्हें और भी चंग पर चढ़ा दिया और उस रास्ते पर चला दिया जिस पर मैं स्वयं नहीं चल सका और जिसके संकटों का मैं व्यक्तिगत अनुभव से अनुमान कर सकता हूँ तो मैं वास्तव में कितनी बड़ी भूल या पाखंड के लिए उत्तरदायी हो जाऊँगा।

मैं मानता हूँ कि समाज की सेवा करना तुम्हारा धर्म है, किन्तु इस कारण नहीं कि समाज के एक व्यक्ति ने तुम्हारा पालन-पोषण किया है, बल्कि इस कारण कि तुम स्वयं समाज का एक अंग हो और इससे उसकी सेवा करने की स्वाभाविक प्रेरणा तुम्हारे हृदय में होती है। बदला चुकाने की दृष्टि से, बाबू रघुनाथप्रसाद को पाई पाई चुकता करने के ख्याल से, यदि तुमने समाज-सेवा का कोई ऐसा स्वरूप स्वीकार कर लिया जिसका तुम निर्वाह न कर सकीं तो समाज की सेवा के बदले उलटे तुम उसकी हानि कर बैठोगी।

समाज की सेवा करने के लिए क्षेत्र तो बहुत बड़ा पड़ा हुआ है, परन्तु हम अपनी दुर्बलताओं के कारण कुछ कर नहीं पाते। मैं स्वयं अनुभव करता हूँ कि डी० ए० वी० कालेज में मेरी कोई

उपयोगिता नहीं। यहाँ आर्यसमाजियों के विचारों से मेरे विचार मेल नहीं खाते। वास्तव में मैं उनकी आँखों में खटकता रहता हूँ। ऐसी अवस्था में यह कहना चाहिए कि इस संस्था से मेरा आर्थिक सम्बन्ध ही है। रुपये लेकर लड़कों को काव्य, नाटक, उपन्यास और कहानी के सम्बन्ध में कुछ बातें बता देना तो जीवन की कोई सार्थकता नहीं है, समाज की सेवा तो बहुत दूर की बात! ऐसी स्थिति में मैं तुम्हें समाज-सेवा के सम्बन्ध में कोई उपदेश तो नहीं दे सकता, फिर भी साधारण सम्मति दे देने में कोई हर्ज नहीं समझता। इसी दृष्टि से मैं थोड़ी सी पंक्तियाँ तुम्हारे विचारार्थ लिख रहा हूँ। तुम स्वयं अपना हानि-लाभ सोचकर अपने जीवन का क्रम निर्धारित कर सकती हो।

वास्तव में आनन्द निस्स्वार्थ सेवा ही से मिलता है, चाहे वह अपने लड़के, भाई, माता, पिता या अन्य कुटुम्बी जन की हो, चाहे जाति, देश, अथवा संसार भर की। यदि यह सेवा साहित्यसृष्टि अथवा धार्मिक साधना के क्षेत्र में करनी हो तब तो शायद अन्य लोगों के सहयोग की आवश्यकता कम पड़े— यद्यपि मेरा यह खयाल है कि औरों का सहयोग पाये बिना इस क्षेत्र में भी, मध्यम श्रेणी की प्रतिभा अपने विकास की भूमि नहीं पा सकती। किन्तु तुम तो शायद इन दो में से किसी क्षेत्र में काम नहीं करना चाहती हो। मेरी समझ में मानव-सेवा या प्राणी-मात्र की सेवा के प्रत्येक विभाग में औरों के सहयोग की तुम्हें आवश्यकता पड़ेगी। ऐसी दशा में मेरा विचार है कि यदि तुम अपने योग्य पति प्राप्त कर लोगी तो इस प्रकार का सहयोग पाना तुम्हारे लिए बहुत सरल हो जायगा। जीवन-पर्य्यन्त कुमारी रहने के विचार का मैं अनुमोदन नहीं कर सकता, क्योंकि उसकी कठिनाइयों को तुमसे अधिक मैं समझ सकता हूँ।

तुम्हारे इस पत्र ने मेरे हृदय में एक मंथन उपस्थित कर दिया है। मैं यहाँ अपना समय क्यों नष्ट कर रहा हूँ ? अपने जीवन की बलि क्यों दे रहा हूँ ? मेरी उम्र भी लगभग चालीस वर्ष के हो गई लेकिन यहाँ कालेज में घास छीलने के सिवा मैंने और क्या किया ? एक तरह से मैं अपने को बहुत अधिक मोहान्ध समझता हूँ, क्योंकि जिन लोगों के दो चार लड़के-लड़कियाँ हैं वे भी इतनी तत्परता के साथ अर्थ-संचय में लीन नहीं दिखाई पड़ते। तुम्हारा यह पथ मेरे प्रस्तुत हृदय-मंथन को कब तक संजीवित रख सकेगा, यह भी नहीं कह सकता, कुछ समय बीत जाने पर ही यह प्रकट होगा।

तुम्हारे बाबू ने मेरे पत्र का उत्तर नहीं दिया, शायद उनके पास समय नहीं है। चलो, यह भी अच्छा ही हुआ, मुझे भी पत्रव्यवहार पर अश्रद्धा सी होने लगी है। उनसे मेरा प्रणाम कहना; चपला और श्यामकिशोर को अशीर्वाद।

महिला-विद्यालय में यदि तुम्हें समय देने की इच्छा हो तो मैं उसका सहर्ष प्रबन्ध कर सकता हूँ, तुम्हारी अपूर्व योग्यता से विद्यालय लाभ उठा सके, यह मै हृदय से चाहता हूँ। किन्तु मैंने जो बाते लिखी हैं उन पर गम्भीरतापूर्वक विचार करो, यथाशक्ति अपने बाबूजी तथा माता जी की आज्ञाओं के पालन में न चूको, तथा जो कोई भी काम करो उसमें उनका शुभ आशीर्वाद अवश्य ही प्राप्त कर लो।

जून के अन्त तक हमारा नया मकान बन जायगा और हम लोग उसमें चले जायँगे।

तुम्हारा शुभचिन्तक

दीनानाथ।

दीनानाथ के इस पत्रको कमला ने कई बार पढ़ा। अन्त में उसे अपने रेशमी जाकेट की जेब में डाल कर वह आत्म-परीक्षा

में रत हो गयी। उसने मन ही मन अपने आप से पूछा—'क्या यह सच है कि केवल समाज-सेवा ही के उद्देश्य से मैं अपने को अविवाहित रखना चाहती हूँ ? क्या बाबू श्यामकिशोर को न प्राप्त कर सकने से जन्म पाने वाली घोर निराशा उक्त सेवा-संकल्प की तह में नहीं बैठी हुई है ? ऐसी अवस्था में क्या यह उचित है कि मैं अपने आपको धोखा दूँ, साथ ही औरों को भी ठगूँ ? ढोल के भीतर यह पोल रखकर यदि मैं समाज-सेवा में प्रवृत्त होऊं तो जिस दिन मेरे जीवन के इस अन्धकारमय असत्य का किसी अवांछनीय ढंग से भंडाफोड़ होगा उस दिन समाज-सेवा के स्थान में उसकी जिस महती हानि का कारण मै बनूँगी उसका परिशोध मैं किस प्रकार कर सकूँगी ? इन प्रश्नों ने कमला के हृदय को ऐसा मथ दिया कि उसे अनुभव होने लगा जैसे उसके पाँव तले से मिट्टी ही खिसकती जा रही है।

हमारे देखते ही जैसे अनेक गढ़े प्रकृति के अदृष्ट करों द्वारा समतल हो जाते हैं, वैसे ही किसी अज्ञात शक्ति की सहायता से हमारे हृदय के घाव भी पूरे होते रहते हैं, कमला भी अपने खोये हुए आत्म-विश्वास को क्रमशः प्राप्त करने लगी। उसने सोचा, मैं यह क्यों मान लूं कि मेरे विराग में टिकाऊपन नहीं है, किस तरह समझ लूँ कि उसकी आधार-शिला दृढ़ नहीं है ? स्त्री को पुरुष, और पुरुष को स्त्री का प्रेम न मिलने से जो निराशा होती है, क्या भर्तृहरि की विरक्ति का उसके अतिरिक्त और कोई अर्थ था ? हाँ, फिर भी कमला ने स्वीकार किया, मेरी निराशा के पूर्ण बलवती होने में एक त्रुटि है—मेरे हृदय के अन्तरतम भाग में यह आशा भी तो लगी है कि शायद पूरा जोर लगने पर मुझे अपने प्रेम में सफलता भी मिल जाय। ऐसी अवस्था में क्यों न एक बार बाबू श्यामकिशोर से अच्छी

तरह बातें करके इस बात को बिल्कुल स्पष्ट कर लूँ? किन्तु—और यह एक बहुत बड़ा किन्तु था—मैं जिसे कुछ ही समय पहले अपने भाई के रूप में देखती आयी, और जिसे दुनिया अब भी मेरे भाई ही के रुप में देखती है, उसे अपने इन भावों का परिचय किस प्रकार दूँ? मेरे अधरों पर इस भाव को व्यक्त करने वाले शब्द किस तरह आ सकेंगे? मैं इतनी निर्लज्जता किस तरह धारण कर सकूँगी? तो फिर क्या कोई पत्र लिखकर श्याम बाबू को सूचित करूँ? क्या इससे कुछ सहूलियत होगी? यह सही है कि सामने सामने बातें करने में जितनी अड़चन पड़ सकती है उतनी चिट्ठी भेज देने से नहीं पड़ेगी? लेकिन उनके पत्र पढ़ने के बाद जब पहले पहल आँख के सामने पड़ूँगी तब मेरी क्या गति होगी? आह! मेरे कलेजे की इस पीड़ा का किस भाँति शमन होगा?

कमला अपने इन भावों में इस तरह डूबी हुई थी कि उसे कमरे के भीतर श्यामकिशोर का आना मालूम ही नहीं हुआ।

[१२]

लगभग तीन बजे थे जिस समय श्याम किशोर ने कमला के कमरे में प्रवेश किया था। उस समय उन्होंने कमला को जिस विचित्र स्थिति में देखा वह उनकी आँखों के सामने पहले कभी उपस्थित नही हुई थी। कमला के चेहरे पर सदा ही एक अपूर्व प्रतिभा की झलक मौजूद रहती थी जिसने लड़कपन से ही श्यामकिशोर को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था, किन्तु किसी अज्ञात विषय पर चित्त की एकाग्रता के कारण आज जो अनूठी चमक उस पर आगयी थी वह श्यामकिशोर की दृष्टि के लिए एक नयी चीज थी। कमला के बाल खुले हुए थे, सिर का कपड़ा टेबुल फैन की हवा की चोट से गले तक सरक

आया था और झीने रेशमी जैकेट के पीठेवाले भाग को साधारणतया ढके रखने वाले धोती के हिस्से का, पीठ की दाहिनी ओर, खिसकने में साथ दे रहा था। श्यामकिशोर का मन कमला के मनोहर रूप-लावण्य की ओर जब तब आकर्षित हो जाया करता था, किन्तु आज का आकर्षण तो अदम्य हो उठा, अचानक उसने सोचा, क्या इस छविराशि के बिना मेरा जीवन किसी भी काम का हो सकेगा ? इसके वियोग में क्या अविवाहित बने रहने की डींग मारने के लिए मै जीवित भी रह जाऊँगा ? देश के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश कर के कुछ कार्य्य करने का मेरा संकल्प क्या निस्सार और नीरस न हो जायगा ? वे चुपचाप कमला की चारपाई के पैताने की ओर खड़े रह कर कुछ देर तक यही सब सोचते खड़े रहे। अत्यन्त शीघ्रता के साथ इस भावुकता की चोटी से उतर कर उनका मस्तिष्क उन व्यवहारिक कठिनाइयों को एक एक कर के हल करने लगा जो उनके और कमला के जीवन के सम्बद्ध हो जाने में बाधक थीं। एक अलक्षित प्रान्त में, जहाँ केवल ईश्वर ही की दृष्टि पड़ सकती थी, यह क्रिया जारी थी; तब तक, कमला ने सहज भाव से गर्दन बायीं ओर फेरा तो देखा कि बाबू श्यामकिशोर खड़े है।

'आप कब से यहाँ खड़े हैं, भाई साहब ?' कमला ने खिलखिला कर कहा।

इधर कुछ दिनों से श्यामकिशोर को कमला के मुँह से 'भैया' या 'भाईसाहेब' सुन कर कानों में, हृदय में, कुछ धक्का सा लगता था। उन्होंने कई बार सोचा था कि कमला को ऐसा कहने से रोक दे, लेकिन न जाने कौन सी अदृष्ट शक्ति उन्हें हर बार रोक लिया करती थी। लेकिन आज वे अचानक बोल उठे, 'कमला, क्या यह अधिक अच्छा न होगा कि तुम मुझे

'भाई साहब' या 'भैया' न कहा करो ?' यह कहते हुए श्याम-किशोर पास की आराम कुर्सी में लेट गये। उनकी दृष्टि कमला पर केन्द्रीभूत थी।

कमला के चेहरे पर गम्भीरता आगयी, उसने सिर नीचे कर के पूछा, क्यों ? क्या इस में आप का अपमान होता है ?'

कमला श्यामकिशोर का भाव न समझी हो, सो बात नहीं, लेकिन उसने समझ कर भी न समझने का बहाना करना ही अच्छा समझा धड़कते हुए हृदय से वह उत्तर की परीक्षा करने लगी।

श्यामकिशोर की आँखों में संकोच और लज्जा का भाव था, हृदय के उमड़ते हुए भावों को शब्दों का रूप धारण करने, और धारण करने पर भी अधरों की सीमा से बाहर आने से न जाने कौन मना कर रहा था, बहुत प्रयत्न करने पर भी वे इतना ही कह सके, 'कमला !—'

कमला का कलेजा उछल रहा था, सुख का जो मधुर स्वप्न उसने कुछ दिन हुए देखा था वह आज सत्य होने जा रहा है, यह सोच कर उसके हर्ष का पार नही था। श्यामकिशोर को कमला सदा वह गन्ना माना करती थी, जिसके पोर-पोर में रस भराहो। उनकी बातचीत, उनकी तरह तरह की वेष-भूषा, और वेषभूषा के अभाव में केवल शारीरिक गठन उसको मुग्ध करने के लिए यथेष्ट था। फिर इन सब के सिवा उनके हृदय की सुकुमारता, वीरता, त्यागशीलता, उदारता, आदि का भी परिचय उसे प्रति दिन मिलता ही रहता था। किन्तु आज, जब दुर्बलता का अनुभव उनकी वाणी के प्रभाव को बिल्कुल ही रोक रहा था, श्यामकिशोर का सौन्दर्य्य उसे जितना सरस जान पड़ा वैसा उसने कभी अनुभव नहीं किया था।

श्यामकिशोर ने अपनी मानसिक स्थिति को सँभालते हुए कहा, 'कमला, मैं तुम्हारे सम्बन्ध में कुछ ऐसे स्वप्न देखने लगा हूँ कि तुम्हारा 'भैया' शब्द मेरे कानों में खटकता है और मुझे ऐसा अनुभव होने लगता है, मानो मै तुम्हें धोखा देना या ठगना चाहता हूँ। मैं यह अधिक अच्छा समझता हूँ कि ईमानदारी के साथ तुम्हारे सामने अपना भाव प्रकट कर दूँ मैं तुम्हे अपनी जीवनसंगिनी बनाना चाहता हूँ। सच बात यह है कि तुम्हारा व्याह जो कहीं ठीक नहीं हो रहा है उसका कारण मैं हूँ। अभी तक मुझमें यह ईमानदारी का भाव तो नहीं पैदा हुआ कि मैं अम्मा और दादा से यह बात साफ़ साफ़ कह दूँ, लेकिन यदि ऐसा नहीं हो सका है तो उसका कारण है वह संकोच-भाव जिसने ऐसा करने से पहले तुम्हारी राय लेने के मामले मे हमेशा मेरे पैर पीछे की ओर खींचे हैं। हाँ, तो क्या मैं आशा करूँ कि तुम मेरी जीवन-संगिनी होने के लिए तैयार हो ?'

कमला के कानों में ये व्याकुलतापूर्ण शब्द मधु की धारा प्रवाहित कर रहे थे; 'हाँ' कह कर वह इस आनन्द में बाधा नहीं डालना चाहती थी। इसलिए उसने कहा—'श्याम बाबू, यह स्वप्नलोक की बातें आप क्यों करते हैं? मै चाहूँ भी तो क्या यह संभव हो सकता है कि मैं आपकी जीवन-सहचरी बन सकूँ ? क्या अम्मा और दादा मुझे कभी बहू के रूप में स्वीकार कर सकते हैं ?'

यह कहकर श्यामकिशोर का कुछ उत्तर सुनने के लिए कमला रुक गई।

श्यामकिशोर ने कहा—'अम्मा और दादा के स्वीकार करने की तुम परवाह ही क्यों करती हो ? जब मै उन्हें अप्रसन्न करके भी तुम्हें अपने साथ लेना चाहता हूँ तब तुम्हीं क्यों उनकी नाराज़ी का ख्याल करती हो।'

क०—'श्याम बाबू, यदि मैं इस जीवन में किसी के साथ विवाह करूँगी तो आप ही के साथ करूँगी, अन्यथा मेरा वही संकल्प रहेगा जो आप को बता चुकी हूँ। लेकिन आप अपने हृदय को तो टटोल लीजिए, कुमारी मारगरेट को छोड़कर आप मुझे क्यों चाहने लगे?'

यह कहने के साथ ही कमला चारपाई पर से उतर कर तथा पैरों को चप्पल में डाल कर, दरवाजों की ओर बढ़ी और उन्हें बन्द करके एक मधुर मुसकान के साथ बोली—'मैं कोई अनुचित बात तो नहीं कह रही हूँ?'

श्या०—'क्या तुम्हें ऐसा कोई प्रमाण मिला है जिसके आधार पर तुम यह कह सको कि मैं कुमारी मारगरेट को चाहता हूँ। कमला, मै उन लोगों में नहीं हूँ जो एक अँगरेज स्त्री को केवल इसलिए प्यार करते हैं कि वह हिन्दू रस्मों-रवाजों तथा हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में कुछ दिलचस्पी रखती है।'

आलमारी की ओर जाते हुए कमला ने कहा—'अभी प्रमाण मिलने के लिए अवसर ही कहाँ आये? बनारस में जान पहचान ही हुई थी; यहाँ भी आयी थीं तो केवल दो-तीन दिन ठहर कर चली गयीं। हाँ, यदि आप नैनीताल चले जायँ तो यह अभाव नहीं रह जायगा।'

'सो कैसे?' श्यामकिशोर ने विस्मय के साथ पूछा।

आलमारी में गुच्छे की एक चाभी लगाते हुए श्यामकिशोर की ओर मुँह करके कमला ने कहा—'मेरी चारपाईपर मारगरेट की एक चिट्ठी, आज ही की आयी हुई,
लीजिए।'

श्यामकिशोर ने कुर्सी पर से उठकर चिट्ठी ले ली और उसे वे खड़े खड़े पढ़ने लगे। वे चिट्ठी पढ़ ही रहे थे तब तक कमला हाथ में केशरंजन तैल की शीशी लिये हुए पहुँच गयी और बोली—'अच्छा, चिट्ठी तो अलग रख दीजिए, और चारपाई पर लेट जाइए, आपके रूखे बालों को देखकर मुझे कष्ट होता है।'

श्यामकिशोर ने मुसकरा कर कमला की आज्ञा का पालन किया।

छोटे कद की एक तिपाई पर कमला बैठ गयी और श्यामकिशोर के काले काले बालों में सुगंधित तेल डालकर सिर दबाने लगी। सिर के बालों की जड़ों में कमला के हाथों की कोमल उँगलियों का स्पर्श श्यामकिशोर के हृदय में एक अपूर्व सुख का संचार करने लगा।

कमला ने पूछा—'तो नैनीताल चलोगे, श्याम बाबू ?'

'नहीं, इस साल हम लोगों का नैनीताल जाना असम्भव है'—श्यामकिशोर ने उत्तर दिया।

क०—'तो आगामी वर्ष तो असम्भव से भी बढ़कर हो जायगा; क्योंकि इस साल चपला का ब्याह रुका भी रहा तो अगले साल तो रुक नहीं सकेगा। अच्छा, इस साल जाना क्यों असम्भव है, श्याम बाबू ?'

श्या०—'तुम्हारे ब्याह के कारण।'

क०—'लेकिन मेरा ब्याह तो अब आप गड़बड़झाले में रक्खेंगे ही।'

श्या०—'नहीं गड़बड़झाले में नहीं रक्खूँगा; अम्मा से साफ साफ कह दूँगा; मुझे झूठ से चिढ़ है।'

क०—'मैं आपसे हाथ जोड़कर कहती हूँ कि जब तक मैं इस घर में मौजूद हूँ तब तक यह बात अम्मा से न कहिए। वे अपने

मन में न जाने क्या सोचेंगी, कहेंगी, देखो, इसने मेरे लड़के को बहका लिया। वे किसी भी हालत में मुझे अपनी बहू बनाने को तैयार नहीं हो सकतीं; ऐसी अवस्था में वे केवल मुझे कोसेंगी और कहेंगी कि क्यों मैंने इस साँपिन को दूध पिल-पिला कर पाला। फिर, इस घर में मेरा जीना कठिन हो जायगा। श्याम बाबू, अगर आप मुझे चाहते हैं और मेरी जिन्दगी को चाहते हैं तो कृपा करके ऐसा न करें, और मेरे विवाह-सम्बन्ध में दिखावटी प्रयत्नों को जारी रखिए।'

श्या०—'जो बात तुम्हें नापसन्द है उसे मैं नहीं करूँगा। कुमारी मारगरेट को उत्तर दे दो कि हम लोग नैनीताल नहीं जा सकेंगे।'

क०—'इसे मेरी दुर्बलता समझिए या चाहे जो कुछ; किन्तु मैं अम्मा से खुलकर नहीं कह सकती कि मेरा ब्याह श्यामबाबू से हो जाय; इस अवस्था में मैं बराबर यही कहा करूँगी कि मैं ब्याह नहीं करना चाहती; मुझे कुमारी रहकर समाज की सेवा करना प्रिय है।'

श्या०—'तुम्हारे लिए मैं सब कुछ कर सकती हूँ, कमला! झूठ से भी नाता जोड़ लूँगा।'

कमला बालों में तेल लगा चुकी थी; फिर भी उसके हाथों में तेल लगा ही था। इस तेल को उसने श्यामकिशोर के मुँह पर लगा दिया। यह कर चुकने के बाद उसके मन में एक भाव आया; उसने अपना सिर थोड़ा सा आगे की ओर बढ़ाया, लेकिन न जाने क्या सोचकर वह रुक गयी। शीघ्र ही वह उठकर तेल की शीशी आलमारी में रखने के लिए चली गयी। वहाँ से लौटकर उसने कहा—'श्याम बाबू, अब आप यहीं आराम कीजिए, मैं कुछ काम से अम्मा के पास जाती हूँ।'

'जाओ'—कहकर श्यामकिशोर ने आँखें मूँद लीं। पंखे की हवा में श्यामकिशोर का कुर्त्ता फर् फर् आवाज करने लगा।

कमला चली गयी।

[१३]

गृहस्थी के कामों में कमला को बहुत देर हो गयी और जब वह अपने कमरे में लौट कर आयी तो शाम हो गयी थी। बाबू श्यामकिशोर चले गये थे। वह आरामकुर्सी में पड़कर आज की घटना पर विचार करने लगी—क्या श्याम बाबू के साथ मेरा विवाह हो सकेगा? वे अपनी धुन के पक्के हैं, चाहेंगे तो माता-पिता की इच्छा की भी परवाह न करके मेरे साथ विवाह कर सकेंगे? किन्तु दुनिया तो इसका यही अर्थ लगावेगी कि एक सज्जन ने एक अनाथ बालिका का पालन-पोषण किया और उस बालिका ने बदले में अपने उपकारक के पुत्र को माता-पिता के प्रति विद्रोही बना कर अपना लिया। क्या इस अपवाद रूपी तलवार की तीखी धार पर मैं चल सकूँगी? वह उस विधाता को कोसने लगी जिसने उसे जन्म दिया, जन्म देकर अनाथ बना कर एक परिवार में आश्रय दिलाया, और अब कृतज्ञता के भार से नत बनाने के स्थान में उसे उक्त परिवार का सर्वस्व-हरण करने के प्रयत्न के लिए उत्तेजित कर रहा था। मैं कितनी कृतघ्न हूँ, कितनी नमकहराम हूँ! बाबू जी तथा अम्मा जी जैसी बहू पसन्द करते हैं वैसी वे पावें, कहाँ तो इसके लिए मुझे ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए, और कहाँ मैं ऐसा काम कर रही हूँ जिससे उनका जीवन कष्ट और वेदना से पीड़ित हो जायगा!! इस हिंसा की, पाप की, कोई हद भी है!!! इस विचार-श्रेणी ने कमला के उस अहंकार को चूर्ण चूर्ण कर दिया जो श्यामकिशोर के हृदय पर विजय प्राप्त करने के कारण थोड़े ही समय पहले उसमें उत्पन्न हुआ था। उसने सोचा—पतन के

कितने गहरे गर्त्त में गिर कर मैं श्याम बाबू को अपनाने जा रही हूँ; जिस दिन मैं उन्हें गृह से विच्छिन्न करके अपने वासनामय प्रेम की भूमि में आरोपित करूँगी और मेरी शक्ति के सामने बाबू जी और अम्मा जी घुटने टेक कर आँखों में आँसू भर कर कहेंगे—जा आभागिनी, क्या हमने तुझे इसी दिन के लिए पाला-पोसा था। उस दिन क्या संसार के कितने ही प्राणियों की श्रद्धा उपकार और उदारता पर से उठ न जायगी ? जिन लोगों को मेरे इस अनाचार-काण्ड का परिचय प्राप्त हो जायगा क्या वे फिर कभी अपने जीवन में किसी अनाथ बालक अथवा अनाथ बालिका को आश्रय देंगे ?

कमला एक समझदार लड़की थी; उसे ईश्वर ने बुद्धि और त्याग की शक्ति भी दी थी। यदि जीवन के आरम्भ से ही दुर्भाग्य ने उसका पीछा न किया होता तो शायद उसकी बुद्धि विकसित होकर और त्यागशीलता फलमयी होकर उसके यश का कारण बनती। अभाग्य से पीड़ित उसका हृदय प्यार और दुलार का भूखा बना रहता था और उस अवस्था में जब कि कुमारी मारगरेट जैसी अँगरेज़ी युवती के प्रणय-पात्र, शील और सौन्दर्य के आगार श्याम बाबू ऐसे सजीले नवयुवक का प्रेम उसे प्राप्त हो रहा हो,उक्त त्याग-शीलता के भाव का सिर उठाना काँटे की तरह गड़ने वाला था। इस व्यथा से व्याकुल होकर जी बहलाने के लिए वह चपला के कमरे में चली गयी।

जिस समय कमला चपला के कमरे में गयी उस समय चपला एक पत्र लिख रही थी। कमला की परिहासमयी मुख-मुद्रा ने यहाँ आते आते तक अपनी साधारण स्थिति को प्राप्त कर लिया था। उसने मुसकरा कर कहा—'यह पत्र किसको लिख रही हो चपला ? क्या प्रोफ़ेसर शिवप्रसाद को ?'

च०—'बात तो ठीक कह रही हो दीदी। लेकिन यह तो बताओ कि ही तुम कैसे ताड़ गयीं?'

क०—'चपला! प्रेम के रोगियों की नाड़ी नहीं देखी जाती; उनका चेहरा देखा जाता है। तुम्हारी मुख-मुद्रा, तुम्हारा लिखने के लिए बैठने आदि का ढंग देख कर ही मैं समझ गयी कि तुम हो न हो प्रोफेसर साहब को ही पत्र लिख रही हो। और क्षमा करना, तुम्हारी तनी हुई भौंहें बता रही हैं कि दोनों में कोई झगड़ा खड़ा हो गया है। मैं झूठ तो नहीं कह रही हूँ?'

च०—'नहीं, ठीक कह रही हो दीदी! अभी तक प्रेम था, किन्तु अब घृणा की ओर अग्रसर हो रही हूँ।'

क०—'ठीक ही है, जिसे हम सबसे अधिक चाहते हैं उसी से सब से अधिक घृणा भी करते हैं।'

'क्या यह नियम सब जगह लागू है दीदी? फिर तो तुम संसार के सभी पुरुषों को बहुत अधिक चाहती होगी; क्योंकि तुम सभी से बहुत अधिक घृणा करती हो'—यह कह कर चपला खूब जोर से हँस पडी।

क० 'चपला! मेरे हृदय पर मेरे मस्तिष्क का नियन्त्रण है, मैं साधारण भावुकता के चक्कर में पड़ कर मूर्ख नहीं बनूँगी। कमला ने कहने को तो यह कह दिया, लेकिन तुरन्त ही हृदय के निगूढ़तम प्रान्त में छिपे हुए किसी ने तीखी किन्तु उसी को सुनायी पड़ने वाली आवाज में कहा—यह सब गलत! अगर तुम्हें शिवप्रसाद का प्रेम प्राप्त हो गया होता, यदि उन्होंने चपला की अपेक्षा अधिक या उसके बराबर ही तुम्हें प्रेम प्रदान किया होता तो यह सम्भव नहीं कि तुमने उसका तिरस्कार किया होता।'

च०—'दीदी, तुम गलती करती हो। प्रोफेसर शिवप्रसाद का शील, सौजन्य, माधुर्य-पूर्ण बातचीत, परिमार्जित विचार-

धारा आदि ऐसी बातें हैं कि साधारण पुरुषों में उन्हें पाना असम्भव है। उनसे परिचित होना और उन्हें प्यार न करना कठिन काम है।'

द्वेष-जात अपने चरित्र की इस उच्चता पर गर्व करते हुए कमला ने कहा—'किन्तु, तुम देखती ही हो, यह कठिन काम मैंने किया है। मैं उनसे तभी से परिचित हूँ जब से तुम हो। अब भी जब वे तुमसे मिलने आते हैं, मुझसे भी मिलते हैं। लेकिन मेरे हृदय में उनके प्रति वह प्रेम न उत्पन्न हुआ जो तुम्हारे हृदय में उत्पन्न हुआ है। जिन बातों से तुम्हारे हृदय में चाह पैदा हुई है उन्हीं ने मेरे हृदय में अश्रद्धा का सञ्चार किया है।'

च०—'दीदी, आज तुम मुझसे जी खोल कर बातें करो, अरे, अभी तक तुम खड़ी ही हो, मैं भी ऐसी भूली कि तुम्हें बैठने तक के लिए नहीं कहा। जरा मिहरबानी करके बैठ तो जाओ।'

कमला चपला के पास ही मेज से लग कर एक कुर्सी पर बैठ गयी।'

चपला ने पूछा—'दीदी, क्या सचमुच तुम्हारे हृदय में किसी पुरुष के प्रति प्रेम नहीं पैदा होता?'

कमला इस व्यापक प्रश्न का उत्तर देने में इस बार उस साहसिकता से काम नहीं ले सकी, जिसने थोड़ी ही समय पहले उसके द्वारा शिवप्रसाद की कठोर आलोचना करायी थी। अतएव सहसा उच्च पद पर आरूढ़ होने की हिम्मत न करके उसने अपनी स्थिति में थोड़ी सी स्वाभाविकता का समावेश करने के उद्देश्य से कहा—

'उम्र मे मैं तुमसे बड़ी हूँ। ऐसी अवस्था में साधारण मनुष्योचित भावों से मैं भी नहीं बच सकती। अपने किसी अज्ञात

प्रियतम के गले में डालने के लिए सद्भावों की फूलमाला मैं नित्य ही तैयार करती हूँ और उसके अविलम्ब आगमन के लिए टूटे-फूटे स्वर में सुन्दर गीतों द्वारा उसका आह्वान करती हूँ। परन्तु, मेरा वह प्रियतम कहीं दिखायी नहीं देता। जिस दिन मेरे मनोराज्य का वह अधिपति मनुष्य के रूप में मुझे दर्शन देगा उस दिन चपला ! मैं उसकी चेरी हो जाऊँगी। लेकिन जब तक वह समय और सुयोग न आवे तब तक बन्दर के सामने मणियों की माला रखने को तो मेरा जी नहीं चाहता।' इतना कहने के बाद कमला थम गयी। किन्तु शायद अपने इस स्वाभाविकतापूर्ण कथन से उचित लाभ उठाकर उसने शिवप्रसाद की तीव्र निन्दा को एक बार फिर इस उद्देश्य से दुहरा देना उचित समझा कि उसकी यथार्थवादिता की चपला पर धाक जम जाय। इस लिए उसने कहा—मैं शिवप्रसाद को तुम्हारे प्रेम के योग्य नहीं समझती। बार बार मेरे सावधान करने पर भी तुमने उन्हें अपने हृदय से अलग नहीं किया, इसका मुझे बहुत खेद है। बड़ी बहिन के नाते तुम्हारे भविष्य का खयाल करके मैं चिन्तित हो जाती हूँ।'

इस समय ये बातें कहते हुए कमला अनुभव करती थी मानों कोई कह रहा है—'कमला तुम झूठ क्यों बोलती हो ? इतना पाखंड क्यों रचती हो ?'

चपला बोली—'दीदी, तुम तो ऐसा चित्र खींच रही हो जैसे प्रोफेसर शिवप्रसाद कोई नर-पिशाच हों। मेरा तो ऐसा ख्याल नहीं है ?'

क०—'चपला ! इस समय तुम्हारे मनोवेग के अधीन होकर तुम्हारी बुद्धि ठीक ठीक काम नहीं कर रही है। पिशाच तो भले हैं, किन्तु, प्रोफेसर शिवप्रसाद भले नहीं। वह भोली-भाली स्त्रियों को अपने वश में करने की कला जानते हैं। मैं ऐसी कई

स्त्रियों को जानती हूँ जिनका भविष्य उन्होंने नष्ट कर दिया है खैर, ये सब बातें जाने दो।'

च०—'दीदी, मुझे तो बहुत बड़ा आश्चर्य इस बात का है कि कोई भी स्त्री प्रोफेसर शिवप्रसाद के विरुद्ध ऐसी बातें जबान पर कैसे ला सकती है। जो हो, मुझे तो उनमें कोई ऐब दिखायी पड़ता ही नहीं। मेरे लिए तो वे सौन्दर्य के सागर हैं, जिसकी सरस लहरों में स्नान करके मैं अपने हृदय की क्लान्ति मिटाना चाहती हूँ। बहिन! मुझे तो उनका उठना-बैठना, हँसना-बोलना सभी इन्द्रधनुष की तरह शोभा से अनुरंजित जान पड़ता है। उनकी चिट्ठी नहीं आती तो मैं पागल-सी हो जाती हूँ; वे दिखायी नहीं पड़ते तो मैं निर्जीव सी बनी रहती हूँ। ऐसी अवस्था में ऐसा उपाय करो बहिन! कि प्रोफेसर शिवप्रसाद का और मेरा अटूट साथ हो जाय।'

कमला ने आशा की थी कि चपला उन स्त्रियों का परिचय प्राप्त करना चाहेगी जिनका जीवन प्रोफेसर शिवप्रसाद ने नष्ट किया है। परन्तु नाराजी की चिट्ठी लिखने में तत्पर होने पर भी उनके अवगुणों की कहानी सुनने के लिए उसने कोई उत्कण्ठा नहीं प्रदर्शित की। ऐसी दशा में कमला ने बातचीत का प्रवाह दूसरी दिशा में मोड़ दिया। उसने कहा—'बाबू श्यामकिशोर तो तुम्हारे विवाह का प्रबन्ध उन्हीं से करने वाले हैं! फिर क्यों उदासी!'

चपला के गालों पर क्षण भर के लिए लालिमा दौड़ गयी, बोली—'दीदी, तुम तो मेरा उपहास करती हो। तुमसे मैं हृदय की सब बातें इस आशा से बताती हूँ कि तुम मुझे सहायता और सान्त्वना दोगी, किन्तु तुम मेरी दिल्लगी उड़ाती हो।'

यह कहते कहते चपला के चेहरे पर रुखाई और अप्रसन्नता के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। कमला कुछ सहम सी गई,

परन्तु जब बहुत सोचने पर भी उसे चपला की स्थिति में औचित्यनहीं दिखायी दिया तब साहस-संचय करके उसने कहा—'चपला ! तुम्हें नाराज न होना चाहिए। बाबू दीनानाथ का तुम्हारे प्रति जो अनुराग रहा है, उसका साक्षी उनका यह तैल-चित्र है, जो तुम्हारे कमरे में टँगा है। तुमसे सच कहती हूँ बहिन चपला ! यों तो ईश्वर ने तुम्हें सब तरह से भाग्यवती और धन्य बनाया है किन्तु एक बात से मैं तुम्हें प्रायः ईर्ष्या की दृष्टि से देखती आई हूँ और वह यह कि तुम्हें दीनानाथ ऐसा प्रेमी ईश्वर ने दिया। परन्तु सत्य बात कहने के लिए मुझे क्षमा करो, तुमने उनके अमूल्य प्रेम का तिरस्कार किया है। इस तैल-चित्र की इस समय जो अवस्था है वह पुकार पुकार कर तुम्हारी उपेक्षा की घोषणा कर रही है। संक्षेप में मेरे कहने का आशय यह कि यदि हृदय उत्सुक हो तो अन्य अंग भी क्रियाशील हो जाते हैं,और यदि हृदय के भीतर ही आह्वान नहीं है तो समस्त इन्द्रियों का भी शिथिल पड़ जाना स्वाभाविक है। आह ! कहीं वही प्रेम मुझे मिला होता चपला ! सच कहती हूँ, मैं तो इस धरती पर पाँव न रखती ! खैर, जाने दो इन बातों को बहिन ! आज मेरा हृदय अत्यन्त पीड़ित है और इसी कारण तनिक सा भी छेड़े जाने पर अनर्गल उद्गार प्रकट कर रहा है। अपनी बड़ी बहिन समझकर मुझे क्षमा करना, चपला।'

चपला की नीची आँखें ऊपर को उठीं तो उसने देखा कि कमला का मुँह रुआसा हो रहा है।

कमला की तीव्र आलोचना को भुला कर चपला ने कहा—'बहिन ! तुम एकाएक इतनी उदास क्यों हो गयीं। मैंने तो तुम्हें कुछ कहा भी नहीं।'

क०—'चपला ! मैं एक अत्यन्त अभागिनी स्त्री हूँ। आरम्भ ही में अनाथ होकर न जाने किस दुर्दशा को प्राप्त हो गयी होती,

किन्तु बाबू जी और अम्मा के सौजन्य ने मेरी रक्षा की, यही नहीं, उन्होंने तुम्हारे बराबर लाड़-प्यार से पाला-पोसा। और आज वही मैं उनके प्यार की पुतली को इतनी कड़ी-कड़ी बातें सुना रही हूँ। आज मेरा चित्त ठीक नहीं है चपला! तुम्हीं सोचो, मैंने कभी आज तक तुम्हारी आलोचना करने का साहस किया है?'

च०—'नही दीदी, लेकिन इस जरा सी बात के लिए इतना दुखी होना भी तो ठीक नहीं है। तुमने जो कुछ कहा है मेरे भले ही के लिए तो कहा होगा। चलो पार्क में थोड़ा टहल आवें, हवा खाने से शायद तबीयत कुछ हल्की हो जाय।'

यह कह कर चपला ने कमरे के बाहर जाकर रामकरन को आवाज दी और उसके आने पर कहा—'जरा देख तो, गाड़ी खाली है या नहीं।'

रामकरन ने उत्तर दिया—'बीबी गाड़ी पर तो कोई गया है नहीं। डिप्टी साहब मोटर में गये हैं और भइया जी अभी अभी अपनी मोटर साइकिल पर कहीं गये हैं।'

च० - 'तो कोचवान से कह दे, गाड़ी तैयार करे। हम लोग पार्क में टहलने जाँयगी।'

यह कह कर चपला कमरे में चली गयी। उसने ट्रंक में से दो साड़ियाँ और दो जाकेटें निकालीं और उनमें से एक एक कमला के सामने रख कर कहा—'दीदी, अब अपने कमरे में कहाँ जाओगी, यहीं कपड़े बदल लो। गाड़ी आयी ही जाती है'।

कमला ने कपड़े तो बदलने के लिए ले लिये। लेकिन इस समय वह अत्यन्त अन्यमनस्क हो रही थी। चपला बार बार कहने में संकोच करती थी, लेकिन जब उसने देखा कि मैं दूसरी साड़ी पहन भी चुकी और दीदी अभी ज्यों की त्यों बैठी हैं,

तब उसने चिल्ला कर कहा— 'दीदी ! घूमने नहीं चलोगी क्या ? अभी तक तुम कपड़े हाथ ही में लिये बैठी हो।'

चपला की इस चिल्लाहट की प्रेरक थी उसकी उदारता और ममता। परन्तु, उसके इन भावों को उसकी वह दुर्वल स्थिति भी उभाड़ रही थी जिसकी समालोचना करके कमला ने उसके मार्मिक स्थल पर आघात किया था।

चपला की पिछली कार्यवाही ने कमला के शरीर में स्फूर्ति का संचार कर दिया और शीघ्र वह भी कपड़े बदल कर तैयार हो गयी।

चपला तो अपना काम कभी से समाप्त करके कमला की प्रतीक्षा कर रही थी।

रामकरन ने आकर समाचार दिया—'गाड़ी खड़ी है।'

'अच्छा जाओ'—कह कर चपला कमला को साथ लिये गाड़ी में जा बैठी। आज के पहले कमला सदा आगे चलती थी और चपला पीछे। किन्तु, आज चपला आगे थी और कमला पीछे थी। न जाने क्यों कमला के पैर आगे पड़ते ही नहीं थे।

जब गाड़ी चलने लगी तो चपला ने कहा—दीदी! तुम्हारी मानसिक पीड़ा का कारण क्या मैं जान सकती हूँ ?

कमला ने तुरन्त ही उत्तर दिया—'चपला! न तुम्हारे जानने में कोई हर्ज है और न मेरे वताने में बाधा। परन्तु तुम उस पीड़ा को समझ नहीं सकतीं। यदि तुम भी मेरी तरह अनाथ वालिका होतीं, यदि तुम्हारा पालन-पोषण भी किसी सहृदय परिवार की सहानुभूति पर अवलम्बित होता और इस कारण यदि तुम्हें भी यह अनुभव हो सकता कि मुझे अधिकारों की ओर ध्यान न देकर कर्तव्यों के पालन में

तत्पर होना अधिक आवश्यक है तब तुम मेरी पीड़ा को समझ सकतीं।'

च०- 'नहीं दीदी, ऐसी बात नहीं है कि मैं पीड़ा को समझ न सकूँ। हाँ, कुछ ही पहले मैं नहीं समझ सकती थी। पर अब तो मैं भी पीड़ितों में से एक हूँ। क्या तुम्हें एक ही बात को बार बार समझाना होगा, दीदी!'

क०- 'नहीं चपला! अभी तुम्हें पीड़ा का हाल नहीं मालूम, यद्यपि, मुझे भय है, शायद आगे चलकर तुम्हें भी पीड़ितों की श्रेणी में आना पड़े। परन्तु, मेरी पीड़ा वास्तविक है। बात यह है, चपला, कि मैं विवाह नहीं करना चाहती।'

च० 'वह भी जानती हूँ और यह भी जानती हूँ कि तुम सदा से विवाह करने ही के विरुद्ध रही हो। तुम तो अकसर अम्मा के सामने भी कह देती थीं कि विवाह करने में क्या लाभ है? अम्मा भी हँसने लगती थीं।'

क०—'ये तो तब की बातें हैं, चपला, जब विवाह की कोई चर्चा न थी। अब तो वह इतना निकट आ गया है कि अम्मा के सामने उसके विरोध में हँसी में भी कोई बात कहना असम्भव जान पड़ता है। मेरे सामने यह बड़ी पेचीली समस्या है।'

च०—'दीदी! यदि तुम्हारी स्थिति में मैं होती तो इस समस्या ही की धूल उड़ाती। यह भी कोई समस्या है। चिट्ठी में सब बातें साफ साफ लिख दो।'

क०- 'चिट्ठी लिख देना मेरे लिए इतना आसान नहीं है जितना आसान तुम उसे समझ रही हो। मैं कह चुकी हूँ कि मेरी और तुम्हारी स्थिति में बहुत अन्तर है। मै ता अम्मा

और बाबू जी की एक पोषिता बालिका हूँ; तुम्हारी तरह कोख से उत्पन्न लड़की तो नहीं हूँ।

यह कहते कहते कमला की आँखें भर आयीं और यदि उसने रूमाल लगाकर पोंछ न लिया होता तो आँसू की दो एक बूँदें नीचे ढलक पड़तीं।

च०—'दीदी! अम्मा और बाबू जी ने तुम्हें मुझसे कम नहीं प्यार किया है और मुझे विश्वास है कि जब वे तुम्हारी वास्तविक स्थिति को समझ जायँगे तब हठ कभी न करेंगे।'

क०—'मैं इतनी कृतघ्न नहीं हो सकती, चपला! कि अम्मा और बाबू जी पर कम प्यार करने का दोष लगा सकूँ। सच बात यह है कि उनका प्यार ही इस समय मेरी राह का काँटा बन रहा है; क्योंकि, जिस बात में वे हृदय से मेरा हित समझते हैं उसे करने से विरत तो नहीं होंगे। और, प्रत्येक युवती का विवाहित होना वे उसके हित में आवश्यक समझते हैं।'

च०—'परन्तु, यदि वे हम लोगों को बी० ए० तक की उच्च शिक्षा देने के बाद भी अपने भविष्य का निर्णय करने की अधिकारिणी न समझें तो यह तो उनकी मूर्खता है। वे यह क्यों समझें कि जिन्दगी भर हमारी नकेल का उन्हीं के हाथ में रहना आवश्यक है।'

क०- 'चपला! वे यह नहीं समझते कि अपने भविष्य के बारे में हमें कुछ सोचने का हक नहीं है और न वे सदा के लिए हमें पराधीन ही बनाना चाहते हैं; किन्तु, लड़की के विवाह का प्रश्न सामाजिक सम्मान से सम्बद्ध है। यदि कोई पिता अपनी युवती कन्या के विवाह का प्रबन्ध न करे तो समाज उसकी ओर उँगली उठाने लगेगा। यही दशा उस पिता की भी होगी जो किसी कारणवश अपनी पोषिता बालिका का विवाह

नहीं कर सका—वह कारण लड़की की अनिच्छा ही क्यों न हो। बात यह है कि समाज को प्रत्येक बातका ब्योरा जानने के लिए कहाँ समय है; वास्तव में वह तो समालोचना और छिद्रान्वेषण के लिए विषय की तलाश में रहता है। जिसने मेरे साथ इतना उपकार किया है उसकी निन्दा चारों ओर हो और उस निन्दा का कारण मैं होऊँ, यह मेरे लिए कितनी कृतघ्नता की बात होगी। जरा सोचो तो चपला !'

चपला ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया।

इस समय गाड़ी पार्क में चक्कर लगा रही थी और युवकों की लोलुप दृष्टि इन महिलाओं पर पड़ रही थी। उन लोगों को यह क्या मालूम कि इन देवियों के जिस रूप पर वे लट्टू हो रहे थे तथा आँखों भर जिसे देखकर अपार आनन्द प्राप्त कर रहे थे वही स्वयं इनके विषाद और वेदना को घटाने में असमर्थ था।

थोड़ी देर के बाद गाड़ी घर की ओर चल पड़ी। रास्ते में चपला ने कहा—'दीदी, तुम तो बिल्कुल मौन हो गयीं। आखिर क्या करोगी, कुछ सोचा-विचारा है ?'

क० 'कल तुम्हें बताऊँगी। आज धीरज रक्खो। हाँ एक शोक-समाचार भी तुम्हें देना है। अम्मा से अभी तक नहीं बताया,यह भी ठीक नहीं किया। चिट्ठी तो दोपहर ही की आयी हुई है। तुम्हारी चाची का देहान्त हो गया'

'कौन चाची ?' चपला ने चौंककर पूछा। 'बाबू दीनानाथ की स्त्री'—कमला ने उत्तर दिया। इसके बाद उसने सब बातें चपला को बतला दीं।

चपला कुछ निरुत्साह होकर चुप हो गयी। शेष मार्ग दोनों ने मौन रह कर ही काट दिया।

अभी तक डिप्टी साहब घूमकर घर नहीं आये थे। अधिक देर होती देख कर घर वालों की घबराहट बढ़ने लगी। धीरेधीरे नौ बजने का समय आया तो गायत्री देवी ने व्याकुल होकर श्यामकिशोर से कहा—बेटा, जरा पता तो लगाओ, करीब चार बजे के गये हैं, इतनी देर कहाँ बैठे रह गये।

तुरन्त ही श्यामकिशोर मोटर-साइकिल पर बैठ कर कलेक्टर मिस्टर जोजेफ के यहाँ रवाना हो गये। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि अभी वे लोग घूमकर लौटे नहीं। श्यामकिशोर कुर्सी पर बैठ कर इन्तजारी करने लगे। लगभग पूरा घंटा उन्होंने ऊबके साथ इन्तजारी में काटा। करीब दस बजे जोजेफ साहब की मोटर बंगले में आती दिखाई पड़ी। मोटर के खड़ी होते होते तक वे आगे बढ़कर मिस्टर जोजेफ के पास पहुँचे। इसके पहले कि वे कुछ पूछें, मिस्टर जोजेफ ही ने उनसे कहा—'बाबू श्यामकिशोर, आप इस वक्त यहाँ कहाँ! बाबूसाहब के बारे में कुछ पूछने तो नहीं आये ? बात यह हुई कि जिस समय हम लोग घूमते हुए स्टेशन की ओर से लौट रहे थे उस समय अचानक एक दुर्घटना हो गयी। चौरस्ते पर सामने से एक ताँगा आ रहा था। वही होता तो कुछ गड़बड़ न था, एक और मोटर इतने ही में आ धमकी। नतीजा यह हुआ कि मोटर और ताँगा दोनों लड़ गये और उसमें जो महाशय बैठे थे उन्हें सिर तथा जंघे में सख्त चोट आ गयी। बाद को मालूम हुआ कि वे महाशय आपके पिता के बहुत पुराने दोस्त प्रोफेसर दीनानाथ थे।

'प्रोफेसर दीनानाथ थे ?' बाबू श्यामकिशोर ने चिल्लाकर पूछा।

मिस्टर जोजेफ ने कहा—'हाँ वही थे। शायद तुम्हारे ही यहाँ आ रहे थे, सो चोट इतनी अधिक आ गयी कि हम लोगों

ने उन्हें अस्पताल में ही पहुँचाने का निश्चय किया। इसी सब में तो देर ही हो गयी। हम लोग सिविल सर्जन की निगरानी में उन्हें छोड़ आये हैं। जाओ, तुम्हारे पिता को बँगले पर उतारता हुआ आ रहा हूँ।'

बाबू श्यामकिशोर ने चिन्तासूचक स्वर में पूछा—'खतरे की बात तो नहीं है, साहब ?'

जो०—'नहीं जी, सिविलसर्जन सब सँभाल लेगा। बाबू साहब तुमको जोह रहे होंगे, जाओ। उन्हें भोजन से निवृत्त होकर फिर जाना होगा। प्रोफसर शिवप्रसाद भी तुमसे कुछ बाते करने के लिए वहाँ हैं।'

श्यामकिशोर ने गुडनाइट किया और तुरन्त ही मोटर-साइकिल पर बैठ कर अपने बंगले पर आये। घर के भीतर गये तो देखा कि माँ और पिताजी जल्दी भोजन समाप्त कर रहे हैं। श्यामकिशोर को देख कर डिप्टी साहब ने पूछा—'श्यामू, तुम भी चलोगे क्या, हम लोग तो अस्पताल जा रहे हैं। सब हाल तो तुम्हें मालूम ही हुआ होगा।'

श्या०—'बाबू जी, मै तो चलने के लिए बिल्कुल तैयार हूँ। कौन कौन चलेंगे ?'

डि० 'रामकरन को लेता चल रहा हूँ और मैं तथा तुम्हारी माँ, यही तीन आदमी चलते हैं। लड़कियों को रात के समय तकलीफ देना तो ठीक नही।'

'अच्छी बात है'—कह कर श्याम बाबू चपला के कमरे में गये। उन्हें यह देखना था कि इस दुर्घटना का चपला पर क्या प्रभाव पड़ता है। वहीं कमला और प्रोफेसर शिवप्रसाद भी बैठे थे। बहुत इतमीनान के साथ गीता आदि के सम्बन्ध में तरह तरह की बातें कर रहे थे, जैसे कहीं कुछ हुआ ही न हो। श्यामकिशोर को इससे बड़ी निराशा हुई। इच्छा तो हुई कि यहाँ से

तुरन्त ही चले जायँ, विशेष कर इस कारण कि अभी किसी ने उन्हें देखा न था। लेकिन क्या जाने क्या सोच कर वे कमरे के भीतर चले ही गये। शिवप्रसाद ने उनका स्वागत किया। श्यामकिशोर एक कुर्सी पर बैठ गये।

थोड़ी देर तक कोई कुछ नहीं बोला। श्यामकिशोर ने व्यङ्ग के ढङ्ग पर कहा—'मिस्टर शिवप्रसाद, क्या गीता में यह भी लिखा है कि टूटी हुई हड्डियाँ किस तरह जोड़ी जाती हैं। घर में आग लगी हो, फिर भी कोई समाधि लगा कर बैठे, यह तो मेरी समझ में नहीं आता।'

शिवप्रसाद ने झेंपते हुए कहा—'नहीं, नहीं, बाबू श्यामकिशोर, कुछ ऐसा प्रसंग छिड़ गया कि गीता का नाम आ गया। कमला को जब से इस दुर्घटना का हाल मालूम हुआ है तभी से वह अधीर हो रही है और अधीरता को दूर करने का इलाज गीता ही में सर्वोत्तम रूप से बताया गया है।'

बातें और बढ़ती, लेकिन डिप्टी साहब बाबू श्यामकिशोर को लेने के लिए वहां आ गये। श्यामकिशोर तुरन्त ही कमरे में से निकल आये। साथ ही शिवप्रसाद भी उठ गये। गाड़ी तैयार थी; डिप्टी साहब, गायत्री, श्यामकिशोर और रामकरन के बैठ चुकने के बाद वह ज्यों चलने को हुई त्यों रमदेइया ने आकर कहा—'सरकार, कमला बीबी भी जाने को कहती हैं।' श्यामकिशोर ने उत्तर दिया—'इस वक्त हमीं लोग जाते हैं, सबेरे जिसको चलना होगा चलेगा। रमदेइया चली गयी। शिवप्रसाद साइकिल पर बैठ कर थोड़ी देर तक डिप्टी साहब से बातें करते हुए गाड़ी के साथ चले और बाद को मिस्टर जोजेफ के बँगले की ओर वाली सड़क पर, जहाँ वे रहते थे, गये।

[१४]

सवेरे अस्पताल से रामकरन आया। वह भी कमला से कुछ चीजें माँग कर चला गया। दीनानाथ के सम्बन्ध में उसने जो कुछ कहा उससे कमला की उत्सुकता घटने में स्थान में बढ़ गयी। परन्तु गाड़ी आये बिना जाने का कोई साधन नहीं था। किराये के ताँगे वगैरह से अम्मा के चिढ़ जाने का डर था। इसलिए मन मार कर उसे चुपचाप रह जाना पड़ा। थोड़ी देर में उसने एक हिकमत सोची। वह चपला के कमरे में गयी। चपला रामकरन के हाथ शिवप्रसाद के पास अपना पत्र भेज कर उनकी प्रतीक्षा में बैठी थी। शिवप्रसाद साइकिल लिये इसी समय आ गये।

कमला और चपला दोनों को एक ही कमरे में बैठी देख कर शिवप्रसाद ने मुसकराते हुए कहा—'क्या आप लोग बाबू दीनानाथ को देखने के लिए उत्कण्ठित नहीं हैं ?'

कमला ने कुछ उदासी के स्वर में कहा—'उत्कण्ठा हो भी तो क्या किया जाय ? न कोई साथ ले जाने वाला है, न पैदल जा सकती हैं, न किराये के ताँगे पर जा सकती हैं।' मुझे तो साइकिल चलाना भी नहीं आता।

चपला ने आँखों में मद भर कर कहा—'अजी, हम लोगों को पूछता कौन है !'

चपला के इस कथन का आशय कमला ने अपने अनुकूल समझा। परन्तु वास्तव में उसका संकेत शिवप्रसाद की ओर था। कमला को यह नहीं मालूम था कि चपला ने अपना पत्र शिवप्रसाद के पास भेज दिया। उसके सम्बन्ध में कुछ पूछ-ताछ करने की ओर भी उसका ध्यान न गया था। दीनानाथ की चोट का हाल सुन कर उसका कोमल हृदय व्यथित हो उठा था।

शिवप्रसाद ने कहा—'अभी तो लाइब्रेरी जा रहा हूँ। वहाँ से लौटने पर अस्पताल जाऊँगा। लाइब्रेरी में मुझे घंटे भर लगेंगे। यदि इतनी देर के वाद चलना हो तो तैयार रहो। लाइ-ब्रेरी तो नहीं चलोगी चपला!'

'कुछ काम तो है, वहिन जी, चलें तो चलूँ'—चपला वोली।

कमला ने कहा, 'तुम चली जाओ, चपला, मेरी तवियत ठीक नहीं है।'

चपला जाने को तैयार हो गयी।

दस मिनटों में जव चपला साइकिल पर वैठने को चली तो कमला ने कहा—'लेकिन चपला, यदि तुम्हें देर हो जाय और इसी वीच गाड़ी आ जाय तो मैं चली जाऊँगी न?'

शिवप्रसाद ने चपला के कुछ कहने के पहले ही कहा—'जहाँ तक हो सकेगा, जल्दी ही निवट आवेंगे'

चपला अपनी साइकिल पर वैठ शिवप्रसाद के साथ चली। कमला अपने कमरे में आ कर आँसुओं से अपनी रूमाल तर करने लगी।

थोड़ी ही देर के वाद गाड़ी आकर वरसाती में रुक गयी और श्यामकिशोर उससे उतर पड़े। उन्हें सामने आते देख कमला ने रूमाल से आँखें पोछ डालीं और खड़ी होकर पूछा—'कहिए वावू दीनानाथ का क्या हाल है!,

श्यामकिशोर ने आराम कुर्सी मे वैठने पर कमला के चेहरे की ओर ध्यान से देखते हुए कहा—'यह तो मैं पीछे वताऊँगा, पहले तुम यह वताओ कि तुम्हारे रोने का क्या कारण है!' खड़े ही खड़े कमला ने उत्तर दिया—'श्याम वावू रोने ही के लिए तो मेरा जन्म ही हुआ है। इस घर में लड़कपन में जितने दिन हँस लिये वस जीवन में हँसने के मेरे

उतने ही दिन थे। शेष तो अब जान पड़ता है, मुझे रोने ही में बिताना पड़ेगा ,

श्याम०—'क्यों कमला ! ऐसा क्यों कहती हो ? क्या इस घर में तुम्हें कोई कष्ट मिला है। जहाँ तक मैं समझता हूँ , हम लोगों में से किसी ने तुम्हारे साथ किसी तरह का दुर्व्यवहार नही किया है।'

यह कहते कहते श्यामकिशोर की दृष्टि चपला के कमरे की ओर गयी जिसमें साँकल लगी थी। पूछ बैठे—'चपला कहीं गयी है ?'

क०—वे अभी लाइब्रेरी गयी हैं। प्रोफेसर शिवप्रसाद आये थे।'

श्या०—'लाइब्रेरी ? लाइब्रेरी जाने का यह कौन सा मौका है ? बाबू दीनानाथ को ऐसी चोट लगी है कि सिविलसर्जन भी परेशान हो रहा है। और हमारे घर के लोगों की सहानुभूति का यह हाल है ! आज सबेरे होश में आते ही उन्होंने सब से पहले चपला का हाल पूछा। कमला, मै इस सब का कारण जानता हूँ। बाबू जी का आर्यसमाज उन्ही को ले डूबेगा और उनका शुद्धि-सम्बन्धी उत्साह सब से पहले उन्हीं की जड़ खोदेगा। वे चाहते हैं कि शिवप्रसाद हिन्दू हो जाय और उसी के साथ चपला का ब्याह कर दे। न जाने उन्हें यह सनक क्यों सवार हो गयी है। मैंने तो ईसाइयों और मुसल्मानों को भी शुद्धि के सम्बन्ध में इतना उतावला, इतना बावला नहीं देखा। जहाँ तक मेरा बस चलेगा, चपला का ब्याह शिवप्रसाद के साथ नहीं होने पावेगा। हाँ, यह तो बताओ, तुम्हारी आँखों में आँसू आने के क्या कारण थे ? यदि तुम मुझे अपना समझती हो तो मुझे तुम्हारे दुख-दर्द की बातों को सुनने का अधिकार है।'

क०—'श्याम बाबू, अपने भविष्य की चिन्ता सभी को सताती है। मैं भी उसी का शिकार हूँ। मैं अपनी स्वतन्त्रता को हाथ से जाने देना नहीं चाहती। मैं अपनी ही कमाई से अपना पेट भी भरना चाहती हूँ। परन्तु, मेरे ये विचार अम्मा और बाबू जी को कब पसन्द आवेंगे! निकट विच्छेद की इसी आशंका से मेरा हृदय कम्पित होता रहता है, और उसके प्रबल वेग को धारण करने मे असमर्थ होकर मै उन्हे आँसुओं के रूप में निकालती तथा अपने हृदय का भार कुछ हलका कर लेती हूँ। आप मेरे असुओं की कोई परवाह न करें। मुझे तो जान पड़ता है कि मेरा आगे का जीवन आँसुओं ही का व्यापार करते बीतेगा। अब मैं कभी कभी सोचती हूँ कि अम्मा और बाबू जी ने मुझे पाल-पोस कर अच्छा नहीं किया। यह दुःखमय जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा तो यही अच्छा था कि मैं लड़कपन ही में मर गयी होती।'

श्या०—'नहीं कमला! तुम्हारी यह निराशा ठीक नहीं। संसार मे एक एक तिनके की भी उपयोगिता है। तुम्हें ईश्वर ने सुबुद्धि, सुशिक्षा और दयावान हृदय दिया है। इस दुखी ससार को अपनी सहृदयता की छाया देकर पीड़ा के उत्ताप से बचाओ।'

श्यामकिशोर बोल ही रहे थे कि कमला ने चिन्ता का भाव प्रकट करते हुए बीच ही में पूछा—'सिविलसर्जन ने इस चोट के बारे में क्या कहा?'

श्या०—'सिविलसर्जन ही क्या, शहर के सभी अच्छे डाक्टर इकट्ठे हो गये थे। गाड़ी जो रात को लौट के नहीं आयी सो उसका यही तो कारण था कि वह हम लोगों की दौड़-धूप में बहुत देर तक लगी रही। खैर, चोट तो ज्यादा है ही, लेकिन सिविलसर्जन ने आशा दिलायी है कि ईश्वर चाहेगा तो सब ठीक हो जायगा।'

क०—'आप फिर कब चलेंगे? बाबू जी वगैरह क्या आज भी वहीं रहेंगें? अबकी तो मै रुकूँगी नहीं।'

श्या०—'चपला कब लौटकर आयेगी? उसे भी साथ लेते चलते। बाबू दीनानाथ के लिए यह बहुत अच्छा होता।'

कमला ने एक ठण्डी साँस भरकर कहा—'प्रोफेसर शिवप्रसाद कह तो गये हैं घंटे के भीतर ही आने को। लेकिन मुझे उनके इस कहने से कुछ इतमीनान नही है, क्योंकि केवल मुझे साथ लेने के लिए वे इधर आवें, इसका विश्वास नहीं है। बहुत करके वे चपला के साथ उधर ही से चले जायँगे।'

श्या०—'अच्छा, थोड़ी देर के लिए मै अपने कमरे में जाता हूँ। बहुत शीघ्र लौटूँगा, तैयार रहना। तब तक घोड़ा भी कुछ खा-पी ले।'

यह कह कर श्यामकिशोर उठे और अपनी बैठक की ओर चले गये। कमला आरामकुर्सी में बैठ गयी। कुर्सी की एक भुजा पर केहुनी टेककर और कोमल हथेली पर कपोल को आश्रय देकर वह कुछ सोचने लगी। दीनानाथ जैसे साधु पुरुष को भी श्रीमान् की कन्या होने के कारण चपला के प्रति ही पक्षपात करते देखकर जीवन के प्रभात में ही पुरुष जाति के प्रति उसके हृदय में जो अपार घृणा उत्पन्न हो गयी थी, जो उसी प्रकार चपला के प्रति शिवप्रसाद के प्रेम के कारण पल्लवित हुई थी और जिसने श्यामकिशोर की गंभीरता से आहार ग्रहण किया था, वह उसके हृदय सरोवर में हिलोरें लेने लगी। किन्तु, शायद यह उसका अन्तिम उल्लास था, क्योंकि श्यामकिशोर के वर्तमान रुख के सामने वह कब तक टिकी रह सकती थी! उसने मन ही मन कहा, श्यामकिशोर चाहें तो सहज ही सुन्दरी से सुन्दरी, ऊँचे से ऊँचे घराने की तथा अधिक से अधिक श्री-सम्पन्न युवती के साथ विवाह

करके सुखी हो सकते हैं; ऐसी दशा में क्या यह उनके लिए एक महान् त्याग नहीं है कि वे विवाह करने में इन प्रलोभनपूर्ण विचारों को ठुकरा दें, फिर कैसे मैं इस प्रतिभाशाली और रूपवान तथा स्वस्थ पुरुष से घृणा कर सकती हूँ, विशेष कर उस अवस्था में तो किसी भी बाला के लिए यह अत्यन्त मूर्खतापूर्ण बात होगी जब वह स्वयं भी उसके चरणों में हृदय को समर्पित करके अपने जीवन को कृतार्थ कर सकती है।

पुस्तकों में भी पुरुषों की वंचनाशीलता की अनेक कहानियाँ पढ़ कर अपनी किशोरावस्था के, यौवनकाल के अनेक वर्ष कमला ने कठोर घृणा की एकान्त गिरिगुफा में बैठकर बिता दिये थे; पुरुष-हृदय के प्रति तनिक भी विश्वास, तनिक भी श्रद्धा उत्पन्न नहीं होने दी थी। लेकिन अब उसके विचार-गढ़ पर हमला हो रहा था। बड़ी देर तक वह तरह तरह के विचारों में उलझी रही। अन्त में श्यामकिशोर की सहृदयता से पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो कर उसने अपने आप को भुला दिया। वह आप ही आप बोल उठी--श्यामकिशोर की अपेक्षा अन्य किसी पुरुष का हृदय अधिक सरस, अधिक सुन्दर नहीं हो सकता?

लगभग एक घंटे के बाद श्यामकिशोर आये और कमला को लेकर अस्पताल की ओर गये। रास्ते में कमला ने बाबू दीनानाथ की स्त्री के देहान्त का समाचार भी उन्हें सुनाया।

श्यामकिशोर के मुँह से अचानक निकल पड़ा—'विपत्तियाँ एक साथ नहीं आती। इलाहाबाद आने की आवश्यकता भी इन्हीं दिनों पड़ गयी; अदृष्ट का चक्र बड़ा विचित्र है।'

'इलाहाबाद क्यों आना पड़ा, क्या कुछ बतलाते थे?'—कमला ने पूछा।

श्या०—'उनके छोटेसाले का विवाह पड़ गया है, उसी के लिए कई दिन पहले यह सोच कर चले थे कि दो एक दिन यहाँ

भी रुक सकेंगे। सो दो-एक दिनों की जगह कई सप्ताहों तक रुकने का प्रबन्ध संयोग ने कर दिया। लखनऊ तार दे दिया है।'

क०—'तो बूढ़ी अम्मा तो वहाँ बहुत घबरायँगी।'

श्या०—'घबरायेंगी ही नहीं, आज ही कल में यहाँ आ जायेंगी।'

क०—'एक और व्यक्ति के शीघ्र ही आने की मुझे आशा है।'

श्या०—'किसके ?'

क०—'कुमारी मारगरेट के।'

इसी तरह की बातें तब तक होती रहीं जब तक गाड़ी अस्पताल के दरवाजे पर नहीं पहुँच गयी।

[१५]

'क्या लाइब्रेरी में तुम्हारा कुछ काम है ?'—शिवप्रसाद ने चपला से पूछा।

च०—'है तो, लेकिन कुछ बहुत आवश्यक नहीं।'

शि०—'मैं तो तुमसे बातें करने के लिए ही तुम्हें इधर लाया हूँ; वे बातें वहां नहीं हो सकती थीं। चलो पार्क में कहीं ऐसी जगह बैठें जहां लोगों के आने जाने से विघ्न का अधिक भय न हो।'

च०—'जहां छाया हो वहीं बैठ जाना चाहिए, मैं साढ़े आठ बजे के पहले ही लौट जाना चाहती हूँ, क्योंकि कड़ी धूप मुझसे सही न जायगी। वह देखो, एक पेड़ के नीचे कुर्सी पड़ी है चलो उसी पर बैठें।'

चपला का रुख देखकर शिवप्रसाद को उसी कुर्सी पर बैठना पड़ा; चपला भी एक ओर बैठ गयी।

शिवप्रसाद ने कहा—'चपला, मैं तो अगस्त में विलायत जा रहा हूँ; वहाँ मुझे दो वर्षों से कम नहीं लगेंगे।'

च०—'तो अच्छा तो है। वहाँ से लौटने पर यहाँ तन-, ख्वाह भी अधिक मिलेगी। आने लगना तो एक मेम भी साथ लेते आना।'

यह कह कर चपला ने कुछ मुस्करा दिया।

शि०—'औरतों का दिल किस फौलाद का बना होता है, यह मैं नहीं समझ सका। तुम्हारे वियोग की कल्पना से मेरी तो नींद हराम होने लगी है और तुम्हें दिल्लगी सूझी है।'

चपला के होठों पर फिर मुस्कराहट आ गयी; उसे थोड़ा सा दबाते हुए उसने कहा—'अजी साहब, इस जरा सी बात को आप नहीं समझ सके तो फिर आप से क्या समझने की आशा की जाय। बात यह है कि औरतें पहले हँसती हैं, बाद को रोती हैं, इसके विपरीत मर्द पहले रोते हैं और बाद को हँसते हैं। आप के दिल में दर्द, आप के कलेजे की आहों और आँख के आँसुओं का जीवन तभी तक के लिए है जब तक इलाहाबाद से आप की रवानगी नहीं होती।'

'यह बात गलत है, चपला!' शिव प्रसाद ने जोर के साथ कहा, 'मैं तुम्हारी याद को एक मिनट के लिए भी दिल से दूर नहीं कर सकूँगा। ऊपर से तुम चाहे जो कहो, लेकिन मेरे स्वभाव को तुम भी अच्छी तरह जानती हो। खैर तुम्हें एक चीज दिखलानी है—वह है बाबू जी का पत्र।'

यह कहते हुए शिवप्रसाद ने कोट के भीतरी जेब में से एक लिफाफा निकाला और उसे चपला के हाथ में रख दिया।

चपला पत्र पढ़ने लगी। बाबू रघुनाथप्रसाद ने शिवप्रसाद को लिखा था :—

य शिवप्रसाद जी;

मैं कुछ समय से आप के बारे में एक स्वप्न देख रहा हूँ। मुझे यह देख कर हर्ष है कि आप और चपला में घनिष्ठ स्नेह

है। मैं निकट भविष्य में आपको अपने समाज में पुनः लौटते हुए देखना चाहता हूँ और उस अवस्था में चपला और आपको विवाह-सूत्र से सम्बद्ध भी करना चाहता हूँ। कृपा करके शीघ्र इस प्रश्न पर अपना विचार स्थिर कर लीजिए, क्योंकि चपला का विवाह अधिक दिनों तक रुक नहीं सकेगा।

आपका हितैषी

रघुनाथप्रसाद

पत्र पढ़ लेने के बाद चपला ने उसे शिवप्रसाद के हाथ पर रखते हुए मुसकरा कर कहा 'तो लिख न दो कि मैं विवाह ही नहीं करूँगा। जीजी की तरह तुम भी तो विवाह को बुरा समझते हो।'

शि०—'नहीं, नही, यदि तुम्हारे ऐसी जीवन-संगिनी मिले तो विवाह तो इसी पृथ्वीतल पर स्वर्ग को ला देगा; किन्तु अमेरिका जाने की एक अड़चन जो पैदा हो गयी है।'

च०—'तो जब तक तुम अमेरिका की किसी कुमारी को निराशा के सागर में निमग्न कर या स्वयं ही उसके बाहु पाश में बँधकर इस देश को लौटोगे तब तक...

शिव० 'तब तक क्या हो जायगा ? तुम रुक क्यों गयीं चपला ?'

च०—'तब तक मेरा ब्याह रुक नही सकता' अपने उमड़े हुए भावों को रोकते हुए चपला ने कहा।

शि०—'इसका तो यह मतलब कि तुम किसी दूसरे की हो जाओगी और पिता-माता की मूर्खता का सफल विरोध न कर सकोगी। क्या ऐसा करना उचित होगा चपला ?'

च०—'मुझे विरोध करने की आवश्यकता ही कहाँ रह जायगी ? जब तुमसे इतना भी नहीं हो सकता कि विवाह करने के बाद अमेरिका अकेले जाओ, या मुझे भी साथ लेकर चलो

तो तुम्हारी किस शक्ति पर मैं अपने प्रेम को अवलम्बित कर सकूँगी ?'

शि०—'तुम्हें साथ ले चलने में दुगुना व्यय पड़ेगा ।'

च० - 'मैं अपना व्यय पिता जी के मत्थे डाल दूँगी।'

शि० 'लेकिन—'

च०—'अब कैसा लेकिन?'

शि०—'मैं मिस्टर सिंह के रुपये से अमरीका जा रहा हूँ। ऐसी दशा में ईसाई मत छोड़ना मेरे लिए कठिन है।'

च०—'थोड़े दिन ठहर कर शायद मैं आप के व्यय का भा प्रबन्ध कर सकूँ। क्या कुछ दिन आप रुक नहीं सकते ?'

शि०—'समय नष्ट होगा।'

च०—'बहुत अच्छा, आपने मुझे समझा दिया कि प्रेम के लिए कुछ भी त्याग करने की आवश्यकता नहीं होती। मैं ऐसे प्रेम मे विश्वास नहीं करती।'

यह कह कर चपला अकस्मात् उठ खड़ी हुई और साइकिल पर बैठकर अपने बँगले की ओर चल पड़ी। वहाँ कमला को न देखकर उसके जी को बड़ा ढाढ़स हुआ। अपने कमरे को बन्द कर के वह बड़ी देर तक रोती रही, मानो आज उसका सर्वस्व नष्ट हो गया हो।

एकाएक रामकरन ने आकर आवाज दी और चपला के किवाड़ खोलने पर समाचार दिया कि बनारस के डिप्टी साहब मेम साहब के साथ आये हैं। चपला बनावटी प्रसन्नता प्रगट करती हुई कमरे के बाहर स्वागतकरने के लिए आयी। देखा कि मिस्टर सिंह और कुमारी मारगरेट ताँगे पर से उतर रहो हैं।

कुमारी मारगरेट ने उत्साह-पूर्वक आगे बढ़ कर उससे हाथ मिलाया और हँसते हुए पूछा—'चपला, श्याम बाबू कहाँ हैं ?'

'इस समय यहाँ मै ही अकेली हूँ। सब लोग अस्पताल गये है'—चपला ने उत्तर दिया।

'क्यों कुशल तो है?—श्याम बाबू तो अच्छी तरह हैं' घबराहट के साथ कुमारी मारगरेट ने कहा।

चपला ने सब समाचार बतलाकर कुमारी मारगरेट का समाधान किया और उसके तथा मिस्टर सिह दोनों के विश्राम आदि का प्रबन्ध करने के बाद रामकरन को अस्पताल भेज दिया, जिससे बाबू रघुनाथ प्रसाद तथा अन्य सब लोगों को समाचार मिल जाय।

दूसरे दिन तड़के ही करुणा देवी भी शिवराम और शिशु कृष्णकुमार के साथ लखनऊ से आ गयी।

[१६]

शिवप्रसाद से निराश होने पर चपला की हालत ही कुछ बदल सी गई। न वह चंचलता रह गयी और न वह मनोहर हास जो शायद एक बार मुर्दों में भी चेतना का संचार कर देता। किसी काम में उसकी तबीयत ही न लगती। भोजन आधा हो गया। चेहरे पर दुर्बलता अपना अधिकार जमाने लगी। कुशल यही थी कि दीनानाथ की बीमारी के कारण किसी का ध्यान चपला की इस अवस्था पर नही जाता था; नहीं तो चपला को न जाने कितनी झूठ बातों की सृष्टि करनी पड़ती।

डाक्टरों ने दीनानाथ का इलाज बड़ी सावधानी से करना शुरू किया। बाबू रघुनाथप्रसाद ने इस बात का उत्तम प्रबन्ध कर दिया कि दीनानाथ की सेवा में कोई कसर न रहे। जब डाक्टरों ने यह हिदायत की कि सब तरह से इन्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा की जाय, और स्त्री माँ या अन्य कोई जिसे ये बहुत अधिक प्यार करते हों इनकी सेवा-सुश्रूषा में रखी जाय, तब

बाबू रघुनाथ प्रसाद ने उनके पास बैठने का काम चपला के सुपुर्द किया। चपला ने स्पष्ट रूप से इन्कार तो नहीं किया, परन्तु, अपनी उदासीनता-द्वारा उसने अपना उत्तर भी दे दिया। क्रमशः इस बात की घर में बड़ी शिकायत होने लगी कि चपला दीनानाथ की बीमारी में तनिक भी काम नहीं कर रही है। और तो और, कमला तक से चपला ने शिवप्रसाद-सम्बन्धी काण्ड छिपाया था। इसके परिणाम-स्वरूप कोई ऐसा ना था जो चपला की ओर से थोड़ी भी वकालत करता।

दीनानाथ की सेवा में कमला का दिन और रात को एक कर देना, गायत्री देवी का तल्लीन रहना, श्यामकिशोर का सब कामों को छोड़ कर बार बार आते-जाते रहना—यह सब देख कर करुणा देवी को सबसे बड़ी चिन्ता तो इस बात की हो जाती थी कि इस महाऋण से मैं उऋण कैसे हूँगी। अस्पताल में एक दिन सबेरे आठ बजे जब दीनानाथ की तबीयत अच्छी थी और कमला उनके पास बैठी थी, तब थोड़ा अलग, बरामदे में, कृष्णाकुमार को गोद में लेकर गायत्री देवी करुणा देवी के साथ गपशप करने बैठीं। एक ओर गायत्री देवी यह रोना रोने लगीं कि हमारी लड़कियों के लिए योग्य वर नहीं मिल रहा है, दूसरी ओर करुणादेवी बोलीं—'बेटी, अब जिन्दगी थोड़ी बची है, ईश्वर से प्रार्थना है कि वे कोई ऐसी बहू भैया को दें जो पहली बहू की तरह ही समझदार हो। निपूती थी, इसीसे मैं उससे चिढ़ती रहती थी। भगवान ने उसकी गोद भी भरी तो संसार का सुख थोड़े दिनों तक भोग न सकी—' यह कहते कहते करुणादेवी की आँखें भर आयीं।

गायत्री देवी ने गंभीर होकर कहा—'माता जी, मैं एक संकट में हूँ। कम्बख्त शिवप्रसाद हिन्दू होने को कहता है और हमारे डिप्टी साहब उसी के साथ चपला का व्याह कर देनेकी

इच्छा रखते हैं। कहते हैं कि जब वह हिन्दू होगा तब हमें भी तो दिखाना चाहिए कि हम उससे घृणा नहीं रखते। भला माता जी, तुम्हीं बताओ, वह मुआ हिन्दू होगा तो हमारे मत्थे और हमारी लड़की के मत्थे ? आर्य-समाजी होकर उन्होंने आधी अक्ल तो कहीं चरने भेज दी है, रही आधी, सो उसके बल पर इसी तरह की ऊल-जलूल बातें बका करते हैं।'

करुणा देवी कानों पर हाथ रखकर बोलीं—'राम ! राम ! यह कैसी बात है। उस मरे को क्या कहती हो। बनारस में तुम्हारे चले आने पर जो डिप्टी आये थे उनकी बिटिया बड़ी सुघर थी। बस, उसी के लिए वह ईसाई हो गया। उस समय हमारे भैया लखनऊ चले आये थे। इनका उस पर बड़ा प्रेम था, और किस पर इनका प्रेम नहीं होता ? अब मालूम होता कि चपला के लिए वह हिन्दू होने को तैयार है। देखो गायत्री, चपला का भविष्य तुम बिगाड़ोगी तो मुझे बड़ा कलक होगी। इससे कहीं अधिक अच्छा यह है कि तुम हमारे भैया के साथ उसका व्याह कर दो।'

गा०—'दीनानाथ मान लेंगे ?'

क० 'अरे मैंने मान लिया तो दीनानाथ नहीं मानेंगे, पगली !'

बड़ी देर तक दोनों इसी तरह की बातें करती रहीं।

इधर ये बातें हो रही थीं उधर आज दीनानाथ ने कमला से भी कुछ पूछा। करवट बदल कर उन्होंने मन्द स्वर में कहा--'क्यों कमला ! अब तो तुम्हारा पढ़ने का काम समाप्त हो गया। अब क्या करोगी ? तुम्हारे जीवन का लक्ष्य क्या है ? महिला-विद्यालय में काम करने के सम्बन्ध में क्या निश्चय किया ? विवाह करोगी या नहीं ?'

कमला को उत्तर सोचने की जरूरत नहीं थी। उसने कहा—'अनेक पुस्तकों में मैंने पुरुषों के अत्याचार की कथाएँ पढ़ी हैं। मुझे तो पुरुष के अधीन होकर जीवन व्यतीत करने में विरक्ति मालूम होती है।'

दीनानाथ ने उत्तर दिया—'कमला, मैंने सुना है, तुम किताबों का कीड़ा हो। पुस्तकें पढ़ना अच्छी बात है, लेकिन वे भी तुम्हें तभी सच्ची सहायता देंगी जब तुम अपनी आँखें खुली रक्खो और जितना पढ़ो उससे सौ गुना अधिक सोचो, और गुनो। पुरुषों के अत्याचार तुमने पढ़े हैं, सो ठीक ही होगा। स्त्रियों के अत्याचार की कथाएँ न पढ़ी हों तो मैं तुम्हें पढ़ने को दूँ। कमला! स्वयं तथ्य बातों का संकलन करो; उत्तम लेखकों के वाक्यों का मनन करो और उनके आधार पर अपना मत बनाना सीखो। मै किसी तरह की गुलामी नहीं पसन्द करता और अधकचरे विचारों वाले, किराये के टट्टू, जनता की रुचि पर नाचने वाले लेखकों की भी गुलामी मुझे पसन्द नहीं। सच बात यह है कि पुरुषों और स्त्रियों दोनों में बुरे और भले होते हैं। तुम्हारे विवाह न करने का यह कारण उचित नहीं है।'

यह कह कर दीनानाथ थकावट का भाव प्रकट करते हुए चित लेट गये; थोड़ी देर तक कमला भी नहीं बोली।

कुछ स्वस्थ होकर दीनानाथ फिर बोले—'तुम विवाह करके आदर्श गृहिणी बनने का प्रयत्न करो, इसके बराबर तुम्हारे लिए संसार में कुछ नहीं है। पुरुष-द्वेष से प्रेरित होकर अथवा संसार का उपकार करने के फेर में पड़ कर कहीं तुम अपना अनुपकार न कर डालो, यही भय है मुझे कमला!'

कमला कुछ नहीं बोली।

थोड़ी देर के बाद उसने कहा—'क्या पति के अधीन रहने

ही में सब सुख है। मेरा मस्तिष्क तो इस बात को ग्रहण नहीं कर सकता। जैसे सब गुलामी वैसे ही यह भी गुलामी।'

इसी समय करुणादेवी और गोद में कृष्णाकुमार को लिये हुए गायत्री देवी ने कमरे में प्रवेश किया। करुणादेवी ने स्नेहमय स्वरों में पूछा—'कैसी तबीयत है, भैया ?'

दी०—'अब तो ठीक है माँ, आज कमला से कुछ बातें भी की हैं। श्रीमती भाभी जी से पूछो तो, माँ, कि वे इन लड़कियों का विवाह क्यों नही करती ? डिप्टी साहब से तो कहना-सुनना व्यर्थ है। किन्तु कम से कम वे तो कुछ बुद्धि के साथ काम करें।'

करु०—'तुम्हारे सिरहाने की ओर ही तो वे खड़ी हैं, स्वयं क्यों न पूछ लो।'

दीनानाथ ने गायत्री देवी की ओर देखने पर हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और पूछा—'आप कब आ गयीं ?'

गायत्री देवी ने हँस कर कहा—'अभी, अभी। ईश्वर करे, तुम्हारा शीघ्र ही विवाह हो।'

दी०—'ना, ना, देवी जी ! मेरे लिए यह प्रार्थना मत करो। मेरा गृहस्थ जीवन तो समाप्त हो गया। अब मुझे माँ की सेवा करने दो।'

करु०—'यह क्या कहते हो भैया, मै तुम्हारी गृहस्थी सँभालने के लिए कितने दिन तुम्हारे साथ रहूँगी ? तुम्हें दो रोटियाँ देने के लिए, इस छोटे बच्चे कृष्णाकुमार के पालन-पोषण के लिए, एक बहू को तो घर में लाना ही होगा।'

दी०—'नहीं माँ, जब तक मेरे भाग्य से तुम रहोगी, बच्चे का पालन-पोषण तुम कर लोगी; उसके बाद मैं स्वयं कर लूँगा। मुझे फिर झंझट में मत डालो, मैं संसार से ऊब गया हूँ।'

दीनानाथ के शब्दों में प्रभाव था। करुणा और गायत्री दोनों ही थोड़ी देर के लिए चुप हो गयीं। करुणा देवी ने सोचा कि बेटे की तबियत अब भी अच्छी नहीं है; नहीं तो ऐसे निराशाजनक स्वर में बोलता ? उन्होंने पूछा—'बेटा, इस समय जी कैसा है ? कहीं दर्द तो नहीं है ?'

दी०—'नहीं माँ, आज दर्द बिल्कुल नहीं है। ईश्वर चाहेगा तो शीघ्र ही घर चलने लायक हो जाऊँगा।'

गायत्री देवी ने कहा—'क्यों, घर जाने के लिए इतने उतावले क्यों हो रहे हो ? क्या यह तुम्हारा घर नहीं है। कालेज भी तो बन्द है। गरमी की छुट्टियाँ तो अभी शुरू ही हो रही हैं।'

दीनानाथ कुछ न बोले। करुणा देवी ने तुरन्त ही उत्तर दिया—'जाने की जरूरत का हाल कुछ न पूछो। वहाँ हमार बूढ़ी नौकरानी रो-रो कर जान देती होगी। वह दईमारी दीनानाथ का जरा सा दुख तो देख नहीं सकती; मैं आने लगी तो किसी तरह मानती नहीं थी। बहुत समझा बुझा कर उसे वहाँ रहने पर राजी किया। अपना मकान है गायत्री! एक दम से सूना छोड़ना अच्छा नहीं।'

गा०—'तो क्या नौकरानी के इतना भी हम लोग दीनानाथ को नहीं चाहते। उस पर तो तुम्हारी इतनी ममता और हम लोगों से इतना तोड़-तुड़ाव। अभी इन्हें अच्छा तो हो जाने दो; हमारी इनकी बहुत सी बातें होंगी। इन्होंने छोटी छोटी बातों से हमारे घर आना एक दम क्यों छोड़ दिया ? जिस चपला को देखे बिना इन्हें एक दिन कल नहीं पड़ती थी उसी को एक दम से क्यों भुला दिया ? चपला भी तो एक ही पाजी लड़की है, पास तक नहीं फटकती।'

दीनानाथ मुस्कराये। कुछ बोलने को हुए तो गायत्री देवी ने रोक कर कहा—'अभी तबियत और अच्छी हो लेने दो, तब हमारी तुम्हारी बहस हो लेगी; कोई जल्दी नहीं है।'

इसी समय रामकरन ने आकर कहा—'मालकिन, गाड़ी आ गयी।'

कृष्णकुमार को करुणा देवी की गोद में देकर गायत्री देवी तुरन्त ही चली गयीं।'

करुणा देवी सिरहाने तिपाई पर बैठ कर कृष्णकुमार के सिर पर हाथ फेरने लगीं।

[१७]

दीनानाथ के कारण डिप्टी रघुनाथ प्रसाद के नौकरों तथा घर वालों पर काम का काफी भार पड़ गया था; फिर मारगरेट और मिस्टर सिंह की आवभगत से इन लोगों का परिश्रम कितना अधिक बढ़ गया होगा, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। रामकरन के साथ-साथ ड्राइवर आदि जो अन्य नौकर थे वे सब तो पिस ही रहे थे, बेचारा शिवराम भी ऐसी दौड़-धूप में पड़ गया था कि उसे भगत होने के नाम पर दो बार रामनाम लेनेके भी लाले पड़ गये थे। दीनानाथ के सम्बन्ध का तो सब काम वह बड़े प्रेम से करता था;बाबू रघुनाथप्रसाद, श्यामकिशोर आदि की सेवामें रहना भी उसके लिए प्रसन्नता का कारण होता था; किन्तु जब लोग उसके मनोभावों का आदर न करके उसे मारगरेट अथवा मिस्टर सिंह की हाजिरी में भेज देते थे तब उसकी दशा साँप-छछूँदर की सी हो जाती थी और अनिच्छापूर्वक कुड़मुड़ाते हुए ही वह अपनी इस चाकरी को बजा लाता था। लू की भीषणता के कारण असह्य दोपहर को ऐसे ही अप्रिय काम से छुट्टी पाकर वह रामकरन की कोठरी में

गया और किवाड़ों को पहले ही की तरह बन्द करके बड़ी ग्लानि के साथ बोला—'भाई रामकरन, मैं तो हैरान हो गया; न जाने किस पाप का कुफल मिल रहा है जो मुझे क्रिस्तानों की सेवा करनी पड़ रही है। मैं तो समझता हूँ कि मेरे ही अभाग्य से बाबू जी को चोट लगी; न यह दुर्घटना हुई होती और न मुझे यहाँ आकर इस चक्कर में फँसना पड़ता—' यह कहते हुए वह कोठरी में बिछी हुई ताड़ की चटाई पर बैठ गया।

रामकरन रसोई बनाने की चिन्ता कर रहा था; इसी बीच में अपने साथी के कुम्हलाए हुए मुँह को देख कर एक प्रकारके आन्तरिक सन्तोष का अनुभव करते हुए ही उसने मुसकरा कर कहा—'भाई साहेब, अब यह कलजुग है; इसमें क्रिस्तानों की, मुसल्मानों की नौकरी भी करनी ही पड़ेगी; अगर पेट पालना है तो इससे छुटकारा नहीं। यह कहो कि अच्छे कर्म्म किये हो जो दीनानाथ बाबू ऐसा धर्म्मात्मा मालिक पाया है। भगवान उनकी जिन्दगी बनाये रहें तो तुम्हें किसी बात की तकलीफ नहीं।'

रामकरन के पेट में काँव-काँव मच रही थी; इसलिए उसने अपने रसोई के काम में तो ढीलाई नहीं की; चूल्हे में पतली लकड़ियों पर लालटेन से थोड़ा सा मिट्टी का तेल छोड़ कर दियासलाई लगा देने के बाद बटलोही के चारों ओर राख लगाया और उसमें दो आदमियों के खाने भर की दाल के लिए पानी भर दिया। लेकिन खीझे हुए शिवराम की बातों को सुनने के लिए उसके कान बराबर मुस्तैद बने रहे।

शिवराम ने कहा—'भाई रामकरन, जब मैं दस बरस का था तभी से दीना बाबू का नमक खा रहा हूँ। अब मेरी उम्र २६ साल की होने आयी। अपनी १६ साल की नौकरी में मुझे इतना दुख कभी न हुआ था जितना इन क्रिस्तानों की सेवा करने से

अब हो रहा है। यह कहो कि इस जून बनी बनायी दो रोटी तुम दे दोगे, नही तो खोझ के मारे मैं क्या रोटी बनाने बैठता ?'

बटलोही चूल्हे पर रख कर आग को जरा सा ठोक करते हुए रामकरन ने कहा—'अरे भाई तो कहीं शाम को हड़ताल न कर देना, नहीं तो तुम्हें तो खीझने का स्वाद मिलेगा और मैं भूखों मर जाऊँगा।'

शि०—'घबराओ मत भाई, मैंने बेईमानी करने के लिए गले में कंठी नहीं बाँधी है; तुमसे मिहनत कराकर आराम करूँगा तो मैं भी मिहनत करके तुम्हें आराम दूँगा। रहा खीझना, सो उसके लिए क्या करूँ; तुम्हारी तरह आर्य्यसमाजी मालिक के साथ रहता होता तो मुझे भी क्रिस्तानों की सेवा से चिढ़ नहीं होती।'

रामकरन ने अदहन होने के पहले ही बटलोही में दाल डाल दी और चटाई पर आकर अवकाश के साथ बातचीत का मजा लूटने का निश्चय किया। बैठते ही उसने कहा—'भैया शिवराम, क्या हमारी अम्मा जी भी आर्यसमाजी हैं; नहीं देखते हो कि महराजिन को कितने कायदे के साथ भोजन बनाना पड़ता है। मैं तो कहता हूँ कि मेरी अम्मा जी के बराबर तुम्हारी अम्मा जी भी सनातनधर्म्मी नहीं हैं।'

रामकरन ने शिवराम में जोश पैदा करने ही के लिए दोनों माताओं की तुलना कर दी थी। उसका निशाना ठीक लगा; शिवराम ने कुछ ऊँची आवाज में कहा—'देख लिया तुम्हारी अम्मा का सनातन धर्म्म; दो दो जवान लड़कियाँ शादी बिना बूढ़ी हो रही हैं और फिर भी उनके कान पर जूँ नहीं रेंगती; कल वे किसी क्रिस्तान के साथ चली जाँयगी तो उनके सनातन धर्म का डंका चारों ओर पिट जायगा।'

रामकरन को अपने मालिकों का कोई पक्षपात तो था नहीं; वह तो प्रेम के कारण नहीं, पैसों के कारण उनकी सेवा करता था; इसलिए शिवराम को उत्तेजित करने ही के उद्देश्य से उसने फिर कहा -'अच्छा, मान लिया कि वे कल किसी क्रिस्तान के साथ व्याह कर लेंगी तो इसमें बुराई ही क्या है ? क्या क्रिस्तान आदमी नहीं हैं; मैं तो समझता हूँ कि बहुतेरे क्रिस्तान हिन्दुओं से भी अच्छे होते हैं, शरीर की सफाई में भी और दिल की सफाई में भी।'

शिवराम के लिए यह हद से अधिक था। वह आपे में नहीं रहा और क्रोध से चिल्ला उठा—'तुम हो टुकड़खोर; अधर्म्मियों का अन्न खाते खाते तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो गयी है। मैं पापी हूँ जो तुम्हारा छुआ भोजन या जल ले लेता हूँ।'

रामकरन ने यह नहीं सोचा था कि शिवराम इतना उत्तेजित हो उठेगा। फिर भी उसे क्रोध न आया; वह बराबर मुस्कराता और हँसता रहा, जिससे शिवराम और भी जल भुन कर खाक हो रहा था।

इसी समय किसी ने किवाड़ों को धीरे से खोला। दोनों ही सजग हो गये; क्योंकि उनमें से किसी की भी यह इच्छा नहीं थी कि ये बातें किसी तीसरे की जानकारी में आवें। शीघ्र ही रमदेइया भीतर आ गयी। थोड़ी देर तक कोठरी के भीतर पूरी शान्ति बनी रही। रमदेइया जमीन पर दीवाल के सहारे बैठ गयी और रामकरन की ओर मुँह करके बोली—'रामकरन, दो रोटी मेरे लिए भी बढ़ के बना लेना।'

रामकरन ने पूछा, 'क्यों ?'

उसके चेहरे पर एक दबी हुई मुसकराहट का भाव दिखायी पड़ रहा था।

रमदेइया ने कहा—'क्यों, यह भी कोई सवाल है ? भूख लगी है, इसीलिए, और क्यों ?'

शिवराम सिर को कुछ झुकाये हुए किसी विचार में मग्न था; इससे रमदेइया को अपने उत्तर के साथ जरा सा मुसकरा भी देने में कोई हर्ज नहीं जान पड़ा।

शिवराम ने एकाएक सिर उठाया और रमदेइया से कहा—'तुम क्या करोगी, अब संसार के सब कायदे ही बदलते जा रहे हैं, पहले स्त्रियाँ पुरुषों की सेवा करती थीं, अब पुरुष स्त्रियों की सेवा करेंगे।'

यह कह कर शिवराम चुप हो गया। लेकिन वास्तव में उसने अभी अपने हृदय का उद्गार प्रगट नही किया था; रमदेइया और रामकरन को बोलने का अवसर न देकर उसने फिर कहा—'तुमने सवेरे से लेकर अब तक कौन सा काम किया है जो थक कर रामकरन से रोटी बनवाना चाहती हो ? क्या रामकरन अभी तक बैठे बैठे आराम कर रहे थे ?'

रमदेइया ने उत्तर दिया—'तो क्या मुझे बैठे बैठे तलब मिलती है; सवेरे से अब तक दम लेने को तो फुरसत मिली नहीं, और तुम समझते हो कि मै रानी की तरह सेज पर लेटी ही रही हूँ। मेरा काम तुम्हें करना पड़े तो मालूम पड़े; बर्त्तन माँजना, कमला बीबी, चपला बीबी, माँ जी आदि सब के लिए नहाने का बंदोबस्त करना, उनकी धोती पखारना, घंटे में चार बार बाजार तथा और जहाँ कहीं भेजें वहाँ जाना, क्या यह सब काम ही नहीं है ? तुम तो मेमसाहब का चाय का प्याला जरा सा इधर से उधर कर देते हो और जरा सा अस्पताल चले जाते हो, इतने ही में कहते हो कि मैं काम के मारे मरा जा रहा हूँ।'

रामकरन ने देखा कि बात का रुख बेढंगा है, इसलिए उसने कहा, 'कौन काम कम करता है और कौन अधिक, इसका पता तो हम लोगों के मालिकों को होगा। हाँ, तुम्हारी रोटी मैं बना सकता हूँ, लेकिन इस शर्त पर कि आटे के घड़े में से आटा निकाल कर तुम माँड़ो।'

र०—'मुझे यह काम मंजूर है, लेकिन शिवराम से भी तो कोई काम लो। और कुछ न कर सकें तो दो पैसे के आलू ही ये बाजार से ले आयें।'

यह कहते समय रमदेइया की हँसी से भरी हुई आँखें रामकरन के चेहरे की ओर थीं, और शिवराम रमदेइया की ओर देखता हुआ सोच रहा था कि यह औरत तो मुझे अच्छे चक्कर में डालना चाहती है।

चूल्हे की ओर रामकरन की निगाह गयी। उसने देखा कि आग धीमी पड़ रही है। उसे ठीक करने के लिए उठते हुए उसने कहा—'रमदेइया, तुझे हरदम दिल्लगी ही सूझती है; बँगले के अन्दर आराम से इधर उधर मटरगश्ती करती रहती है, तिस पर थकावट का ढोंग करती है। एक बार इस कड़ी धूप में चौक जाना पड़ जाय तो नानी मर जाय। बेचारे शिवराम को दौड़-धूप उतनी नहीं अखरती जितनी मेम साहब और साहब बहादुर के जूठे बर्तन साफ करना; फिर इसके सिवा इन्हें जितने बार अस्पताल जाना पड़ता है उतने बार मुझे या तुझे जाना पड़े तो छठी की याद आ जाय।'

चूल्हे के पास बैठते-बैठते तक यह बात समाप्त करके रामकरन ने कुछ अन्यमनस्कता में डूबे हुए शिवराम की ओर देखकर मुसकरा दिया, जिसका मतलब दूसरे शब्दों में यह था कि भगत जी खूब चक्कर में पड़े हैं।

रामकरन की मुसकराहट में रमदेइया ने भी सहयोग किया, किन्तु इस दोष के साथ कि शिवराम ने उसकी परिहासमयी मुखमुद्रा का भाव ताड़ लिया। रमदेइया कुछ संकुचित हो गयी और अपनी त्रुटि का प्रभाव हलका करने के उद्देश्य से बोली - 'शिवराम' तुम भगत हो; इन लोगों को तो तुम्हारी कंठी का कोई ख्याल है नहीं; मेरे ध्यान में भी यह बात नही आयी और न तुमने या रामकरन ने ही इस ओर जरा सा भी इशारा किया। अब से यह काम मैं कर लिया करूँगी।'

रमदेइया की इन बातों का शिवराम पर अच्छा प्रभाव पड़ा, उसका चेहरा खिल उठा।

रामकरन ने कहा—'लो भाई शिवराम, अब तो प्रसन्न हो जाओ, रमदेइया बेचारी ने तो तुम्हारी कठिनाई हल कर दी।'

शि०—'प्रसन्न तो मै हूँ ही; मैं क्या उसको कुछ कहता हूँ, या उससे नाराज हूँ? साधारण बात ध्यान में आयी, कह दी। सो, अब भी कहूँगा कि रोटी बना कर हम लोगों को खिलाना, वास्तव में रमदेइया का काम है; किन्तु उलटा वह हम लोगों से रोटी बनवाना चाहती है।'

रमदेइया—'स्त्रियों ने सदा के लिए पुरुषों को रोटी बना कर खिलाने का ठेका थोड़े ही ले लिया है? बहुत दिनों तक हम लोगों ने पुरुषों की गुलामी की; अब पुरुषों को कुछ दिनों तक हम लोगों की सेवा करनी चाहिए।'

रामकरन ने कई बार स्वीकार-सूचक ढंग से सिर हिला-हिला कर कहा—'बहुत ठीक, गुलामी का अच्छा बदला चुकाने का तुमने विचार कर लिया है। तो भाई, यहाँ तो तुम्हारा कोई गुलाम नही है; क्या 'मान न मान, मैं तेरा मेहमान' वाली कहावत चरितार्थ करोगी? जहाँ तुम्हारे गुलाम हों वहाँ जाओ, रोटी बनवाओ और खाओ।'

रमदेइया कुछ निरुत्तर सी हो गयी।

शिवराम ने देखा कि रमदेइया ने स्वतंत्र विचारों वाले आर्य्यसमाजी परिवार में रहकर काफी स्वतन्त्रता का भाव ग्रहण कर लिया है; इससे सहज ही उसे यह जानने की इच्छा हुई कि इसका पति के साथ कैसा व्यवहार है। इसी मतलब से उसने पूछा, 'रमदेइया, तुम्हारे पति तुम्हें कभी मारते-पीटते भी हैं ?'

रमदेइया ने तुरन्त ही उत्तर दिया—'मारेंगे क्यों ? उन्हें अपनी कमाई भी खिलाऊँगी और मार भी खाऊँगी ? यों ही रोगी बने रहते हैं; उनमें मारने का दम कहाँ ?'

शि०—'मान लिया कि वे रोगी न होते और तुम्हारी कमाई खाने के साथ साथ तुम्हें मारते भी, ऐसी अवस्था में तुम क्या करतीं ?'

र०—'तो मार खाने के लिए मैं उनके साथ ही क्यों बनी रहती ? पति का धर्म्म है कमा कर स्त्री का पालन करना, जिस पति में यह बूता नहीं वह कम से कम सहनशील होकर ही घर में पड़ा रहे तो काम चल सकता है। इसके विपरीत अगर निकम्मा आदमी बिना प्रयोजन के शान बघारा करे तो मैं तो उसकी धौंस नहीं सह सकती।'

शि०—'तो इसको छोड़ दोगी न ?'

र०—'और क्या ?'

शि०—'ठीक है, तुम्हारे मालिक का ही ऐसा विचार है तो तुम्हारा क्यों न होगा ?'

र०—'देख लेना, कुछ दिनों में तुम्हारे मालिक का विचार भी ऐसा ही हो जायगा। शीघ्र ही चपला या कमला बीबी तुम्हारी मालकिन होंगी, और इन बीबियों के जैसे विचार हैं उन्हें यहाँ मुझसे अधिक कोई नहीं जानता।'

शि०—'नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता; हमारे मालिक इस

घर में व्याह नहीं कर सकते। हमारी माँ जी को यहाँ की दोनों बीवियों में से एक भी पसन्द नहीं आ सकतीं। इन लोगों का तो जैसा रहन-सहन है वह बनारस के क्रिस्तान डिप्टी ही का सा है; मेम मारगरेट के हाथ से पानी और खाना भी ये लोग खा लेती हैं; यह बात तो कल मै देख कर दंग रह गया। मैंने तो सुना है, तुम्हारे मालिक इन बीवियों में से एक का व्याह क्रिस्तान के साथ ही करेंगे।'

र०—'तुमने सुना है, मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि हमारे घर की एक बीवी एक ईसाई से सालों से प्रेम कर रही है और यह बीवी और कोई नही वही है जिसे तुम्हारे मालिक ने लड़कपन में बहुत अधिक प्यार किया था—अर्थात्! चपला रानी।'

इस सुन्दर बातचीत में रामकरन को विघ्न डालने की कोई इच्छा नहीं थी; लेकिन दाल अब आधी पक गई थी और आटे का माड़ा जाना आवश्यक था; इसलिये उसने रमदेइया से कहा--'अच्छा अब आटा माँड़ने में देरी मत करो।'

रमदेइया तुरन्त ही पीतल की थाली में आटा निकाल लायी और एक लोटा पानी लेकर माँड़ने लगी।

रमदेइया का स्वास्थ्य अच्छा था और यद्यपि उसकी अवस्था तीस वर्ष से कम न थी, फिर भी देखने में अभी वह पच्चीस से अधिक नही जान पड़ती थी। स्वास्थ्य के साथ साथ उसमें थोड़ी शौकीनी भी थी, लेकिन वह इतनी अधिक मात्रा में नहीं थी कि लोगों को उसके आचरण पर सन्देह होने लगे। बाबू रघुनाथप्रसाद के स्वतन्त्रता-प्रिय परिवार में उसे स्वतन्त्रता की हवा निस्सन्देह लगी थी, लेकिन उसके कारण अभी तक आवारागर्दी ने उसके हृदय में प्रवेश नहीं किया था। पर-पुरुषों

से बात करने, अथवा साधारण परिहासोंका चंचल उत्तर देदेने में वह कोई हर्ज नही समझती थी, और इसके आगे बढ़ने को भी तैयार नहीं थी। अगर उसके चरित्रमें यह दृढ़ता न होती तो शायद बहुत पहलेही वह रामकरन की स्त्री होचुकी होती। आटा माँड़ते समय उसकी अपूर्व छवि को रामकरन जिस स्थिर दृष्टि से देखने लगा उसमें जहाँ मुग्धता का भाव था वहाँ निराशा की झलक भी थी, उसके विचित्र और अज्ञेय स्वभाव को अधिक समझ पाने की प्रयत्नशीलता भी थी। इस समय उसे यह भी स्मरण न रहा कि उसके मन के भावों को हृदयंगम करके शिवराम जी में क्या सोचेगा! शीघ्र ही उसकी मोह-निद्रा भंग हुई और अपनी परिहास-वृत्ति को जगाकर उसने शिवराम की ओर मुँह करके कहा—'भाई शिवराम,बड़े मौके से तुम यहाँ आ गये हो और दास-पाँच दिनों में चले भी जाओगे, इस बीच में मेरा और रमदेइया का झगड़ा भी निपटाते जाओ।'

शिवराम भी कुछ सोच रहा था। रामकरन की बातें सुनकर बोला—'तुम्हारा और रमदेइया का झगड़ा कैसा? झगड़ा तो मेरा और रमदेइया का था, सो तुमने निवटा दिया।'

रा०—'नहीं मेरा और इसका बहुत पुराना झगड़ा है। बहुत दिन हुए, जब हमारे मालिक बनारस में थे तभी इसका पति डिप्टी साहब की नौकरी में आया। तुमने शायद उसे बनारस में भी देखा हो; नौकरी में कुछ ही दिन रहकर वह बीमार रहने लगा और तबसे रमदेइया ने उसका बहुत सा काम सँभाल लिया। कई बरसों से वह बीमार बना आताहै।और यही अपनी कमाई से पेट चलाती तथा उसकी दवा-दारू भी करती है। मैं कई बरसों से इससे कहता आ रहा हूँ कि तू उस निखट्टू को छोड़ दे और मेरे साथ ब्याह कर ले; लेकिन यह मेरी एक नहीं सुनती। मैंने भी कुछ रुपया जोड़ लिया है और मैं इसको

आराम के साथ रखने को तैयार हूँ,लेकिन यह मेरी प्रार्थना को ठुकराती ही रहती है। आज तुम हम दोनों की पंचायत कर दो।'

शि०—'तो मुहँदेखी पंचायत चाहते हो या खरी, यह भी बता दो; क्योंकि जब मैं पंच बन कर बैठूँगा तब न तुम्हारी ऐसी कहूँगा और न रमदेइया ऐसी; अपनी बुद्धि अनुसार दूध और पानी अलग अलग कर दूँगा।'

रा०--'भाई चाहता तो मैं भी हूँ कि मुहँदेखी पंचायत न हो; लेकिन मेरा काला-कलूटा कुरूप चेहरा रमदेइया के सुघर चेहरे की बराबरी थोड़े ही कर सकता है।'

शि०—'ना भाई, अगर तुम्हारा मेरे ऊपर विश्वास न हो तो मुझसे पंचायत न कराओ। कंठी पहिन कर मैं संसारी बातों से अलग हो गया हूँ।'

रा०—अरे भाई, मैंने हँसी में यह बात कही। क्या मैं नहीं जानता कि स्त्री और लड़के के मर जाने पर तुम्हारा मन संसार से ऊब गया और तुम भगवान के सेवक हो गए। मैं यह भी जानता हूँ कि तुम्हारी स्त्री जैसी सुशील और सुन्दरता वाली थी वैसी हमारी कहार बिरादरी में तो क्या, ऊँचे घरानों में भी नहीं दिखायी पड़ती। उसकी बीमारी, मौत, तुम्हारी कंठी—ये सब बाते मुझे याद हैं और सालों के बाद भी ऐसा जान पड़ता है जैसे कल्ह ही ये घटनाएँ हुई हों। खैर, इन बातों को जाने दो; तुम अपनी ठीक ठीक राय हम लोगों को दे दो।'

शि०—'भाई रामकरन, जब रमदेइया का पति मौजूद है, तव वह उसे कैसे छोड़ सकती है? सुख में साथ रहने के बाद दुख में साथ छोड़ कर तुम्हारे साथ ब्याह कर ले तो क्या वह बदजात न कही जायगी? क्या स्त्री का यही धर्म्म है जो तुम कह रहे हो?'

रा०—'वाह, संसारी बातों में तुम धर्म्म का पचड़ा क्यों घुसेड़ देते हो ? धर्म्म से ब्याह-शादी का क्या सम्बन्ध ?'

शि० –'भाई मैं तो अपने देश की प्राचीन बात बतला रहा हूँ। उसके अनुसार स्त्री को अपने रोगी पति का अथवा पुरुष को अपनी रोगिणी स्त्री का साथ छोड़ना पाप है।'

रा०—'हमें रहना-सहना है आज के जमाने में और तुम न जाने कब का राग अलापने बैठे हो। नहीं जानते विलायत के मजूर किस तरह ब्याह करते और तोड़ते रहते हैं, वे जब चाहते हैं और जिस किसी से उनका मन पट जाता है उससे ही ब्याह कर लेते हैं; कपड़ों की तरह वहाँ के पति पत्नियाँ और पत्नियाँ पति बदलती रहती हैं।'

रमदेइया के होठों पर एक हलकी मुसकराहट आगयी; लेकिन वह अधिकांश में अपने काम में ही दत्त-चित्त रह कर दोनों की बातें सुनती रही।

शिवराम ने कहा—'भाई, पति-पत्नी में अगर दया-धर्म्म नहीं रह जायगा तो बताओ स्वार्थ की जिन्दगी में कौन सा रस बच रहेगा ? क्या फिर हम लोगों का जीवन राक्षसों का सा न हो जायगा ?'

रा०—'क्या हमारे डिप्टी साहब राक्षस हैं ? पचीसों बार उनके मुँह से मैंने इसी ढंग की बातें सुनी हैं। पहले मैं भी तुम्हारी ही तरह गोबर-गणेश था, लेकिन मालिक की, श्याम बाबू की, कमला बीबी की, चपला बीबी की बातें सुनते-सुनते मेरी समझ में आ गया कि संसार के सुख को त्यागना मूर्खता है। हमारे मालिक तो चाहते हैं कि ईसाइयों और मुसल्मानों की तरह तिलाक देने का रिवाज हम लोगों में भी जारी हो जाय।'

शि०—'ना भाई, ईश्वर न करे, किसी को ऐसे मालिक मिलें। मैं तो इनकी संगत में पड़ूँ तो बिना मौत मर जाऊँ।

अच्छा जाने दो इन बातों को। अब दाल उतार कर तवा चढ़ाओ, रमदेइया आटा माँड़ चुकी है।'

रा०—'भूख अधिक लगी है क्या ?'

शि०—'इसमें भी कोई सन्देह ?'

रमदेइया ने सिर उठाकर मुसकराते हुए कहा—'तुम्हें भी व्याह की भूख होती तो भोजन की भूख इतना न सताती।'

[१८]

कुमारी मारगरेट और मिस्टर सिंह को इलाहाबाद में ठहरे धीरे-धीरे दस दिन हो गये। मिस्टर सिंह को तो वहाँ एक दिन भी ठहरना पसन्द न था; क्योंकि उनके शेष जीवन की सारी सरसता और सफलता, उनकी समझ में, मारगरेट से मिलने वाले प्रेम ही पर अवलम्बित थी, और इलाहाबाद में इस प्रेम के बढ़ सकने की आशा नहीं थी; वे अच्छी तरह जानते थे कि जिस जगह शिवप्रसाद और श्यामकिशोर के साथ मारगरेट का अबाध सम्पर्क सम्भव हो सकेगा वहाँ उनकी हानि छोड़ लाभ नहीं। इस कारण वे हृदय से चाहते थे कि शीघ्र ही या तो नैनीताल चलें या बनारस ही लौट जाँय। अपनी इस इच्छा को उन्होंने मारगरेट पर प्रगट भी कर दिया। मारगरेट को भी इलाहाबाद में ठहरना अच्छा नहीं लग रहा था; लेकिन श्यामकिशोर और कमला आदि से जम कर बातचीत किये बिना वह अनेक कष्ट सह कर भी वहाँ से जाने को तैयार नहीं थी। लेकिन ज्यों ज्यों एक के बाद दूसरा दिन बीतता गया त्यों त्यों उसकी आकुलता भी बढ़ती गयी। दसवें दिन तो वह अपनी प्रति दिन की असफलता से तिलमिला उठी और कमला से बात करने का दृढ़ निश्चय कर के बड़े सबेरे ही उसके कमरे में पहुँच गयी। उस समय कमला गीता का पाठ कर रही थी।

कमला ने मारगरेट का स्वागत किया और आरामकुर्सी में बैठने का इशारा कर के मुसकराते हुए कहा—'आज इतने सवेरे कैसे कृपा की ?'

कुमारी मारगरेट ने उत्तर दिया—'बात यह है कि आठ दस दिन तो इस कारण रुक गयी कि बाबू दीनानाथ की तबियत सम्हली नहीं थी। सम्भवत; उनके स्वास्थ्य की मुझे विशेष चिन्ता नहीं होती, किन्तु पहली ही भेंट में उनकी बातचीत ने मुझे जिस प्रकार प्रभावित कर लिया उसके कारण यहाँ से जाने पर भी निश्चिन्त न हो सकती; इससे इतने दिन तो यहाँ रहने ही पड़े। मुझे यह खेद अवश्य है कि मैं उनकी सेवा में विशेषउपयोगी नहीं समझी गयी और मुझे कोई काम नहीं सौंपा गया; केवल दो दिन ही मैं उनके पास थोड़ा सा बैठ पायी। जो हो, अब तो मैं समझती हूँ, और शायद आपका भी यही ख्याल होगा, कि शीघ्र ही दीना बाबू स्वस्थ हो जायँगे। इसलिए आज हम लोग रात की गाड़ी से नैनीताल रवाना हो जायँगे। यही निवेदनकरने आयी हूँ कि दीना बाबू के पूरी तरह चंगे हो जाने पर आप लोग नैनीताल अवश्य आइएगा। मैं प्रति दिन प्रतीक्षा करती रहूँगी।'

कमला—'दो चार दिन और न रह जाइए, सब को पहाड़ चलने के लिए राजी करने का काम शायद आप मेरी अपेक्षा अधिक सफलतापूर्वक कर सकें।'

मार०—'मुझे तो रहने में कोई आपत्ति नहीं; लेकिन मिस्टर सिंह का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। कुल दो महीने की उन्होंने छुट्टी ली है, जिसमें १० १२ दिन तो बीत ही चुके। वे बहुत घबरा रहे हैं और मुझे इस बात की चिन्ता है कि कहीं वे अधिक अस्वस्थ होने पर उसकी जिम्मेदारी मेरे ऊपर न डाल दें।'

मारगरेट ने जान बूझ कर मिस्टर सिंह के सम्बन्ध में अपनी चिन्तित अवस्था का थोड़ा कृत्रिम परिचय दे दिया। किन्तु कमला की सूक्ष्म दृष्टि ने मारगरेट की इस बारीक चालाकी को पहचान लिया। फिर भी उसने मुसकराते हुए, काली आँखों की एक हृदयहारिणी कटाक्ष के साथ कहा—'ठीक ही है, मिस्टर सिंह की रखवाली तो तुम्हें करनी ही चाहिए। मिस्टर हेनरी को सूचना दे दी है या चुपचाप मिस्टर सिंह को भगाये लिये जा रही हो?'

मारगरेट ने इस परिहास से कुछ चिढ़ने का फिर एक बनावटी प्रयत्न किया; किन्तु उसके हृदय में तो सन्तोष ही था। क्या जाने क्यों वह जी से चाहती थी कि श्यामकिशोर के प्रति उसके आकर्षण का तनिक भी पता कमला को न लगे। कमला शायद उसके इस भाव को समझती थी; और, यद्यपि साधारणतया श्यामकिशोर की चर्चा पर आधारित दो एक हलके परिहासों में कोई हर्ज न था, फिर भी वह इसको उतना ही बचाती थी जितना मारगरेट चाहती थी और वह भी इस कौशल के साथ कि मारगरेट को उसके सम्बन्ध में तनिक भी सन्देह न हो।

मारगरेट ने कहा—'कमला, मिस्टर सिंह से तो मैं ऊब जाती हूँ। लगभग पचास वर्ष की उम्र होने आयी, फिर भी प्रेम का नशा ऐसा कि नवयुवकों और नवयुवतियों को वैसा क्या होगा! बाबू श्यामकिशोर की तो बात ही जाने दो, मैंने तो अध्यापक शिवप्रसाद में भी वह प्रेमोन्माद न देखा जिसके शिकार मिस्टर सिंह हैं। कमला! किसी दिन तुम्हें उनकी बातें सुनाने की इच्छा थी; लेकिन न तुम्हें अवकाश मिला और न मैं तुमसे कहने का साहस ही कर सकी; तुम्हारी गंभीरता के कारण मैं कई बार प्रयत्न करते करते हतोत्साह हो गयी।'

कमला के चेहरे पर कुछ गंभीरता आ गयी। वह बोली—'मुझे तुम गंभीर न समझो। अगर मैं चपला अथवा तुम्हारे ऐसा भाग्य लेकर उत्पन्न हुई होती तो शायद मेरे चेहरे पर भी तुम्हें प्रत्येक समय एक दूसरा ही भाव दिखाई देता। सब को मालूम है, और तुम्हें भी अवश्य ही मालूम होगा कि मैं एक अनाथ बालिका हूँ। अनाथ होना भी उतना बुरा न था जितना अब सनाथ होने पर एक सनक के कारण चित्त में इस चिन्ता का पैठ जाना कि मैं अम्मा और बाबू जी के ऋण से उद्धार किस तरह पाऊँगी! इसी चिन्ता ने मुझे गंभीर बना दिया है; वास्तव में मैं गंभीर नहीं हूँ।'

'तो इसके लिए तुमने कोई उपाय भी सोचा है?'—मारगरेट ने आँखों में अत्यन्त अधिक सहृदयता का भाव प्रगट करते हुए पूछा।

कमला बोली—'उपाय तो मैंने सोच लिया है; किन्तु मैं डरती हूँ, बाबू जी उसे पसन्द नहीं करेंगे।'

यदि कोई हर्ज न समझो तो मुझसे भी बतला दो; सम्भव है, मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकूँ'—मारगरेट ने कहा।

'मैं कुमारी रहकर शिक्षक रूप में समाज की सेवा करना चाहती हूँ; बाबू जी मुझे गृहस्थ-जीवन में फँसाना चाहते हैं। बहन, यदि तुम बाबू जी को किसी तरह समझा सको तो मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँगी'—कमला ने उत्तर दिया।

कमला के कुमारी रहने के निश्चय ने मारगरेट को प्रफुल्ल कर दिया। वह तो यही चाहती ही थी कि कमला उसकी राह का काँटा न बने। उसने आश्वासन देते हुए कहा—'यह कौन बड़ी बात है! अगर पढ़ी-लिखी लड़कियों को इतनी भी विचार-स्वतंत्रता नहीं दी गयी तो 'स्वतंत्र नारी-समाज' की स्थापना का उद्देश्य ही क्या रहा; यदि प्रधान संस्थापक बाबू रघुनाथ

प्रसाद ही अपनी लड़की को रूढ़ियों की गुलामी में सड़ाना चाहते हैं तो हो चुका !! तुम्हारा परीक्षा-फल प्रकाशित होने में तो अभी देर है; तब तक शायद तुम भी नैनीताल में आ ही जाओगी।'

क०—'परीक्षा-फल की तो इतनी चिन्ता नहीं; द्वितीय श्रेणी मिल ही जायगी। विद्यालय भी मुझे ढूँढ़ना नहीं है—लखनऊ के महिला-विद्यालय में, जिसके मन्त्री दीनाबाबू हैं, एक जगह निकल ही आवेगी।'

मा०—'तुम्हारे ऐसी पदाधिकारिणी को पाकर कोई भी संस्था गौरवमयी हो सकती है, एक महिला-विद्यालय की क्या कही।'

यह कह कर मारगरेट कुछ सोचने लगी। उसे यह समझने में देर न लगी कि कमला की इस योजना से स्वयं कमला को कोई लाभ हो या न हो, किन्तु उसका तो बहुत बड़ा हित है।

अपनी बात की लड़ी को फिर सँभालती हुई मारगरेट बोली—'यह कैसे हो सकता है कि बाबू जी चपला को तो पूरी स्वतंत्रता प्रदान करें और तुम्हें उससे वंचित रखे ? क्या शिवप्रसाद के साथ चपला के घनिष्ठ सम्बंध को देखकर उन्होंने तनिक भी आपत्ति की ? आपत्ति करना तो दूर, तुम्हें भी मालूम ही होगा, लगभग एक सप्ताह हुआ, उन्होंने शिवप्रसाद को एक पत्र में लिखा था कि वे शीघ्र ही चपला के साथ विवाह करने के लिए तैयार हो जायँ। यदि बाबू जी चपला के साथ इतने उदार हैं तो कोई कारण नहीं कि तुम्हारे साथ अनुदारता का व्यवहार कर सकें।

क०—'चपला-सम्बन्धी इस पत्र का मुझे ज्ञान नहीं। शिव-प्रसाद से तो मै बहुत ही कम सम्बन्ध रखती हूँ, यह तुम्हें भी

मालूम ही है; लेकिन चपला ने तो शिवप्रसाद से यह बात अवश्य ही जानी होगी। मुझे खेद है, उसने यह चर्चा मुझसे नहीं की।'

मा०—'मुझे तो शिवप्रसाद ही ने बतलाया। उन्होंने यह भी कहा कि विवाह करने के लिए तैयार न देखकर चपला मुझसे नाराज हो गयी है।'

क०—'भला, बहिन एक बात तो बताओ, चपला और शिवप्रसाद की घनिष्ठता में अब कौन सी कमी रह गयी है जो शिवप्रसाद विवाह करने के लिये तैयार नहीं होते ? तुम्हें तो यह मालूम ही होगा, इसी से पूछ रही हूँ।

मा० 'इसके दो कारण हैं—एक तो यह कि मिस्टर सिंह उनको ईसाई धर्म्म की विशेष शिक्षा के लिए अमरीका भेज रहे हैं; वहाँ से आचार्य्य पदवीधारी होकर उनके लौटने पर उन्हें सहज ही किसी मिशन कालेज में प्रिंसपल का पद मिल जायगा। दूसरी बात यह कि वे विवाह करना ही नहीं चाहते; वे सारा जीवन कुमार ही रहकर बिताना चाहते हैं'—

'और जितनी भी कुमारियां मिल सकें उनका जीवन नष्ट करना ही अपने जीवन का उद्देश्य बनाना चाहते हैं;बनारस के थियासोफिकल गर्ल्स कालेज की न जाने कितनी लड़कियों को उन्होंने विपथगामिनी बना दिया'—मारगरेट की बात समाप्त होने के पहले ही कमला के मुँह से ये शब्द अनियंत्रित भाव से निकल पड़े।

मारगरेट बोली—'कमला, हम लोगों के समाज में इस तरह के कुमारों और इसी ढंग की कुमारियों की भी संख्या अगणित है;इसलिए हमारे यहां यह बुरा नहींसमझा जाता। हां,हिन्दू समाज में कौमार व्रत के जो ऊँचे आदर्श प्रतिष्ठित किये गये हैं

और हिन्दुओं के दैनिक जीवन को प्रभावितकरते हैं उन्हें देखते हुए इस तरह के कुमारों के रहने से तो अव्यवस्था और अशान्ति ही फैलेगी।'

क०—'मुझे सन्तोष है, आप यह तो मानती हैं कि हिन्दू समाज के आदर्श ऊंचे हैं, भले ही परिस्थितियों के कारण उनका निर्वाह न हो पाता हो। मैं उस ढंगकी कुमारी नहीं होना चाहती जैसी आप लोगों में अधिकांश होती हैं और फिर भी यदि अपनी पसन्द का आदमी मिल गया तो मै विवाह करने में भी संकोच नहीं करूंगी।'

यह कहने के बाद कमला एक मिनट के लिए ठहर गयी और फिर हँसती हुई बोली—'लेकिन लाभ तो मिस-मेयो ही की तरह कुमारी होने में है; क्योंकि ऐसी स्त्रियों की निगाह अपने ऐबों पर तो नहीं जाती, हां औरों के ऐब उन्हें बड़े विशाल रूप में दिखायी पड़ते हैं। खैर। इस अप्रासंगिक बात को मैं यही समाप्त करती हूँ; चपला को स्वतन्त्रता मिली तो मुझे भी मिले, मैं यह भी नहीं कहती। मेरा तो नम्र निवेदन यह है कि मैं अपने को सफल बनाने के साधन प्राप्त करूँ। यदि तुम इसमें मेरी कुछ सहायता कर सको तो बहुत अच्छा हो; लेकिन जब नैनीताल के लिए कमर कस चुकी हो तो फिर क्या आशा करूं।'

मा०'नहीं, नहीं, आज दिन भर के भीतर मैं बाबू श्यामकिशोर और बाबू जी दोनों से बातें कर लूंगी। अभी तो शायद श्याम बाबू कहीं गये न होंगे।'

क०—'कुछ कहा नहीं जा सकता। अगर अस्पताल न गये होंगे तो अवश्य ही होंगे।'

मा०—'अच्छा, अब मुझे आज्ञा दो।

यह कह कर मारगरेट खड़ी हो गयी। कमला ने भी उसका अनुसरण किया। दरवाजे के पास आकर दोनों ने हाथ मिलाया। इसके बाद मारगरेट श्यामकिशोर की बैठक की ओर गयी। कमला फिर गीता के पन्ने उलटने लगी।

[१६]

श्यामकिशोर अस्पताल जाने के लिए रेशमी कपड़ों का एक सूट पहन कर बिलकुल तैयार हो चुके थे; ठीक उसी समय मारगरेट ने उनके कमरे में प्रवेश किया। स्वागत का समस्त बाहरी शिष्टाचार करने के अनन्तर उन्होंने एक हलकी मुसकराहट के साथ पूछा—'क्या कोई बहुत आवश्यक काम है? आज हम लोग दीना बाबू को अस्पताल से घर ले आने की बात सोच रहे हैं; यदि डाक्टरों ने स्वीकार कर लिया तो हम लोगों का बहुत सा परिश्रम तो बच ही जायगा साथ ही दीना बाबू को आराम भी अधिक मिल सकेगा। मुझे खेद है, समयाभाव से आप से मैं बहुत सी आवश्यक बातें नहीं कर सका; मुझे आपको यह सूचना भी देनी थी कि 'स्वतन्त्र-नारी-समाज' के सिद्धान्तों से मेरा तीव्र मतभेद हो रहा है और मैं उससे अलग हो जाना चाहता हूँ। मैं समझता हूँ कि कल मैं इस विषय पर विस्तृत बातचीत कर सकूँगा।'

'लेकिन आज रात की गाड़ी से मेरा जाना अनिवार्य्य है; मिस्टर सिंह अब किसी तरह ठहरने को तैयार नहीं हैं, और इसमें सन्देह नहीं कि मैं भी आप से विस्तृत बातचीत करना चाहती हूँ।'

यह कह कर मारगरेट एक कुर्सी में बैठ गयी।

श्या० 'अच्छी बात है, मैं कुछ देर में जाऊँगा। आप से मुझे यह कहना है कि मुझे 'स्वतंत्र-नारी-समाज' से मुक्त कर

दीजिए। यह मेरी दुर्बलता थी कि उसकी रचना के समय मैंने उसकी उपयोगिता के प्रति अपने सन्देहों को नही प्रकट किया'—आराम कुर्सी में बैठते हुए श्यामकिशोर ने कहा।

श्यामकिशोर की इन बातों से मारगरेट अस्त-व्यस्त हो रही थी; वह इनके लिए पहले से तैयार न थी। उसने उत्तर दिया—'आप के चित्त में यदि आरम्भ से ही शंका थी तो उसको मन में रखकर आप ने इस संस्था को बहुत अधिक क्षति पहुँचायी। अब भी आप का कर्त्तव्य है कि अपने सन्देहों को समाज के सदस्यों के सामने रखें और उसके विकृत रूप के संशोधन की चेष्टा करें, न कि उससे अलग हो जायें।'

श्या०—'समाज के अधिकांश सदस्यों में विलासिता के भाव हैं; समाज के द्वारा वे उन्हीं भावों की तृप्ति का प्रयत्न करना चाहते हैं।'

श्यामकिशोर का लक्ष्य मारगरेट की ओर रहा हो या न रहा हो, किन्तु मारगरेट ने मन ही मन अपने को इस दोष का दोषी मान लिया। उसने कहा—'समाज के अनेक सदस्य अविवाहित हैं, ऐसी अवस्था में यह सर्वथा अस्वाभाविक है भावों से रहित हो जायें। फिर भी मैं यह मानती हूँ कि समाज के सामने कोई उपयोगी कार्य्यक्रम नहीं है; यदि यह अभाव दूर हो जाय तो विलासिता की भावना का भी सदुपयोग हो सकता है।'

श्या०—'मैं तो चाहता हूँ कि देश के कोने कोने में हम लोग पहुँच कर अपने विकार-शून्य चित्त की शक्ति से अपने भाइयों और बहनों में नई स्फूर्त्ति भर दें, लेकिन मारगरेट, इस कार्य्यक्रम में भाग लेने के लिए अभी मैं स्वयं तैयार नहीं हूँ, क्योंकि महीने ही डेढ़ महीने के अवकाश के बाद मुझे वकालत के

द्वितीय वर्ष के लिए विशेष परिश्रम करना है। मैंने यही निश्चय कर लिया है कि 'स्वतन्त्र-नारी समाज' की बैठक में सम्मिलित होकर मैं कोई उपयोगी कार्य्य नहीं कर सकता; न खुल कर उसकी आलोचना ही करूँगा; क्योंकि फिर मेरे ऊपर उत्तरदायित्व आ जायगा, और उत्तरदायित्व से मैं बचना चाहता हूँ।'

'आप के रुख से तो मैं बहुत अधिक निराश हो रही हूँ; आप का पूर्ण सहयोग मिल सकेगा, इसी कारण मैंने मंत्रित्व स्वीकार कर लिया था। मैं भी हाथ बाँध के बैठ जाऊँगी'—मारगरेट ने उदास स्वर में कहा।

मारगरेट की दलीलों से कहीं अधिक प्रभाव उसके इस उदास स्वर में था। श्यामकिशोर पर उसका प्रभाव पड़ा। परन्तु कमला को सन्तुष्ट करने के लिए मारगरेट से पीछा छुड़ाना उसके लिए आवश्यक हो गया था; और, इस कारण उसने किसी भी ऐसे काम में न सम्मिलित होने का निश्चय कर लिया था जिसमें मारगरेट का बहुत अधिक सहयोग हो। किन्तु अपने इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह ऐसे ढंग से काम करना चाहता था कि उसके मनोभावों का मारगरेट को पता न चले। उसने कहा—'मारगरेट, आप व्यर्थ ही उदास हो रही हैं; वास्तव में यदि आप अपनी उन शक्तियों का अनुमान कर सकतीं जो आप में छिपी पड़ी हैं तो इतना निराश न होतीं। आप अँगरेज महिला हैं; आपके भाषणों का शिक्षित भारतीय महिलाओं पर काफी प्रभाव पड़ सकता है। सौभाग्य से आपके सामाजिक विचार सुधरे हुए हैं; ऐसी अवस्था में उनसे हमारे देश का कल्याण भी हो सकता है; क्यों नहीं एक भारत व्यापी दौरा करके भारतीय पुरुषों और स्त्रियों को अपना

सन्देश सुनातीं ? आप के लिए तो प्रसिद्धि और उपयोगिता का पथ परिष्कृत है।'

'मैं जानती हूँ कि मैं बहुत कुछ कर सकती हूँ;लेकिन यह भी सच है कि मैं आप के बिना कुछ नहीं कर सकती हूँ। बाबू श्यामकिशोर, मैं आप को प्यार करती हूँ'—ये शब्द मारगरेट के मुँह से अकस्मात निकल गये; स्वयं वह न समझ सकी कि किस शक्ति ने उसके हृदय के भीतर के भावों को जिह्वा पर बैठा दिया।

मारगरेट यहाँ तक आगे बढ़ चुकी है, श्यामकिशोर ने स्वप्न में भी इसकी कल्पना नहीं की थी; अब तो उन्हें अपनी आँखों के सामने एक बहुत बड़े संकट का समुद्र लहराता हुआ दिखायी पड़ा; वे हतबुद्धि से हो गये; यह शीघ्र निश्चय न कर सके कि मारगरेट को इसका क्या उत्तर देना चाहिए।

मारगरेट को स्वयं ही अपने शब्दों के लिए परिताप हो रहा था; उसकी अवस्था इस समय उस भिखारिन की सी थी जिसने अपने हाथ फैला दिये हों और दाता के देने में कुछ संकोच हो रहा हो। स्वाभिमानी के लिए यह अवस्था मृत्यु से कम कष्टप्रद नहीं है।

श्यामकिशोर बोले—'मैं जरा बाबू जी से कहता आऊँ कि मैं अस्पताल नहीं चल सकूँगा; वे मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे'—यह कह कर तुरन्त ही वे बाबू रघुनाथप्रसाद के कमरे की ओर चले गये।

रास्ते भर वे अपनी कठिनाइयों पर विचार करते रहे; इस समय उन्हें विशेष रूप से कमला की उन कल्पनाओं का स्मरण

आ रहा था जो उसने मारगरेट के सम्बन्ध में की थीं। अपनी असावधानी पर भी उन्हें कम पश्चात्ताप नहीं था।

शीघ्र ही वे अपने कमरे में लौट आये; मारगरेट पूर्ववत् उदास बैठी थी।

श्यामकिशोर ने कहा – 'मारगरेट, आपने अपने हृदय में इस प्रेम को स्थान देकर ठीक नहीं किया। यह आप ने कैसे समझ लिया कि मेरा हृदय पहले ही से किसी की प्रेम-वेदी पर समर्पित नहीं है? यदि मैं स्वयं ही किसी के प्रेम की प्यास से पीड़ित न होता और आप मुझे चाहतीं तो हम दोनों का जीवन बहुत आनन्दमय हो सकता, किन्तु वर्त्तमान परिस्थिति में मुझे भय है कि तीन व्यक्तियों का जीवन दुखमय हो जायगा।'

'क्या मैं जान सकती हूँ कि आप के प्रेम की पात्री कौन सी सौभाग्यशालिनी नारी है?' मारगरेट ने निशाना चूक जाने वाले शिकारी की सी लाचारी के साथ पूछा।

श्यामकिशोर ने उत्तर दिया 'आपको उससे कुछ लाभ नहीं होगा, नहीं तो मुझे बता देने में कोई आपत्ति न होती।'

वास्तव में मारगरेट को यह नाम सुनने की आवश्यकता नहीं थी; वह पहले ही से जानती थी कि कमला श्यामकिशोर के प्रेम की अधिकारिणी है। किन्तु वह सहज ही निराश होने वाली युवती नहीं थी और उसने उसी समय यह संकल्प किया कि यदि मैं अपने बाप की सच्ची लड़की हूँ तो न केवल कमला को अपनी उद्देश्य-सिद्धि के पथ में से निकाल बाहर करूँगी, बल्कि तुम्हें भी ऐसा विवश कर दूँगी कि मेरे सामने घुटने टेक कर तुम मुझसे प्रणय की भिक्षा माँगोगे। कुछ देर तक मौन रह कर वह बोली—'आप का यह कहना सही है कि एक व्यक्ति दो व्यक्तियों से एक ही समय में एक सा अनुराग नहीं

कर सकता। मुझे आप के हृदय की इस स्थिति का पता न था। इसी कारण इस पथ पर मैंने भटक कर पाँव रख दिया है; किन्तु बहते पानी की तरह प्रेम को वापिस ले जाना कठिन काम है। इसे तो शायद आप भी स्वीकार करें। हाँ, इतना तो मैं आप को आश्वासन देती हूँ कि मेरी ओर से कभी आप को कोई असुविधा नहीं होगी। 'स्वतंत्र-नारी-समाज' की स्थिति का भी आज निपटारा हो गया, यह भी अच्छा ही हुआ; किसी भी सभा की दो एक बैठकें हो जाना भी क्या कम है!

श्या०—'कुमारी मारगरेट, 'स्वतंत्र-नारी-समाज' की स्थापना में हम लोगों ने बड़ी भूल की; हमने यह नहीं सोचा कि इस संस्था का निर्माण हम अपने लिए कर रहे हैं या जनता के लिए, जिससे क्रमश। उसका स्वरूप ऐसा ही हो गया जैसा क्लब का होता है, और उसके आरम्भ से ही हम ने उससे जी बहलाना शुरू कर दिया। मिस्टर सिंह का प्रेम तुम्हारे साथ, तुम्हारा प्रेम मेरे साथ, चपला का प्रेम शिवप्रसाद के साथ—यह सब क्या है? जो संस्था भारतवर्ष ऐसे धार्मिक देश में स्त्रियों की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में नवीन आदर्श उपस्थित करना चाहती है वह यदि इतनी प्रेम-घटनाएँ अपनी पीठ पर लाद ले तो उस शिशु का दम टूटते कितनी देर लगेगी? वही हो रहा है मारगरेट, यह संस्था तो अब समाप्त हो गयी और यदि इसकी आसक्ति में हम पड़ेंगे तो हम भी समाप्त हो जायँगे।'

कुमारी मारगरेट अब तक प्रायः अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ गयी थी, अपने पतले रेशमी रूमाल से अरुण वर्ण चेहरे पर गिर आयी हुई सुनहली अलकों को

सँभालने के बाद उसने एक बार उसी से सारा मुँह और गला पोंछ लिया और तब कुर्सी की एक भुजा पर कुहनी टेककर तथा रूमाल-सहित हथेली पर ठुड्डी को बैठाकर एक मधुर मुसकुराहट के साथ कहा—'किशोर बाबू, इस शिशु-संस्था की पीठ पर आपने तीन ही प्रेम-घटनाएँ क्यों लादीं ? क्या इसका अर्थ मैं यह समझूँ कि जिस चौथी प्रेम-घटना की चर्चा आपने नहीं की वह इतनी सुकुमार है कि उसका कुछ भार ही नहीं हो सकता; या आप मुझे यह समझाना चाहते हैं कि आप की प्रेम-घटना का सम्बन्ध समाज से नहीं है; यह तो आप इनकार नहीं कर सकते कि आप अभी उसके सदस्य हैं। इसके सिवा मेरा तो यह भी कहना है कि जिसे आपने अपना प्यार दिया है वह भी समाज की सदस्या है, और यदि धृष्टता क्षमा करें तो मैं उसका...'

इतना कहने के बाद मारगरेट को एकाएक रुकते हुए देखकर श्यामकिशोर ने उत्साहजनक ढंग से कहा—'हाँ, हाँ, रुक क्यों गयीं मारगरेट, अपना वाक्य तो पूरा करिए। यहाँ हम लोगों की बातों को कोई तीसरा आदमी नहीं सुन रहा है; इसलिए आप बेखटके अपने मन की बात कह डालिए।'

मा०—'मैं यही कहना चाहती थी कि अपनी बात की सत्यता प्रमाणित करने के लिए मैं उसका नाम भी बता सकती हूँ।'

श्यामकिशोर के होठों पर मुसकराहट आ गयी। उन्होंने कहा—'मैं आप के मुख से यह नाम सुनने के लिए उत्कंठित हो रहा हूँ।'

मारगरेट ने कहा—'वह आप ही के घर में इस समय मौजूद है और उसका नाम है कमला। सच बताइएगा, मैंने गलत तो नहीं कहा ?'

श्या०—'नहीं मिस मारगरेट,आपने गलत नहीं कहा। आप के स्नेह-भाव को देख कर मुझे इस बात की चिन्ता भी नहीं है कि आपने हम दोनों के भावों को समझ लिया। क्या मैं आपसे आशा करूँ कि इस प्रेम को सफलता प्रदान करने के लिए कुछ उद्योग आप भी करेंगी? मेरे सुख को अपना सुख मानकर क्या आप कुछ स्वार्थ-त्याग कर सकेंगी? बुद्धिमानों का कहना है कि वह प्रेम प्रेम ही नहीं जिसमें त्याग न हो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे प्रति आपका प्रेम वैसा नहीं है।'

मारगरेट के चेहरे पर एक गम्भीर आभा फैल गयी, जिसमें उसका अनुपम लावण्य निखर सा उठा। खिड़कियों से होकर आनेवाली प्रभात-पवन ने उसके सुनहले बालों के साथ खिलवाड़ करके इस सौन्दर्य को और भी बढ़ा दिया। वह बोली—'मैं आपको चाहती हूँ; इसलिए मैं तो यह अवश्य ही चाहूँगी कि आप सुखी हों और इसी भाव से आप को यह बता रही हूँ कि आप कमला देवी के साथ प्रेम करके सुखी नहीं हो सकेंगे।'

श्या०—'क्या आपका खयाल है कि मैं कमला के साथ विवाह नहीं कर सकूँगा?'

मा०—'नहीं,आप तो आज भी उसके साथ विवाह कर सकते हैं; वास्तव में वे आपके साथ विवाह नहीं कर सकेंगी।'

श्या०—'यह आपको कैसे मालूम? क्या कमला को मुझसे प्रेम नहीं है?'

मा०—'नहीं, प्रेम तो है, किन्तु साहस नहीं है।'

श्या०—'साहस किस बात के लिए?'

मा०—'बाबू जी और अम्मा के मत की बिल्कुल परवा न करते हुए आप से तुरन्त विवाह कर लेने के लिए। उनमें कृतज्ञता का भाव इतना अधिक है कि इस साहस को वे अपने हृदय

में स्थान नहीं दे सकतीं। उनका सरल स्वभाव उस ऊँची श्रेणी का है जिसे प्रायः सांसारिक सफलता नहीं प्राप्त होती। मुझे भय है; साधारणतया बाबू जी और अम्मा जी आप दोनों को विवाह की अनुमति नहीं देंगी, और, इस अनुमति के बिना कमला देवी आपके साथ विवाह नहीं कर सकेंगी।'

श्या०—'यह बात तो सही है; कमला की यह भीरुता शोचनीय तो है। लेकिन मैं क्या करूँ, कमला अपनी इस भीरुता को इतना अधिक प्यार करती है कि वह मेरे भी स्नेह की वस्तु हो गयी है। यह तो आपको मानना ही पड़ेगा, मारगरेट, कि कमला कोई साधारण युवती नहीं है। प्रकृति ने जैसे उसे शारीरिक रूप और सौन्दर्य्य दिया है, वैसे ही उसके हृदय को भी बहुमूल्य सुकुमार तत्वों से बनाया है।'

ईर्ष्या-भार से दबे जाते हुए हृदय को सँभालने की चेष्टा करते हुए मारगरेट ने कहा—'इसमें तो कोई सन्देह नहीं।' इसके बाद कुछ देर तक वह मौन रही; फिर बोली—'हाँ, तो आप इस सम्बन्ध में मुझसे कौन सी सहायता चाहते हैं?' यह कह कर उसने अपनी नीली आँखें श्यामकिशोर के प्रफुल्ल चेहरे पर गड़ा दीं।'

श्या०—'बाबू जी और अम्मा जी को परिस्थिति समझा कर आप उन्हें हम दोनों के विवाह के अनुकूल बना सकती हैं, साथ ही कमला को भी अधिक व्यवहारिक होने की शिक्षा दे सकती हैं, इन कामों में से एक भी मैं नहीं कर सकता।'

मा० 'बाबू जी से तो मैं आज ही मिल लूँगी; हो सकेगा तो अम्मा जी से भी बातें करूँगी; रहीं स्वयं कमला, सो उनसे पत्र व्यवहार करूँगी।'

यह कहकर मारगरेट कुर्सी पर से उठ पड़ी; श्यामकिशोर भी आरामकुर्सी से उठे। हाथ मिला कर तथा पत्रों द्वारा कष्ट

देते रहने की सूचना देकर मारगरेट विदा हुई। उसके जाने के बाद श्यामकिशोर बड़ी देर तक मन ही मन मारगरेट और कमला के सौन्दर्य्य की आलोचना करते रहे। जिस त्याग-भाव के साथ मारगरेट ने सहायता का वचन दिया था उसने श्याम-किशोर को आकृष्ट तो कर लिया था, लेकिन अभी वे उसकी सच्चाई की परीक्षा करना चाहते थे; कठोर परीक्षा में मारगरेट के उत्तीर्ण होने पर ही यह गम्भीर युवक उस पर विश्वास कर सकता था।

घड़ी में ७½ बज गये थे; दो-तीन आवश्यक पत्र लिख लेने के बाद साइकिल पर बैठकर श्यामकिशोर अस्पताल को रवाना हो गये।

[२०]

दीनानाथ को अस्पताल पहुँचे आज बारहवाँ दिन था। धीरे-धीरे उनकी चोट सँभल गयी थी; दर्द बहुत कम हो गया थ; और दुर्बलता भी जाने लगी थी। आज लगभग सात बजे बाबू रघुनाथ प्रसाद आये; उनके साथ करुणा देवी, गायत्री देवी, दीनानाथ का छोटा सा बच्चा और शिवराम की बदली के लिए रामकरन आदि थे; शिवराम रात को दीनानाथ के पास ही सोता था। बाबू रघुनाथप्रसाद थोड़ी देर तक दीनानाथ के कमरे में ठहरे और उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में बहुत सी बातें पूछते रहे। इसके बाद वे डाक्टर के पास चले गये।

लगभग आठ बजे रघुनाथप्रसाद लौटकर आये और एक कुर्सी पर बैठकर बोले—'दीना बाबू, कल आपको यहाँ से मुक्ति मिल जायगी।'

करुणा देवी यह सुन कर विशेष प्रसन्न हुईं; लखनऊ जाने के लिए उनका जी फूल रहा था। इसके अनेक कारणों में से एक यह भी था कि उनके लगभग दो महीने के नन्हें पौत्र कृष्ण-

कुमार की—जो इस समय उनकी गोद ही में था—तबीयत यहाँ अच्छी नहीं रहती थी।

दीनानाथ ने पूछा—'फिर, आप के यहाँ से कब मुक्ति होगी?'

रघुनाथप्रसाद ने हँस कर कहा—'मेरे यहाँ तो आप के लिए मुक्ति नहीं बन्धन प्रतीक्षा कर रहा है।'

दी०—'फिर भी मुझे लखनऊ जाने के लायक कब तक बना दीजिएगा?'

र०—'यह तो गायत्री देवी से पूछिए।'

दीनानाथ मुसकरा कर चुप हो रहे।

इस समय रघुनाथप्रसाद को उस पत्र की याद आयी जो दीनानाथ ने उन्हें दो मास पहले लिखा था। किन्तु उसके सम्बन्ध में कुछ न कह कर उसे भूली बात बना देना ही उन्होंने अच्छा समझा। उनके मुख का भाव इस समय गंभीर हो गया था। लगभग आठ दस मिनट और बैठ कर वे बंगले को वापिस चले गये।

उनके चले जाने के बाद गायत्री देवी ने बिजली के टेबुल-फैन को चला दिया। कमरे में हवा का खूब संचार होगया, और उसके मन्द मन्द झोंके दीनानाथ के कुर्ते के साथ खिलवाड़ करने लगे।

गायत्री देवी के अपनी जगह पर बैठ जाने के बाद करुणा देवी ने कहा—'बेटी, गायत्री हम लोगों को कब छुट्टी दे दोगी? डिप्टी साहब ने हमें तुम्हारा ही कैदी बना दिया है।

गायत्री देवी और करुणा देवी की अवस्था में यद्यपि केवल दस वर्ष का अन्तर था; फिर भी, दोनों के स्वास्थ्य में अवश्य ही अन्तर था; करुणा देवी लगभग साठ वर्ष की होकर भी कम से कम पैंसठ वर्ष की जान पड़ती थीं, इसके

विपरीत गायत्री देवी लगभग पचास वर्ष की होने पर भी चालीस से अधिक की नहीं दिखती थीं। करुणा देवी के साँवले चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी थी; गायत्री देवी के गोरे मुख पर से अभी यौवन का लावण्य बिल्कुल नहीं चला गया था।

गायत्री देवी ने मुस्कराते हुए कहा—इस कैद से जल्दी छुटकारा मिलना मुश्किल है। बेटे के अपराध के कारण माँ भी बन्धन में पड़ी ही रहेंगी, गेहूँ के साथ घुन भी पीसा ही जाता है।'

खड़ी होकर बच्चे को सुलाने के उद्देश्य से दुलारते हुए करुणा देवी ने कहा—'बेटा, कम से कम मुझे तो छुट्टी दे देना; रहे बच्चा, सो इनको जब तक चाहो अपना बन्दी बनाये रक्खो। आखिर बच्चा का कुछ अपराध तो सुनूँ बेटी।'

गा०—माँ जी, जरा इनसे पूछिए तो कि वर्षों से इन्होंने हम लोगों से बिल्कुल सम्बन्ध ही क्यों तोड़ दिया है।'

दीनानाथ को इस समय उस पत्र की याद आ गयी जिसका उत्तर डिप्टी साहब ने नहीं दिया था। उसकी चर्चा करने से तो उन्होंने अपने आप को रोका, फिर भी एक ठण्डी साँस भर कर कहा—'देवी जी, यह एक लम्बी कहानी है। इसे सुनने से कुछ लाभ की आशा हो तो सुनिए। थोड़े में यदि कहना हो तो मैं यही कहूँगा कि जब मेरा सुख का सपना टूट गया तब हृदय के अधिक संतप्त होने के डर से मैंने आना छोड़ दिया। शायद आप यह पूछेंगी कि वह सुख का सपना क्या था और किस प्रकार भंग हुआ ?'

दीनानाथ इतना कह कर गायत्री देवी की ओर देखने लगे, शायद यह जानने के आशय से कि आगे बढ़ूँ या नहीं।

गायत्री देवी ने कहा, 'रुकते क्यों हैं, कहिए, कहिए। मै बहुत उत्कण्ठित हो रही हूँ।'

दीनानाथ बोले—'मेरे सुख का सपना चपला का भोलापन था। और वह शिवप्रसाद के कुसंग से नष्ट हो गया। लड़कपन में वह चञ्चल होने पर भी सरल थी। ज्यों ज्यों वह बड़ी होती गई त्यों त्यों शिवप्रसाद के सम्पर्क के कारण चंचलता के साथ साथ शौकीनी की भी आदी हो गई। मैंने अनेक बार डिप्टी साहब से कहा; लेकिन उन्हें तो शायद यह आशा थी कि निकट भविष्य में हम शिवप्रसाद को आर्य्य-समाज में ले लेंगे। इस मृगतृष्णा के पीछे पड़कर उन्होंने अपनी कितनी हानि की, इसे संभवतः वे अब भी नहीं समझते और उन दिनों आपसे बातें करने का सौभाग्य नहीं था।'

गा०—'किन्तु, इस कारण तो आप को और भी आते-जाते रहना चाहिए था। आप को चपला पर पूरी निगरानी रखनी चाहिए थी। यदि वह अपनी मर्य्यादा का उल्लंघन कर जाती तो आप डिप्टी साहब का और मेरा भी ध्यान आकर्षित कर सकते थे। यदि चपला में इस समय कोई दोष है तो उसके आरम्भकाल ही में मुझे इत्तिला न देकर आप ने बहुत बड़ी त्रुटि की है, जो अक्षम्य है। परन्तु, मैं तो समझती हूँ कि उसमें कोई बहुत बड़ा दोष नहीं आया।'

दी०—'सुनिए, बहुत बड़ा दोष अपने माथे में दो सींगें लगाये हुए नहीं दिखायी पड़ता। भावों में अदल-बदल हो जाना, विचारों के रुख का पलट जाना कोई साधारण बात नहीं है। मैं यह जानता हूँ कि यदि किसी अमीर घरकी दुलारी सन्तान में विलासिता के भाव आ जायँ तो उसके माता-पिता को कोई खास अन्तर नहीं मालूम होगा। परन्तु, मैं तो बाहरी था, मेरा

तो अस्तित्व ही आदर-भाव पर निर्भर था। जब मेरी उचित से अधिक उपेक्षा की गयी, जब चपला की दृष्टि में मैं एक तमाशा सा प्रतीत होने लगा तब अपने भीतर के स्नेह को दबा कर, कलेजा कूट कर मुझे यहाँ कम आने की नीति ही का अवलम्बन करना पड़ा। निस्सन्देह, यह मेरे हृदय की दुर्बलता है और इसके लिए आज मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ।'

गा०—'खैर, अब बताइए कि चपला के सुधरने का कौन रास्ता है? रास्ता है भी या नहीं? मुझे भी संदेह हो रहा है कि अवश्य ही उसके विचारों में कुछ परिवर्तन हो गया है।'

दी०—'किसी अच्छे समझदार आदमी के साथ उसका विवाह कर दीजिए। वही उसे सुधार लेगा।'

गा०—'उसे आप के सिवा कोई दूसरा नहीं सुधार सकेगा। अस्तु। कृष्णकुमार के पालन-पोषण की दृष्टि से तो आप को विवाह करना ही पड़ेगा। माता जी से मैंने बातें चलायी तो उन्होंने कहा कि विवाह तो भैया को करना ही पड़ेगा। उस दिन उन्होंने आप के सामने भी तो कहा था।'

दी०—'माता की आज्ञा का पालन करना तो मेरा कर्तव्य है, परन्तु मैं जानता हूँ कि मेरी माँ करुणामयी हैं और विशेष कर अपने पुत्र को कष्ट में डालना नहीं पसन्द करेंगी।'

इतनी बातें हो जाने पर भी दीनानाथ ने गायत्री देवी के हृदय के भावों को नहीं समझा। चपला के साथ दीनानाथ का विवाह हो—इस प्रकार का प्रस्ताव भी कोई कर सकता है अथवा ऐसा विचार भी किसी के हृदय में उदित हो सकता है, यह दीनानाथ की कल्पना से बहुत दूर था। परन्तु स्पष्ट इनकार की आशंका से गायत्री देवी बहुत अधिक नहीं खुल सकीं। वे मौन होकर कुछ सोच रही थीं कि अकस्मात् ताँगे पर से उतर कर चपला उनके पास आ गयी। आज बहुत दिनों के बाद दीनानाथ

ने चपला को देखने का अवसर पाया था। उसके अचानक आने से न केवल उन्हें, बल्कि गायत्री और करुणादेवी को भी आश्चर्य हुआ। जिस चपला को उन्होंने वचपन में प्यार किया था, और जो उन्हें भी वहुत ही अधिक चाहती थी वह अब उनसे कितनी दूर हो गयी है, इस विपरीत स्थिति का अनुभव करके उन्हें वहुत कष्ट हुआ। यदि वह थोड़ी देर भी पास वैठ गयी होती, अधिक न सही, दीनानाथ की तवीयत के बारे में उनसे दो चार बातें ही उसने कर ली होतीं तो दीनानाथ को सन्तोष हो जाता। किन्तु उन्होंने देखा कि एक निर्दय उपेक्षा का वार करती हुई वह वहाँ से ऐसे चली गयी जैसे उसका उस परिस्थिति से कोई सम्पर्क ही न हो। उसका उतने शीघ्र ताँगे पर वैठकर चला जाना दीनानाथ को ऐसा अखरा मानो किसी ने उनके कलेजे पर सौ मन का वोझ रख दिया हो। एक ठण्डी साँस भरकर उन्होंने दूसरी ओर करवट ले ली। गायत्री देवी को चपला का अनौचित्य विदित हो गया। करुणादेवी को भी चपला का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा।

[२१]

श्यामकिशोर के पास से जाते ही कुमारी मारगरेट चिन्ता में डूब गयी। पिछले वसन्त में उसने पच्चीसवाँ वर्ष समाप्त कर के छब्वीसवे में पदार्पण किया था। अभी तक उसका जीवन अल्हड़पन का जीवन था; अपने यौवन और रूप-लावण्य के द्वारा उसने भले ही औरों को आहत किया हो, किन्तु स्वयं आहत होना उसने जाना ही नहीं था। कुछ लोगों का कहना है कि नयनों के वाण से घायल होने वाले का मर्ज वड़ा वेढव होता है। निस्सन्देह, शरीरिक यौवन और लावण्य में एक मादक आकर्षण है, और श्यामकिशोर के सुगठित शरीर में इसका अभाव नहीं था। फिर भी शारीरिक सौन्दर्य्य में ऐसी

आकर्षण-शक्ति नहीं है कि उसका निवारण न किया जा सके। किन्तु इस शारीरिक मनोहरता का अधिकारी जब मानसिक लावण्य की विभूति से भी सम्पन्न होता है तब अवश्य ही उसका आकर्षण प्रबल हो उठता है और सब से अधिक बेबसी तब हो जाती है जब किसी व्यक्ति के दर्शन से हममें अपने किसी चिर-परिचित किन्तु विस्मृत प्रेमपात्र के प्रति प्रगाढ़ प्रणय की स्मृति उद्दीप्त होती है। यह स्मृति असौन्दर्य में भी सौन्दर्य की स्थापना कर देती है; फिर जहाँ सौन्दर्य का बाहुल्य हो वहाँ का क्या कहना! यह स्मृति मनुष्य को मनुष्य से और जीव को जीव से इस प्रकार सम्बद्ध करती है जैसे ग्वालिन दूध और पानी को; देश और जाति के बन्धनों को तोड़ कर यही स्मृति विश्व के जीवन की विषमता का हरण तथा उसमें समता का संचार करती है। मारगरेट श्यामकिशोर को देखने के बाद से इसी अनिवारणीय स्मृति से पीड़ित हो रही थी। यह पीड़ा जीवन का सौन्दर्य्य, सार और सर्वस्व है; इस वेदना की अधिकारिणी होने पर प्राणों की बाजी लगा कर श्यामकिशोर को प्राप्त करने की चेष्टा करना मारगरेट के लिए सर्वथा स्वाभाविक था।

मारगरेट क्रूर-हृदय नहीं थी, कहा जा सकता है कि वह एक सहृदय कुमारी थी; किन्तु उसके दुर्भाग्य से उसका प्रेम-पथ काँटों से इतना भरा हुआ था कि सौजन्य का आश्रय लेने से वह अपने प्रेम-पात्र को नहीं पा सकती थी। निस्सन्देह, मारगरेट के हृदय में त्याग की मात्रा विशेष नहीं थी, नहीं तो शायद उसके लिए यह सौजन्य भी सम्भव हो जाता। जो हो, उसने उचित और अनुचित सभी तरह के उपायों का सहारा लेने का निश्चय किया।

जिस समय मारगरेट अपने कमरे में पहुँची मिस्टर सिंह आरामकुर्सी में पड़े हुए उस दिन का अँगरेजी दैनिक पत्र पढ़ रहे थे। उसे आते देखते ही पत्र को अलग रख कर उन्होंने कहा—'इतने सवेरे तुम कहाँ चली गयी थीं ?'

मा० 'बाबू श्यामकिशोर से कुछ बातें करनी थीं।'

मि० सि०—'क्या मैं भी उन्हें जान सकता हूँ ?'

मा०—'यदि ऐसा होता तो मुझे बताने में कोई आपत्ति न हो सकती।'

मि० सिं०—'क्या कोई बहुत छिपी हुई बात है, जिसे बताने में तुम्हें शरम लगती है ?'

मा०—'इस सम्बन्ध में मैं आप से कुछ बातचीत नहीं करना चाहती; वैसे अपने मन से आप चाहें जो अनुमान कर सकते हैं।'

मि० सिं०—'मैं समझ रहा हूँ मारगरेट, प्रेम-काण्ड के सिवा ऐसी कोई बात नहीं हो सकती जो तुम्हें इतने दिन से यहाँ रोक रही है।'

'वही सही। मान लिया कि आपका कहना ठीक ही हो तो क्या बाबू श्यामकिशोर को प्यार करना कोई अपराध है ? आज से आप यही समझ लीजिए कि मैं उन्हें प्यार करती हूँ'—मिस्टर सिंह के ठीक सामने एक कुर्सी पर बैठते हुए मारगरेट ने उत्तर दिया; ये यदि और बढ़ें तो इन्हें अच्छी तरह फटकारूँ, इसका भी उसने मन ही मन निश्चय कर लिया।

मिस्टर सिंह ने देखा कि इस समय यह चर्चा छेड़ने से मारगरेट उत्तरोत्तर उत्तेजित होती चली जायगी; इसलिए, उन्होंने बात का रुख पलटते हुए कहा—'बाबू श्यामकिशोर को

प्यार करने से तुम्हें रोकने वाला मैं कौन हूँ; हाँ, घबराता हूँ इसलिए कि कहीं छुट्टी यहीं बीत जाय; यहाँ की भयानक गरमी मेरा स्वास्थ्य बहुत बिगाड़ देगी। देखो, अभी प्रायः सवेरा ही है; लेकिन, धूप में कितनी कठोरता आ गयी है।'

मारगरेट ने नम्रता धारण करते हुए कहा—'मुझे स्वयं बड़ी चिन्ता है कि नैनीताल के लिए शीघ्र चल दूँ; लेकिन, चपला और कमला की विवाह-सम्बन्धी कुछ बातें ऐसी हैं कि उन्हें यहाँ से जाने के पहले ही कर लेना आवश्यक है। यदि आज नहीं तो कल रात की गाड़ी से तो मैं अवश्य ही चल सकूँगी। 'स्वतन्त्र-नारी-समाज' की संप्राणी होने के कारण कुछ समय तो मुझे उसको देना ही पड़ता । यदि बाबू दीनानाथ को चोट न लगी होती तो उसकी एक बैठक करने के बाद मैं नैनीताल चलती।'

जब बूढ़े युवकों के साथ युवतियों के प्रेम के लिए प्रतिद्वन्द्विता करते हैं तब उन्हें प्रायः असफल होने की आशंका रहा करती है, जिससे उनके स्वभाव में सन्देहशीलता का संचार हो जाता है। मिस्टर सिंह ने भी समझ लिया कि 'स्वतन्त्र-नारी-समाज' ही के कारण श्यामकिशोर और शिवप्रसाद के साथ मारगरेट की घनिष्ठता बढ़ रही है; अतएव, अपनी सफलता के लिए उन्होंने 'स्वतन्त्र-नारी-समाज' का टूटना ही अच्छा सोचा। बोले 'मारगरेट, यहाँ सार्वजनिक पत्रों ने इस संस्था की बड़ी कड़ी आलोचना की है। भारतवर्ष बहुत पिछड़ा हुआ देश है; यहाँ ऐसी संस्थाएँ लोकप्रिय नहीं हो सकतीं जिनमें स्त्री की स्वतन्त्रता का राग अलापा जाता है। ऐसी अवस्था में जो असम्भव है उसके लिए व्यर्थ ही सिर टकराने में मैं तो कोई लाभ नहीं देखता। हाँ, क्या मैं पूछ सकता हूँ कि कमला और

चपला का विवाह तय करने में तुम क्या भाग ले रही हो ? शायद मैं कोई काम की बात बता सकूँ ।'

मा०- 'चपला का विवाह बाबू रघुनाथप्रसाद मिस्टर शिव प्रसाद के साथ करना चाहते हैं।'

मि० सिं०—'तो इसमें तुम्हारी क्या राय है ?'

मा०—'मेरी राय का कोई महत्त्व नहीं, आप बतलाइए कि आपकी क्या राय है ? आप तो उन्हें अमरीका भेज रहे हैं।'

मि० सिं०—'अमरीका तो वे व्याह करके भी जा सकते हैं; मेरे अमरीका भेजने से इस विवाह के होने अथवा न होने का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। लेकिन तुमसे कुछ भी जानने के पहले मैं बता सकता हूँ कि मिस्टर शिवप्रसाद विवाह नहीं करेंगे। मैं ठीक कह रहा हूँ या गलत ?'

मा०—'मुझे भी क्या मालूम ? पर आपके इस अनुभव का क्या कारण है ?'

मि० सि०—'मृणालिनी देवी के मर जाने के बाद से वे विवाह ही के विरोधी हो गये हैं; वे कुमार रह कर अपना जीवन बिताना चाहते हैं।'

मा०—'ठीक है; जब हिन्दुओं के भीष्म-पितामह की तरह कुमार नहीं रहना है तो सचमुच ही विवाह की क्या आवश्यकता है; मेरा तो यह मत है कि हमारे पाश्चात्य देशों में विवाह अनावश्यक है और रूस ने उसकी हत्या करके साहस का परिचय दिया है।'

मि० सिं०—'जब तुम हिन्दुओं की तारीफ करती हो तब मुझे चिढ़ मालूम होती है। यह भी कोई विवाह है कि माँग में सिंदूर डाल दिया तो जन्म भर के लिए औरत के मालिक बन गये; चाहे उसको भूखों रक्खें, चाहे मार डालें।'

मा०—'मिस्टर सिंह, क्षमा कीजिएगा, हिन्दुओं के विवाह का आध्यात्मिक महत्त्व आपकी समझ में इसलिए नहीं आ सकता कि आपके हृदय में हिन्दुओं के प्रति द्वेष है। हिन्दुओं की सामाजिक स्थिति की चर्चा न चलाइए। सदियों की पराधीनता ने उनकी ऊँची वृत्तियों को संकुचित कर दिया है; किन्तु यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि आध्यात्मिक क्षेत्र में जितना अनुसन्धान और उद्योग उन्होंने किया है उतना संसार की कोई भी जाति नहीं कर सकी है। हम लोग ईसाई मजहबपर फूलेनहीं समाते; किन्तु क्या वह बौद्ध धर्म्म का एक रूपान्तर मात्र नहीं है?—वह बौद्ध धर्म्म जिसका प्रचारक एक हिन्दू ही था। खैर, इन बातों को जाने दीजिए; आपकी इस बात से मैं भी सहमत हूँ कि मिस्टर शिवप्रसाद कुमार ही का जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। कठिनाई तो यह है कि चपला जीवन भर कुमारी नहीं रह सकेगी।'

मि० सिं० 'क्यों उसमें क्या कठिनाई है?'

मा०—'आप उस कठिनाई को नहीं समझ सकते। हिन्दू समाज का नैतिक आदर्श अब भी ऊँचा है; हिन्दुओं में कुछ जड़ता भले ही बढ़ गयी हो; किन्तु, अब भी उनमें अन्य जातियों से अधिक ईश्वर-भीरुता, धर्म्म-भीरुता शेष है और उसके कारण वे पेशेवर कुमारों और कुमारियों के उस अपवित्र जीवन को अश्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं जिसकी हमारे यहाँ कोई अप्रतिष्ठा नहीं है। मैं तो 'मिस' कहलाने में लज्जा का अनुभव करती हूँ।'

मि० सि०—'क्या मैं काफी समय से विवाह के लिए तुमसे नहीं कहता आ रहा हूँ?'

'किन्तु मैं तो बाबू श्यामकिशोर के साथ विवाह करना चाहती हूँ' - यह कह कर मारगरेट हँसने लगी।

मिस्टर सिंह उदास हो गये; उन्होंने दूसरी ओर मुँह फेर लिया। उनका यह भाव देखकर मारगरेट ने कहा—'आप तो जरा जरा सी बात में नाराज हो जाते हैं। बताइए, मुझे मजाक में भी आप कोई बात कहने का अधिकार न देंगे तो कैसे काम चलेगा? श्यामकिशोर की चर्चा आप ही ने शुरू की, और मैंने यह कह दिया तो दिल में घाव हो गया!'

मिस्टर सिंह ने मारगरेट के चेहरे पर दृष्टि स्थिर करके कहा—'मैं जानता हूँ कि यह मजाक नहीं है, तुम्हारे हृदय पर श्यामकिशोर का अधिकार हो गया है।'

मारगरेट इस अभियोग के विरुद्ध कुछ भी कहना नहीं चाहती थी। प्रेम और प्रसव की पीड़ा एक सी होती है और अब श्यामकिशोर के प्रति अपने सच्चे भाव को वह पूर्ण रूप से स्पष्टकर देने के लिए तैयार हो गयी थी। उसने कहा—'मिस्टर सिंह, मैं आपको अधिक समय तक भ्रम में नहीं रखना चाहती। मैं सचमुच बाबू श्यामकिशोर को प्यार करती हूँ और उनके साथ मेरा विवाह होता तो मैं बहुत प्रसन्न होती; किन्तु वह सम्भव नहीं है; उसमें अपार और दुर्दमनीय कठिनाइयाँ हैं।'

'सच्चा प्रेम सारी कठिनाइयों को हल कर देता है—' मिस्टर सिंह ने हृदय में तीव्र जलन का अनुभव करते हुए व्यंग के रूप में कहा।

मारगरेट ने गम्भीरता-पूर्वक उत्तर दिया 'सच्चा प्रेम तो स्वयं ही अपना पुरस्कार है; हाँ, यदि, उसे सांसारिक सफलता मिल जाती है तो वह पूर्ण रूप से धन्य हो जाता है। मेरे भाग्य में जो लिखा होगा सो तो अब होगा ही।'

यह कह कर मारगरेट कुर्सी पर से उठी और बरामदे में आकर टहलने लगी। धूप कड़ी होती जा रही थी; इसलिए बरा-

मर्दे में भी वह अधिक समय तक ठहर न सकी; भीतर आकर कोच पर पड़ रही।

मिस्टर सिंह माथे पर हाथ रक्खे न जाने क्या सोच रहे थे।

[२२]

मारगरेट ने मिस्टर सिंह की उदासी और गम्भीर मुद्रा को देखकर वहाँ से थोड़ी देर के लिए हट जाना ही अच्छा समझा। वह उठने ही को थी कि शिवराम आ गया। उसने लेटे लेटे ही शिवराम से कहा—'जल्दी चाय तैयार करो।'

शिवराम जब यहाँ आता था तब अपनी कंठो मिर्जई के भीतर डाल लेता था, जिससे किसी को बेमतलब छेड़छाड़ करने का मौका न मिले। मिस्टर सिंह के चेहरे पर इस समय जितनी गम्भीरता थी उससे भी अधिक गम्भीरता धारण करके शिवराम ने कन्धे के अँगोछे को सिर पर बाँधा और चाय के बर्तनों को जिन्हें वह मन ही मन अत्यन्त अधिक घृणा की दृष्टि से देखता था, एक बार धोने के लिए उठाया। जहाँ तक हो सका जल्दी ही चाय बनाकर एक प्याला मिस्टर सिंह के सामने की मेज पर और एक प्याला मारगरेट के सामने उपस्थित किया। मारगरेट ने उठ कर प्याला हाथ से ले लिया। इसके बाद एक ठंडी साँस भर कर शिवराम कमरे की सफाई में लगा।

चाय पीकर मारगरेट फिर अपने कमरे में से निकली और बाबू रघुनाथप्रसाद के कमरे की ओर चली। दरवाजे के बाहर बैठे हुए चपरासी ने बतलाया कि बाबू साहब अभी अभी आये हैं। मारगरेट निस्संकोच भाव से चली गयी।

बाबू रघुनाथप्रसाद ने मारगरेट का उत्साहपूर्ण स्वागत करते

हुए कहा —'कुमारी मारगरेट, मुझे इस बात का बड़ा खेद है कि तुम्हें यहाँ आये दस-बारह दिन हो गये; फिर भी मुझे तुमसे कुछ आवश्यक बातों के सम्बन्ध में बातचीत करने का मौका नहीं मिला। खैर, आज से कुछ अवकाश मिलेगा; कल बाबू दीनानाथ यहीं आ जायँगे। अभी दो-चार दिन तो यहाँ ठहरोगी ही ?

मा०—'नहीं, मैं तो आज ही रात की गाड़ी से रवाना होना चाहती हूँ। यहाँ अधिक ठहरने से मिस्टर सिंह का स्वास्थ्य बिगड़ जायगा।'

रघु०—'यदि ऐसा है तो मैं तुम्हारी यात्रा में बाधक नहीं होना चाहता। मुझे चपला के विवाह के सम्बन्ध में तुमसे परामर्श करना था। तुम्हें यह तो मालूम ही है कि चपला मिस्टर शिवप्रसाद को चाहती है। मैं जानता था कि मिस्टर शिवप्रसाद बहुत दिनों से हिन्दू समाज में लौट आने के लिए लालायित हैं; इस ख्याल से मैंने चपला के प्रेमपथ को बाधापूर्ण नहीं बनाया। किन्तु, लगभग दो सप्ताह हुए, जब मैंने उन्हें एक पत्र लिखा तो उसका एक निराशाजनक उत्तर मुझे कल मिला। उसे मैंने आज ही चपला के पास भेज दिया है। उसका भाव यह है कि अमरीका यात्रा के लिए शीघ्र ही प्रस्थान करने के कारण वे अभी चपला के साथ विवाह के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं कर सकेंगे! देखो आज कल के युवकों का प्रेम और उनके उत्तरदायित्व की मात्रा !! ये लोग वह प्रेम नहीं करते जिसमें त्यागभाव का विकास हो, इनका उद्देश्य तो मनोरञ्जन करना है। मुझे तो अब इस व्यक्ति से बड़ी घृणा हो गयी है। लेख तो बड़े बड़े पत्रों में ऐसे लिखता है मानों पूरा महात्मा ही हो, लेकिन चरित्र इसका इतना उच्छृङ्खल !!!'

मा० 'इसमें और भी अनेक कठिनाइयाँ काम कर रही हैं, जिन्हें आप नहीं जानते। इधर थोड़े समय से मिस्टर शिवप्रसाद कमला की ओर अधिक आकर्षित हुए हैं; या यों कहिए कि अपनी बौद्धिक तथा अन्य असाधारण विशेषताओं के कारण कमला उन्हें आकर्षित करने में चपला की अपेक्षा अधिक सफल हुई हैं। सम्भवतः कमला भी मिस्टर शिवप्रसाद को प्यार करने लगी हैं; यही नहीं चपला के भोलेपन से लाभ उठा कर उन्होंने यह परिस्थिति उत्पन्न कर दी है कि मिस्टर शिवप्रसाद और चपला में वैमनस्य भी उत्पन्न हो रहा है।'

मारगरेट की अन्तरात्मा ने उसके इस कथन का तनिक सा विरोध करना चाहा; किन्तु, मारगरेट ने उसे जहाँ का तहाँ रोक दिया।

र०—'मुझे इसका बिल्कुल पता न था; मैं तो कमला को बड़ी भोली लड़की समझता था।'

मा०—'भोलापन और गम्भीरता तो कमला में अवश्य ही है और यह भी मानना पड़ेगा कि उन्होंने जो कुछ किया है उनकी परिस्थिति में वह सर्वथा स्वाभाविक है।'

बाबू रघुनाथप्रसाद के हृदय में कमला के प्रति रोष बढ़ता ही जा रहा था; क्रमशः चेहरे पर भी वह प्रगट होने लगा।

मा०—'क्या कमला के विवाह का कोई प्रबन्ध नहीं हो सका ?'

र०—'अच्चा कुछ कोशिश कर तो रहे हैं; लेकिन मैं जानता हूँ कि जब तक दस-पाँच दिन की छुट्टी लेकर मैं इधर उधर न घूमूँगा तब तक कुछ होने-जाने का नहीं। मै तो बहुत चाहता था कि इन दोनों लड़कियों की शादी इस गरमी में हो जाय।'

एक दबी हुई मुस्कराहट के साथ मारगरेट ने कहा—'इधर थोड़े समय से कमला में एक परिवर्त्तन आ गया है।'

र०—'सो क्या!'

मा०—'उन्होंने जीवन भर कुमारी रहने का निश्चय किया है और कुछ समय पहले से लखनऊ के महिला-विद्यालय में अध्यापन का कार्य्य करने के लिए बाबू दीनानाथ से पत्र-व्यवहार कर रक्खा है। उनको यह अनुभव होने लगा है कि आप की और समाज की सेवा करके आपके उपकार से उऋण होना उनका कर्त्तव्य है, न कि आप पर जीवन भर अपना भार बनाये रखना।'

र०—'तो अब वह मेरा उपकार करेगी? भला उपकार करने लायक तो हो गयी। एक उपकार तो उसने यही कर दिया कि शिवप्रसाद और चपला में लड़ाई लगा दी। मेरी कितनी बड़ी इच्छा थी कि शिवप्रसाद को अपने समाज में लौटा कर तथा अपनी लड़की का विवाह उनसे करके समाज में एक आदर्श उपस्थित करूँ। इस इच्छा की पूर्ति में अड़ंगा लगा कर कमला ने उपकार तो किया ही!'

बाबू रघुनाथप्रसाद की वाणी में क्रोध और विषाद का प्रभाव था। उनका मस्तिष्क चंचल हो गया था और वे कुछ भी सोच सकने में असमर्थ हो रहे थे।

मा०—'अच्छा, अगर कमला कुमारी रह कर अध्यापन-कार्य्य करना चाहती हैं तो इसमें आपको क्या आपत्ति है?'

र०—'पहले तो बहुत कुछ आपत्ति थी, लेकिन अब नहीं है। मैंने कमला को कभी पराई लड़की नहीं समझा; यही हाल घर के और सब लोगों का भी है। जिसे मैं अपनी लड़की समझता हूँ वह नौकरी करके अपनी जीविका चलावे, यह मैं नहीं पसन्द

करता। लेकिन जब वह स्वतंत्र रह कर मेरा उपकार ही करना चाहती है तब तो कोई बात ही नहीं।'

मा० 'बाबू जी, एक बात जो कभी कभी मेरे दिमाग में आयी है, आज मौका आने पर आप से कहती हूँ। आप क्यों नहीं कमला और बाबू श्यामकिशोर का विवाह कर देते? लोग आप से इस तरह के सुधारों की आशा रखते हैं। वे दोनों भाई-बहिन तो हैं नहीं।'

बाबू रघुनाथप्रसाद ने बहुत सिर खरोंचा; लेकिन इस प्रश्न के उत्तर में कहने के लिए उनके पासकोई ऐसी बात न थी जिसे मारगरेट दकियानूसीपन न कह देती। फिर उत्तर देने के लिए स्वभावतः जितनी देर लगनी चाहिए उससे अधिक होते देख कर वे कुछ घबरा से गये और बोले, 'मारगरेट, वह संभव नहीं है; उसमें अनेक कठिनाइयाँ हैं; फिर, हमारे जीवन में भावुकता का भी कुछ स्थान है।'

स्वयं बाबू रघुनाथप्रसाद इस निष्प्राण उत्तर के तर्क से सन्तुष्ट नहीं थे; ऐसी अवस्था में वे कैसे आशा कर सकते थे कि मारगरेट सन्तुष्ट होगी? किन्तु उन्हें यह क्या मालूम कि मारगरेट ने सन्तुष्ट होने के लिए नहीं, केवल उनके मनोभावों को जानने के लिए यह चर्चा उठायी थी।

कमला-श्यामकिशोर के विवाह की बहस कहीं और न बढ़े, इस भय से बाबू रघुनाथप्रसाद ने मारगरेट को बोलने का अवसर न देकर शीघ्र ही कहा—'नैनीताल पहुँच कर पत्र लिखना; अगर विवाहों का झमेला बाधक न हुआ तो सम्भव है, हम लोग भी आ जायँ।'

मा०—'सम्भव है— यह न कहिए, कहिए, निश्चत है। आप से यही कहलाने के लिए मैं आप के पास आयी हूँ।'

यह कहकर मारगरेट उठ खड़ी हुई। मिस्टर सिंह, बाबू श्यामकिशोर आदि लोगों से ऐसे समय वह हाथ मिलानेमें संकोच न करती; लेकिन बाबू रघुनाथप्रसाद में कुछ ऐसी बात उसने देखी जिससे उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हुई उनके प्रति उसकी श्रद्धा कुछ और बढ़ गयी और उनसे हाथ मिलाने में संकोच का अनुभव करके उसने हाथ जोड़ कर प्रणाम करना ही पसन्द किया। उसने देखा कि बाबू रघुनाथप्रसाद पर इसका अच्छा प्रभाव भी पड़ा; यद्यपि इसके उत्तर में उन्होंने आशीर्वाद न देकर एक प्रफुल्ल मुसकान के साथ हाथ ही जोड़ लिये। साथ ही शिष्टाचार में भी कमी न करके वे कुर्सी पर से उठ भी गये।

मारगरेट के बाहर जाने के बाद बाबू रघुनाथप्रसाद गहरी चिन्ता में डूब गये। केहुनी को मेज पर रखकर और दाहिने हाथ की उँगलियों से माथा टेक कर वे अपनी घरेलू समस्याओ पर विचार करने लगे। उन्हें आज इस बात से बड़ा दुख हो रहा था कि शिवप्रसाद को पहचानने में उन्होंने गहरा धोखा खाया। वे सोचने लगे-- इस उच्छृङ्खल और चरित्रहीन व्यक्ति के साथ चपला का विवाह तो अब नहीं ही होना चाहिए, स्वयं चपला के हृदय को भी तो शिवप्रसाद के इस व्यवहार से गहरा धक्का लगा होगा। मुझे तो जान पड़ता है कि मेरी चिट्ठी जाने के बाद शिवप्रसाद और चपला में इस विषय की चर्चा अवश्य हुई है और इस चर्चा का परिणाम असन्तोष-जनक होने के कारण ही इतने दिनों से मैं चपला में एक विचित्र परिवर्त्तन देख रहा हूँ। जो हो, उसका विवाह इस वर्ष तो अवश्य ही हो जाना चाहिए। चपला और कमला दोनों के विवाह जून जुलाई तक निबटा देना ही अच्छा होगा--इन्ही विचारों की उधेड़-बुन में वे बड़ी देर तक लगे रहे।

[२३]

दूसरे दिन दीनानाथ बँगले पर आ गये। कमजोरी के सिवा अब दूसरी कोई शिकायत नहीं रह गयी थी। लेकिन वहाँ आने के साथ ही साथ, लखनऊ कब जाना चाहिए--इस सम्बन्ध की चर्चा चल पड़ी। दीनानाथ की बूढ़ी नौकरानी को जब से यह मालूम हुआ कि बाबू जी अब कुछ अच्छे हो गये हैं तब से उसने बारबार लिखवा कर पत्र भेजना शुरू किया कि जल्दी लौट आवें।

दीनानाथ के लखनऊ जाने की चर्चा को कमला बड़े ध्यान से सुना करती थी। करुणा देवी की जल्दबाजी को देखकर वह घबरा जाती थी तो गायत्री देवी की तर्कशैली को उन्हें रोके रहने में सफल होती देखकर आश्वासित भी हो जाती थी। किन्तु बँगले पर आने के लगभग एक सप्ताह बाद गायत्री देवी करुणा देवी के सामने हारने लगीं और कमला को विश्वास हो गया कि महीना समाप्त होते होते तक दीनानाथ लखनऊ अवश्य ही चले जायँगे।

प्रायः नित्य ही वह दीनानाथ के पास बैठती थी; परन्तु जिन विषयों पर उनसे बातचीत करने की उसे बहुत अधिक इच्छा रहता थी उन्हें साहस की कमी के कारण प्रतिदिन वह टालती ही आती थी। इनमें प्रधान विषय था डिप्टी साहबके परिवार में उसका प्रधान कर्त्तव्य और अधिकार। दीनानाथ से अधिक विद्वान्, सहृदय, तथा उक्त परिवार से सुपरिचित व्यक्ति मिलना असंभव था। यह टाल मटोल उस दिन तक चला आया जिस दिन गायत्री देवी ने करुणा देवी को दूसरे दिन विदा कर देने का वचन दे दिया। इसलिए अपनी इतने दिनों की मूर्खता को मन ही मन कोसती हुई वह अवसर पाते ही दीनानाथ के कमरे में बैठने के लिए यह निश्चय करके आयी कि आज

दीनानाथ तकिये के सहारे लेटे हुए एक समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। बिजली के पंखे और खस की टट्टियों ने उनके छोटे से कमरे में काफी ठण्ढक कर दी थी। फर्श पर एक चटाई रक्खी थी; उसी पर कमला बैठ गयी।

दीनानाथ ने कमला की ओर करवट फेर कर कहा—

'कमला! तुमने मुझे जितनी सहायता दी है, उससे मैं उऋण नहीं हो सकता। परन्तु, क्या कृतज्ञता के इस भार को हलका करने का कुछ उपाय है? कल मैं यहाँ से चला जाऊँगा, इसलिए आज पूछ रहा हूँ।'

क०—'मेरे ऊपर दया-भाव बनाये रहें। एक अनाथ बालिका की सेवाओं की आप को परवा न करनी चाहिए। मैं किसी बड़े आदमी की बेटी तो हूँ नहीं।'

दीनानाथ कुछ शरमा कर बोले—'कमला! ईश्वर ने तुम्हें लड़कपन ही से गंभीर हृदय दिया है; परन्तु, तुम्हारा हृदय इतना करुणामय है यह तो मैंने इन्हीं दिनों जाना। आज मुझे यह सोचकर खेद होता है कि तुम्हारे हृदय की कोमलता परिचय मैंने इतने दिन क्यों नहीं पाया; तुम्हारा सच्चा मूल्य मैंने बहुत दिनों बाद आँका।'

कमला सिर नीचा किये चुपचाप बैठी रही। थोड़ी देर के बाद बोली—'मुझे आप से एक बात पूछनी है।'

कमला का स्वर संकोच से दबा हुआ था।

दीनानाथ ने उत्तर दिया—'कुछ पूछने के लिए मेरी अनुमति लेने की क्या आवश्यकता है कमला!'

क०—'मैं जानना चाहती हूँ कि मनुष्य का हृदय वास्तव में किन गुणों से आकर्षित होता है।

दी०—'कमला, मानव-हृदय सौन्दर्य का प्यासा है; सौन्दर्य्य शक्ति से आती है; शक्ति स्वास्थ्य का दूसरा नाम है। जहाँ जीवन के समस्त अंगों की पूर्ति है, जहाँ सभी प्रकार के दृष्टिकोणों के सन्तुष्ट होने का पूरा अवसर है, जहाँ एक भी क्षति, एक भी दोष नहीं है, वहीं स्वास्थ्य है, वहीं शक्ति का भी वास है, और वहीं सौन्दर्य अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ दर्शन देकर मानव आत्मा को आह्लाद से भर देता है।'

क०—'चंचलता में सौन्दर्य है या स्थिरता में ?'

दी०—'मैंने कहा तो कि किसी अंग की क्षति करके नहीं, वरन् समष्टि की संगति और एकता से सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है। यदि चंचलता के साथ साथ कही किसी अंश में त्रुटि है तो वह चंचलता कलुषित हो जाती है, यही हाल स्थिरता का भी है। किसी अभाव के कारण स्थिरता निन्दनीय हो सकती है; उससे दुर्गंधि का संचार हो सकता है। चंचलता ऐसी न हो कि जीवन-परिधि को केन्द्र से बहुत दूर डाल दे; और, स्थिरता ऐसी न हो कि वह विकास और विस्तार का विरोध करने लगे ;'

यह कहकर दीनानाथ चुप हो गये।

कमला ने फिर कुछ देर तक कोई प्रश्न नहीं किया। वह मन ही मन अपनी आलोचना करती रही। दीनानाथ चपला को अधिक क्यों चाहते थे और अब उससे क्यों घृणा करते हैं, यह अब उसकी दृष्टि में स्पष्ट हो गया। अपनी त्रुटियों को भविष्य में कैसे दूर करुँ, कमला इसी सम्बन्ध में बहुत देर तक सोचती रही।

कमला को चुप देखकर दीनानाथ ने कहा —'कमला, तुमने अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में क्या निश्चय किया ? जो बातें तुमने मेरे पास पत्र में लिखी थीं उनकी सूचना अपने बाबू जी को भी दी या नहीं ?'

कमला—'उन्हें सूचना देने का साहस नहीं होता।'

दी०—'मेरी तो राय यही है कि उनसे उऋण होने के लिए तुम सिरतोड़ परिश्रम मत करो; यह प्रयास संकट से शून्य नहीं है। जैसे चपला के मन में यह भाव नहीं उत्पन्न होता वैसे ही तुम्हारे हृदय में भी इसे न उठना चाहिए।'

क०—'परन्तु, शरीर में चेतना-शक्ति के रहते मैं यह कैसे भुला सकती हूँ कि मै पोषिता वालिका हूँ; और इस चेतना ही से उत्पन्न होने वाली उस कर्त्तव्य-भावना को भी कैसे कुचल सकती हूँ, जो मेरी सम्पूर्ण शिक्षा का परिणाम है? चपला और मुझमें वड़ी भिन्नता है, और उसे प्रकृति ने हमें जन्म ही से दे रक्खा है।'

जिस समय कमला ये वातें चटाई पर पड़ी एक पुस्तक के पत्रों को निरुद्देश्य भाव से उलटती पुलटती हुई कर रही थी उस समय दीनानाथ एक अपूर्व मुग्धता के साथ उसकी इस पीयूषमयी वाणी का रसास्वादन कर रहे थे। उन्हें इस वात का पता न था कि कमला इतनी गूढ़ है, इतनी प्रवुद्ध है। चित लेट कर थोड़ी देर तक वे विचार में डूवे रहे, उसके वाद फिर कमला की ओर करवट वदल कर वोले—'कमला, प्रत्येक युद्ध के लिए शस्त्र की आवयश्कता होती है, प्रत्येक कार्य की सिद्धि के लिए उपयुक्त साधन चाहिए। तुम्हारे हृदय में जो ऊँची कल्पना उठी है उसे कार्य-रूप में परिणत करने के लिए, मेरी समझ में, तुम्हारे पास साधन नहीं है।'

कमला के जी में आया, कह दूँ कि विवाह के जंजाल में न पड़कर अध्यापन-कार्य मे लगना क्या समाज-सेवा का साधन नहीं है? लेकिन फिर न जाने क्यों कहने-कहने को होकर वह रुक गयी। शायद ऐसा कहने में उसने कुछ कमजोरी का अनुभव किया।

फिर थोड़ी देर में उसने कहा, 'मैं महिला-विद्यालय में आऊँगी अवश्य; ईश्वर चाहेगा तो एक सप्ताह के भीतर ही परीक्षा-फल भी प्रगट हो जायगा। मुझे इतिहास पढ़ाने में विशेष आनन्द मिलेगा; यों तो मैं प्रायः प्रत्येक विषय पढ़ा सकूँगी। हाँ, जब बाबू जी आज्ञा दे देंगे तभी आप मेरी नियुक्ति कराइएगा। वे बहुत करेंगे, वेतन न लेने देंगे; मैं अवैतनिक रूप से काम करूँगी।'

दीना०—'ठीक है, इसमें मैं भी सहमत हूँ; इसी तरह विवाह के सम्बन्ध में भी उन्हीं की स्वीकृति से काम करना चाहिए। उनके उपकार से उऋण होने का एक उपाय यह भी है कि उनकी आज्ञा की स्वप्न में भी अवहेलना न करो और यदि संभव हो तो उनकी इच्छाओं का अनुमान करके पहले ही से उनकी पूर्ति के अनुकूल आचरण करो।'

दीनानाथ की पिछली बात सुनकर कमला आत्म-परीक्षा में रत हो गयी। उसने अपने आपही कहा—'क्या मैं सचमुच बाबू जी से उऋण होना चाहती हूँ? फिर मैं क्यों नहीं किसी ऐसे व्यक्ति के साथ अपना जीवन बिताने के लिए तैयार हो जाती जिसे बाबू जी मेरे लिये पसंद कर दें? जिसने मेरे शरीर का पालन किया है उसी को यह अधिकार भी है कि वह उसे चाहे जिसे सौंप दे। फिर मै क्यों अपने इस कर्त्तव्य पालन से इनकार कर रही हूँ?'

कमला को उसके हृदय ही ने इन प्रश्नों का उत्तर भी दे दिया। वह अपने स्वार्थ के, कृतघ्नता के भीषण स्वरूप को देख कर काँप उठी। किसी ने ललकार कर उससे कहा—'ऐ अभागिनी कमला! सहारा देने वाली डाल को अपने हाथ से काटने वाली ऐ क्रूर कर्म्म करने वाली कमला! तू चाहे जो

कर, पर संसार की आँखों में धूल झोंकने का प्रयत्न क्यों कर रही है ? तुझे ईश्वर ने जन्म से अभागिनी बनाया है तो तू अपने मंद कर्म्मों के परिणाम से सन्तुष्ट क्यों नहीं है ? तू भूलोक की मेढ़की होकर चन्द्रमा को छूने का व्यर्थ प्रयास क्यों कर रही है ? तू क्यों चाहती है कि अपने पसंद के पुरुष ही से विवाह कर सके ? श्यामकिशोर के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट करने के अनन्तर उन्हें और स्वयं को अविवाहित रख कर वञ्चना-पूर्ण जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा क्या यह अधिक अच्छा नहीं है कि तू अपने जीवन की इतिश्री कर ले ?

कमला उसी किताब के पन्नों को उलटती-पलटती हुई अत्यन्त गम्भीर और अन्यमनस्क भाव से इस विचार-धारा में मग्न थी और दीनानाथ उसकी विचित्र मुखमुद्रा की ओर बड़े ध्यान से देखते और मन ही मन कमला की सराहना कर रहे थे।

कमला ने सिर ऊपर उठाकर पूछा, 'तो आप कल किस गाड़ी से जायँगे ?'

'रात की गाड़ी से ही जाऊँगा; दिन को तो भयानक गर्मी रहती है'—दीनानाथ ने उत्तर दिया।

'कल, सम्भव है, जाने की जल्दी में बातचीत करने का अवसर न मिले, इसलिए यहाँ मेरी इस बातचीत को अन्तिम समझिए। परीक्षा-फल प्रगट होने पर मैं आपको पत्र लिखूँगी'—यह कह कर कमला चली गयी।

दीनानाथ करवट बदलकर कमला के विचित्र चरित्र पर विचार करने लगे।

[२४]

दीनानाथ के लखनऊ जाने के चौथे दिन नैनीताल से कुमारी मारगरेट का तार कमला के नाम आया--

[First division congratulations—Margaret]

प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण बधाई।

—मारगरेट

इस समाचार के मिलने पर घर के सब लोग तो प्रसन्न ही हो गये; इस परिवार के मित्रों और परिचितों को भी कम प्रसन्नता नहीं हुई। नित्य ही कुछ न कुछ लोग बाबू रघुनाथ प्रसाद को और कुछ न कुछ स्त्रियाँ गायत्री देवी तथा कमला को बधाइयाँ देने आने लगीं। इसका सिलसिला कई दिनों तक नहीं टूटा; बाबू रघुनाथप्रसाद और कमला को इस उल्लास में समझ पड़ने लगा जैसे बधाइयों को स्वीकार करने के सिवा उनके पास न अन्य कोई काम है, और न उनके सामने अन्य कोई समस्याएँ हैं। किन्तु समस्याएँ तो ज्यों की त्यों अपना भीषण मुँह फैलाए हुए थीं और इन दोनों की सम्पूर्ण धीरता और गम्भीरता को निगल जाने के लिए तैयार थीं।

परीक्षा में उत्तीर्ण होने की बात जब पुरानी पड़ गई तब कमला ने अपना भावी कार्य्यक्रम बनाने की ओर ध्यान दिया। यह सोच कर कि बाबू दीनानाथ तब तक मेरी प्रार्थना पर ध्यान नहीं देंगे जब तक मैं बाबू जी से अनुमति न प्राप्त कर लूँगी, उसने एक पत्र लिखकर उन्हें अपने विचारों से परिचित करने का निश्चय किया। किन्तु इस निश्चय पर पहुँचने में उसे तीन चार दिन लग गये और निश्चय के पक्के हो जाने पर भी पत्र की भाषा और शैली को मन के अनुकूल बनाने में भी कई दिन लगे। इस प्रकार लगभग दस-बारह दिन और बीत गये। अन्त में पत्र का अन्तिम रूप निर्धारित कर लेने के बाद जब उसने रात को लगभग नौ बजे अपने कमरे के सामने के बरामदे में

बिछी चारपाई पर लेट कर एक छोटी मेज पर रखी हुई मोमबत्ती के सहारे पढ़ना शुरू किया, उसी समय अचानक मोमबत्ती बुझ गई। यदि चपला या और किसी ने इस प्रकार विघ्न डाला होता तो शायद नाराजी का भाव उसके चेहरे पर अंकित हो जाता; किन्तु संयोग से यह विघ्न डालने के लिए आज घर में रमदेइया को छोड़ कर और कोई था ही नहीं। सब लोग नौका-विहार का आनंद लेने के लिए गंगा जी की ओर चले गये थे और पेट में दर्द का बहाना करके वह घर पर रह सकी थी तथा उसके साथ के लिए रमदेइया छोड़ दी गई थी। वास्तव में कमला के काम में बाधा डालनेवाला था ठंडी हवा का एक हलका झोंका जो आकाश में आने वाले एक छोटे से बादल के साथ ही साथ चल पड़ा था।

कमला ने चारपाई से उठकर एक बार आकाश की ओर देखा और यह समझकर कि अभी वहाँ से हटने-योग्य परिस्थिति नहीं उत्पन्न हुई है, उसने हरीकेन लालटेन जलायी और फिर ज्यों की त्यों लेट कर पढ़ना शुरू किया। उसने लिखा था—

"पूज्य बाबू जी,

प्रणाम।

मैंने बहुत चाहा कि खुली बातचीत में आपके सामने अपने मनोभावों को प्रगट कर दूँ। परंतु यह न हो सका। बाद को मैंने सोचा कि माता जी के द्वारा कहलाऊँ। किंतु यह भी न हो सका। अंत में आपको पत्र लिखने का मार्ग ही सुविधापूर्ण जान पड़ा।

आपने मेरे साथ दो अन्याय किये हैं—एक तो यह कि आपने मेरा पालन-पोषण किया, दूसरा यह कि आपने मुझे शिक्षा दी। साधारणतया ऐसे कार्यों को उपकार ही मानती;

किन्तु मुझे वर्त्तमान समय में जो पीड़ा मिल रही है उसके कारण आपके उपकार को भी मैं अपकार समझने के लिए विवश हो रही हूँ।

आपसे मेरी प्रार्थना है कि मुझे अधिक समय तक अपने परिवार में रखकर तथा मेरा विवाह करने की झंझट में पड़ कर उक्त अन्याय की मात्रा को मत बढ़ाइए।

आपके उपकार को मैं अन्याय कह रही हूँ, ऐसा कहते हुए मुझे जो कष्ट हो रहा है उसका आप अनुभव नहीं कर सकते। लेकिन सोचिए तो सही कि यदि मैं बाल्यावस्था ही में भूखों मर गयी होती तो आज की वेदना से तो मेरा छुटकारा हो गया होता। आपके घर में इतना प्यार और दुलार पाने के बाद यदि मुझे मिली हुई शिक्षा के कारण ऐसी परिस्थिति खड़ी हो जाय कि उसे छोड़ने के लिए मैं विवश हो जाऊँ तो आपके द्वारा दी हुई इस शिक्षा को मैं अपनी हितैषिणी समझूँ या घातिकिनी? शिक्षा ने, ग्रन्थों के अध्ययन ने, मुझमें चेतना का संचार कर दिया है और यह चेतना ही आज मुझसे यह सब लिखवा रही है। इसी चेतना के कारण न तो मैं आपके घर में रह सकूँगी और न विवाह स्वीकार कर सकूँगी। अब मेरी जीवन-नौका को संसार-समुद्र की लहरों के थपेड़े खाने के लिए छोड़ दीजिए; यदि आप इसे अपने मन के अनुसार खेने का प्रयत्न करेंगे तो उसका परिणाम होगा आपके लिए कष्ट और मेरे लिए अशान्ति। यदि आप मुझे स्वतंत्रता दे देंगे तो इसका फल होगा मेरा और आपका—दोनों का कल्याण।

मैं समझती हूँ कि आप से अलग होकर मैं आपको बहुत बड़ी अशान्ति से बचाने जा रही हूँ और आपके घर में एक

दुलारी लड़की का सुख त्याग करके एक बहुत बड़ा त्याग कर रही हूँ।

मैंने बाबू दीनानाथ से प्रार्थना की थी कि वे लखनऊ के महिला—विद्यालय में मुझे स्थान दें। वे तभी ऐसा कर सकेंगे जब मुझको आपका आशीर्वाद और आप की आज्ञा प्राप्त होगी।

अन्त में 'अन्याय' शब्द के प्रयोग के लिए मै बारम्बार आपके चरणों पर अपना सिर रखती हूँ। किन्तु मैं जन्म से ही अभागिनी हूँ और अभाग्य के कठोर आघात सहन करते हुए ही अब मेरा शेष जीवन व्यतीत होगा। ऐसी अभागिनी का सम्पर्क पाकर क्या न्याय और प्रेम अन्याय और अत्याचार का रूप नहीं धारण कर सकते? लेकिन यह आप पक्का समझिए कि आपने मेरे साथ जो कुछ किया है उसके प्रति मैं कृतघ्न नहीं हूँगी और वास्तव में कृतज्ञता के भाव से युक्त होने के कारण ही मैं आपको यह पत्र लिख रही हूँ।

आपकी दुलारी लड़की
'कमला'

यह पत्र पढ़ लेने के बाद कमला फिर विचार करने लगी। कहीं पत्र में उचित से अधिक कठोरता तो नहीं आ गयी, कहीं कोई ऐसी बात तो नहीं लिखी गयी जिससे बाबू जी के हृदय को चोट लगे? 'अन्याय' शब्द के प्रयोग से कहीं वे दुखी तो न हो जायेंगे? उसके हृदय में कहीं से आवाज आयी–हाँ, दुखी तो वे अवश्य हो जायेंगे;इस शब्द को निकाल ही देना चाहिए। किन्तु शीघ्र ही कहीं से फिर विरोध की आवाज आयी—मुझ जैसी अभागिनी को जीवन भर असह्य यंत्रणा का अनुभव करने के लिए जीवन और शिक्षा प्रदान करना क्या अन्याय

नहीं कहलायेगा ? यदि मैं जीवित न रहती तो बाबू श्यामकिशोर से प्रेम क्यों करती ? और यदि शिक्षिता न होती तो मेरे हृदय में कर्त्तव्य भावना का विकास क्यों होता ! मैं क्यों यह सोचती कि बाबू श्यामकिशोर को अपनाने से बाबू जी और अम्मा जी को क्लेश होगा ? कमला तर्क-वितर्क में डूब गयी। कभी सोचती—शिक्षा का प्रभाव तो यह होना चाहिए था कि मैं बाबू श्यामकिशोर को जीवन भर अपना बंधु मानती, या यदि उनको अपना प्रियतम मान भी चुकी थी तो भुला देने का प्रयत्न करती, बाबू जी की आज्ञा के अनुसार विवाह कर लेती, और जिस स्नेह-भाव से उन्होंने मेरा लालन-पालन किया है उसी स्नेह-भाव से मैं भी उनको अपनी आज्ञाकारिता और सेवा-द्वारा प्रसन्न करती। यह सब मुझसे कहाँ हो सका ? ये विचार भी स्थिर न रह पाते। तुरंत ही वह फिर सोचती—निस्संदेह, वह व्यवहार आदर्श होता, किंतु क्या एक साधारण युवती से इतने ऊँचे चरित्र की आशा करना उचित है ? उस अवस्था में जब बाबू श्यामकिशोर पिता-माता की इच्छा के बिना भी मेरे साथ विवाह करने को तैयार हैं, क्या यह कम त्याग है कि मैं यह घर छोड़ कर अन्यत्र चली जा रही हूँ। किसी भी तरह हो, जब मैं एक व्यक्ति को अपना हृदय अर्पण कर चुकी हूँ, यह कैसे हो सकता है कि दूसरे के साथ विवाह स्वीकार करके विवाह की ही विडम्बना करूँ ? और जब मैं जानती हूँ कि बाबू श्यामकिशोर वास्तव में मेरे भाई नहीं हैं तब उन्हें प्रियतम रूप में ही मैंने देखा तो क्या बुराई हो गयी ?

विचारों की इस शृंखला ने कमला को दृढ़ बना दिया और इस पत्र में कोई परिवर्त्तन करने की आवश्यकता उसने नहीं समझी। चारपाई पर से उठकर वह अपने कमरे में चली गयी

और पत्र संदूक में बंद करने के बाद चारपाई पर लौट आयी तथा एक पतली चादर से मुँह को छोड़ शेष शरीर को ढक कर लेट गयी। थोड़ी देर तक उसका मन उधेड़-बुन में उलझा रहा; इस घर को छोड़ने का मोह भी उसको कुछ-कुछ विचलित कर रहा था। शीघ्र ही निद्रा ने रात भर के लिए उसकी सब समस्याओं का अंत कर दिया।

जब बाबू रघुनाथप्रसाद गायत्री देवी आदि के साथ आये और उन्होंने रमदेइया से पूछा तो उसने बतलाया कि बड़ी बीवी को सोये आध घंटा हो गया।

[२५]

दूसरे दिन सवेरे जिस समय बाबू रघुनाथप्रसाद अपने आफिस में आकर बैठे, रमदेइया उनके हाथ में एक लिफाफा देकर चली गयी। उन्होंने उसे खोलकर ज्यों पढ़ा त्यों एक गम्भीर चिन्ता भयंकर रूप धारण करके उनके सामने खड़ी हो गयी। कुमारी मारगरेट ने कमला के सम्बन्ध में जो बातें बतलायी थीं उससे और कमला के पत्र की शैली से उन्हें यह समझने में देर न लगी कि कमला शिवप्रसाद और चपला में लड़ाई लगाकर श्यामकिशोर के साथ विवाह करना चाहती है; साथ ही उन्हें यह सन्देह भी हो गया कि हो न हो श्यामकिशोर भी कमला के अनुकूल है और इसी कारण उसके विवाह की हृदय से कोशिश नहीं कर रहा है। उन्होंने घंटी बजायी चपरासी कमरे के भीतर आया और बहूरानी के पास सन्देशा लेकर गया कि सरकार बुला रहे हैं। शीघ्र ही गायत्री देवी आकर सामने एक कुर्सी पर बैठ गयीं, चपरासी बरामदे में अपनी जगह पर बैठ गया।

बाबू रघुनाथप्रसाद ने गायत्री देवी को परिस्थिति समझाते हुए कहा—'मेरी समझ में तो कमला का विवाह श्यामकिशोर से कर देना न केवल उदारता की बात होगी, बल्कि बुद्धिमानी की भी बात होगी, कमला के सुख-दुख के साथ, जान पड़ता है, श्यामकिशोर का सुख-दुख भी सम्बद्ध हो गया है।'

यह कहकर बाबू रघुनाथप्रसाद गायत्री देवी की ओर स्थिर दृष्टि से देखने लगे।

गायत्री देवी ने रूखे स्वर में कहा—'तो तुम्हें जो कुछ पसंद आवे कर डालो; मुझसे क्यों पूछते हो? मैं तो न जाने कब से इन लड़कियों के विवाह की बात कहती आ रही हूँ; लेकिन तुम हमेशा टालते ही आए। इन परिस्थितियों के उत्पन्न होने का तो मुझे हमेशा ही भय था। सो, अब जैसा उचित समझो करो। तुमने चपला, कमला, श्यामकिशोर सभी का जीवन नष्ट किया। चपला का भी देखूँ तुम कहाँ ब्याह कर लेते हो! क्या तुम समझते हो कि अगरवालों की बिरादरी में तुम उसका ब्याह कर लोगे? मेरी सीधाई ही मेरे बच्चों के लिए काल हो गयी।'

यह कहते कहते गायत्री देवी की आँख में आँसू भर आया, जिसे उन्होंने अपने अञ्चल से पोंछा।

रघुनाथप्रसाद की आँखों से बेबसी टपकने लगी। थोड़ी देर बाद वे दबी जबान में बोले—'अब तो जो हो गया सो हो गया; पछताने से काम नहीं चल सकेगा; जो कठिनाई सामने आवे उसे हल करना चाहिए।'

गा०—'इस कठिनाई का हल मेरे पास क्या हो सकता है और उसको प्राप्त करने के लिए मेरी बुद्धि भी क्या काम कर

सकती है ? जो किसी कठिनाई को पैदा करता है उसी की अक्ल उसको हल करने में भी लग सकती है।'

र०—'हल तो मैं भी जानती हूँ और तुम भी जानती हो। वास्तव में आवश्यकता है उसको स्वीकार करने की; सो, यदि तुम स्वीकार कर लो तो कठिनाई समाप्त हो जाय।'

गा०—'क्या तुम चाहते हो कि मैं कमला को बहू के रूप में स्वीकार कर लूँ ? यह कैसे हो सकता है ? मैंने लड़कियों के विवाह के सम्बन्ध में सारी बातें मानीं, लेकिन इसका तो मैं प्रबल विरोध करूँगी। अगर तुम अपनी मनमानी ही करोगे तो बेटे और बहू को लेकर तुम रहना; मैं अपने मायके चली जाऊँगी। मेरी आँखों के सामने ऐसी बेढंगी बातें नहीं हो सकेंगी। मेरे चले जाने के बाद चपला का व्याह भी उसी ईसाई के साथ कर देना। नीच कुल की लड़की अपने घर में लाकर और अपनी लड़की नीच कुल वाले को देकर ही तो तुम देश का उद्धार कर सकोगे। मैं ही तुम्हारी राह का काँटा हूँ, सो, मेरे न रह जाने पर तुम्हारे कार्य्यों में बाधा नहीं पड़ेगी।'

र०—'क्या कमला नीच कुल की है !"

गा०—मैं कब कहती हूँ कि वह नीच कुल की है। किन्तु प्रमाण के अभाव में यह भी कैसे कहा जा सकता है कि वह किस कुल की है ! अथवा जिस कुल की है वह हमारे काम का है भी या नहीं ? कमला सुन्दरी है, सुशील है, सब गुणों से युक्त है; लेकिन जब तक यह न मालूम हो जाय कि उसके माता-पिता कौन हैं तब तक हम उसे बहू कैसे बना सकती हैं ! हमने उसे लड़की समझ कर पाला, सो बात ही और थी। आज से उन्नीस वर्ष पहले जिस समय तुमने तब इस दो

बरस की बच्ची को श्यामकिशोर के लिए एक बहन कह कर मुझे सौंपा था उसी समय यदि तुमने बहन न कह कर बहू कह दिया होता तो शायद मैं अपने हृदय को निष्ठुर बना कर दया दिखाने से इनकार कर देती। मैंने तब यही समझा था कि मेरे पाँच बरस के बच्चे के लिए एक बड़ी सीधी और सुन्दर बहन ईश्वर ने साथ खेलने के लिए भेज दी है।'

यह कह कर पति के उत्तर की प्रतीक्षा न करके, अपने गम्भीर स्वामी के अनुसार क्रोध से अधिक विषाद में डूबी हुई गायत्री देवी वहाँ चली गयीं। बाबू रघुनाथप्रसाद के सामने इस समय बड़ी ही जटिल पारिवारिक समस्या उपस्थित थी। गायत्री देवी कट्टर सनातनधर्मी परिवार की कन्या होकर भी उनकी आज्ञा की कभी उपेक्षा नहीं करती थीं; लेकिन उनकी समझ में पति देव की सुधारक प्रवृत्ति भ्रष्टाचार की पराकाष्ठा को पहुँच रही थी और अब चुप रह जाने से अत्यधिक पातक होने की आशंका थी। इस समय निस्सन्देह गायत्री देवी की धमकी से बाबू रघुनाथप्रसाद भयभीत हो उठे थे और उन्होंने भविष्य की कठिनाइयों का अनुमान और उनके निराकरण के लिए पूर्ण प्रबन्ध करने की अपेक्षा वर्त्तमान कठिनाइयों को ही समझदारी के साथ हल करने का निश्चय किया। कमला के पत्र के सम्बन्ध में इस दृष्टि से विचार करने के बाद उन्होंने उसके पत्र का उत्तर लिख डाला और चपरासी के द्वारा श्यामकिशोर को बुलवा कर कमला का पत्र तथा अपना उत्तर दोनों उन्हें पढ़ने को दे दिया। बाबू रघुनाथ प्रसाद का उत्तर इस प्रकार था:-

प्रिय बेटी, कमला;

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने उस पर विचार किया और तुम्हारी कठिनाइयों को समझने की कोशिश की। तुम सुशिक्षित हो और अपने उत्तरदायित्व को अच्छी तरह समझ सकती हो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम बुद्धिमती भी हो और अपनी हानि तथा लाभ समझ लेने की योग्यता तुम में उचित मात्रा में उत्पन्न हो गयी है। ऐसी अवस्था में मैं तुम्हारे किसी प्रस्ताव में अड़ंगा नहीं लगाना चाहता। बाबू दीनानाथ महिला-विद्यालय लखनऊ के मंत्री हैं; उस संस्था में यदि तुम अध्यापन का कार्य्य करोगी तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। रही विवाह की बात, सो उसमें भी तुम्हारी ही इच्छा प्रधान है; तुम्हारे विरोध करने पर आज से मैंने उसकी चिंता छोड़ी।

हम लोगों ने यह कभी नहीं सोचा कि तुम हमारी लड़की नहीं हो; तुम्हें भी चाहिए कि हमको अपने सगे माता-पिता से कम मत समझो यह भाव ही तुम अपने हृदय में से निकाल दो कि तुम हमारी लड़की नहीं हो। यदि तुम मेरी इस आज्ञा का पालन करोगी तो तुम्हें हम लोगों से उऋण होने की आवश्यकता का अनुभव न होगा।

तुम्हारा पिता—
रघुनाथप्रसाद

श्यामकिशोर ने एक कुर्सी पर बैठ कर पत्र पढ़ना शुरू किया। पढ़ चुकने पर उन्होंने कहा—'ठीक है, कमला देवी की यह बहुत दिनों से इच्छा रही है; किन्तु, आप लोगों के संकोच के कारण अब तक उन्होंने अपना यह भाव प्रकट नहीं किया था। वास्तव में वे अध्यापन-कार्य्य के बहुत उपयुक्त हैं।'

र० 'बेटा, अब ऐसा उद्योग करो कि इस वर्ष चपला के विवाह से हम मुक्त हो जाएँ।'

श्या०—'बाबू जी, चपला के व्याह के लिए कोई आदमी तो मिलता नहीं। आपने उसे जितनी स्वतंत्रता दे रक्खी है उसका बिरादरी वालों पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा है; मुझे तो उसका भविष्य भी अंधकारमय दिखाई पड़ रहा है। हाँ, यदि आप एक काम करें तो हम सहज ही इस कठिनाई के पार जा सकते हैं।"

र०—'सो क्या?'

श्या०—'बाबू दीनानाथ से उसका विवाह कर दें।'

र०—'क्या इसके अतिरिक्त अन्य कोई प्रबंध नहीं हो सकता?'

श्या०—'आशा नहीं है; दूसरा प्रबन्ध तभी सम्भव है जब शिवप्रसाद शुद्ध होकर हिन्दू समाज में आ जायें।

लड़के की इस सरल आलोचना का मर्म समझ कर तथा इस प्रसंग को — न बढ़ने देने के उद्देश्य से बा० रघुनाथ-प्रसाद ने कहा—'जरा - माँ के सामने दीनानाथ के साथ चपला के विवाह की चर्चा छेड़ो तो सही; यदि उनका अनुकूल मत हो तो मैं तुम्हें एक बार लखनऊ भेजूँगा।'

श्यामकिशोर को उत्साह का अनुभव हुआ, उन्होंने कहा—'मैं अभी पूछे लेता हूँ।'

यह कह कर श्यामकिशोर माँ के पास गये और शीघ्र ही लौट कर बोले—'माँ कहती हैं, मैंने तो श्रीमती करुणा देवी से बात कर रक्खी है और दीनानाथ से भी बात चला दी है। यदि शीघ्र प्रयत्न करके इस सम्बंध को ठीक कर लें तो अच्छा है।'

डूबते को तिनके का सहारा मिला। बाबू रघुनाथप्रसाद को घर में भावी विपाद और कलह की चिंता से मुक्ति मिली। 'बहुत अच्छा' अब चपला की सम्मति लेने के बाद इसी

विवाह का आयोजन करना होगा।' वाबू रघुनाथप्रसाद ने कहा।

श्यामकिशोर अपने कमरे की ओर चले। वे थोड़ी ही दूर गये थे कि एकाएक वाबू रघुनाथप्रसाद ने उन्हें फिर पुकारा और कमला के पत्र का उत्तर उनके हाथ में रखते हुए कहा—"मेरा यह पत्र कमला को दे देना और जबानी भी समझा देना कि उसे किसी तरह की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।'

श्यामकिशोर पत्र हाथ में लिये हुए चुपचाप चले गये।

[२६]

उस दिन रात की गाड़ी से इलाहाबाद से रवाना होकर मिस्टर सिंह और कुमारी मारगरेट दोनों यथा समय नैनीताल पहुँच गये। मिस्टर सिंह ने अपने एक मित्र की सहायता से एक बॅगला बहुत दिन से किराये पर ठीक कर रक्खा था; वहाँ पहुँचते ही एक चपरासी तथा खाना बनाने के लिए एक मुसल्मान बावरची नौकर रख कर उन्होंने शारीरिक सुविधा का प्रबन्ध ठीक कर लिया। लेकिन सब कुछ अनुकूल होने पर भी मिस्टर सिंह और कुमारी मारगरेट दोनों के चित्त में अशान्ति बनी हुई थी और उस का ताप दोनों को वहाँ भी उतना ही क्लेशकारक हो रहा था जितना प्रयाग का था। मिस्टर सिंह अनुभव करते थे कि मारगरेट से विवाह किये बिना जीवन में कोई आनन्द नहीं है, उधर वे देखते थे कि मारगरेट श्यामकिशोर के प्रेम-पाश में आबद्ध है उन्हें रह रह कर श्यामकिशोर पर क्रोध आता था; अगर उनका बस चलता तो वे श्यामकिशोर को गोली मार देते; अपनी बेबसी के कारण वे दिन दिन चिन्तित और असमर्थ दिखाई पड़ने लगे। मारगरेट का यह हाल न था; वह कुछ्छ गम्भीर अवश्य हो गयी थी; लेकिन साधारण दृष्टिवाले को उसक पूर्व तथा वर्त्तमान चित्त-वृत्तियों का सूक्ष्म अन्तर समझ लेना

आसान काम न था; विशेष कर अपने मस्तिष्क की अस्तव्यस्तता के कारण मिस्टर सिंह तो उसे समझने के सर्वथा अयोग्य हो गये थे; वे तो मारगरेट को वैसी ही चंचल, वैसी ही विनोदप्रिय देखते थे। साथ ही मारगरेट अपने प्रेम की व्यथा को उसी सावधानी के साथ छिपा रखती थी जो गम्भीर प्रणय के बाण से विद्ध होने वाली कुमारियों की एक विशेषता होती है। अपने प्रेमपात्र की ऐसे ढंग से चर्चा करने का उसे अभ्यास पड़ गया था कि आवश्यकता पड़ने पर वह उसे केवल एक मजाक कह कर टाल दे। ऐसे अनेक अवसर आये जब मिस्टर सिंह ने मारगरेट के प्रेम की गहराई का पता लगाना चाहा। किन्तु, सृष्टि के आदि से लेकर अब तक यही देखने में आया है कि वृद्ध नायक तरुणी नायिकाओं को अपना भेद तो बताते रहे हैं लेकिन उनका भेद कभी नहीं पा सके हैं; और मानव-चरित्र की इस विशेषता के नियम में मिस्टर सिंह कोई अपवाद न थे।

मिस्टर सिंह यही समझते थे कि श्यामकिशोर ही मारगरेट के प्रेम में दिवाना हो रहा है और मारगरेट उसके यौवन-सुलभ गुणों की ओर आकर्षित हो गयी है; उन्हें यह क्या मालूम कि श्यामकिशोर मारगरेट की प्रेम-प्रार्थना को एक बार ठुकरा चुका है। यदि उन्हें इस बात का पता होता तो शायद बेचारे श्यामकिशोर पर से उनका क्रोध कुछ कम हो जाता और सम्भवतः उन्हें भी इतनी दारुण वेदना न होती जितनी हो रही थी।

एक दिन सन्ध्या-समय कुमारी मारगरेट और मिस्टर सिंह एक झरने के पास बैठे थे। सूर्य्य अस्त हो चुके थे; उनकी प्रताप-लालिमा भी मिटती जा रही थी। हवा के मन्द मन्द झोंके लताओं और फूलों के साथ अठखेलियाँ कर रहे थे;

हो रहा था; तारे भी एक एक करके सामने आने की कोशिश कर रहे थे। यों तो इस समय चारों ओर एक विचित्र सौन्दर्य और लावण्य का सागर उमड़ रहा था; किन्तु मिस्टर सिंह को जो छटा मारगरेट के अरुण-वर्ण कपोलों और स्निग्ध चन्द्रिका से भी अधिक मादक मुसकान में दिखलायी पड़ रही थी वह अन्यत्र न थी। कुछ देर तक मन ही मन तर्क-वितर्क करने के बाद उन्होंने अत्यन्त आतुरता के साथ कहा—'कुमारी मारगरेट, क्या तुम मेरे जीवन को आनन्दमय न बनाओगी?'

कुछ और कहने की उनकी इच्छा थी; किन्तु भावावेश के कारण उनकी जिह्वा रुक गयी।

मारगरेट स्वयं ही प्रेम-पथ पर चलकर आहत हो गयी थी; इसलिए वह सहज ही मिस्टर सिंह के साथ सहानुभूति कर सकी। उसने कहा—'मिस्टर सिंह, आपके जीवन को आनन्द-शून्य बनाने का कोई काम तो मैंने नहीं किया। क्या मेरे नैनीताल आने से आप को कोई कष्ट है जो आप ऐसा कह रहे हैं?'

मि० सिं०—'एक दृष्टि से कष्ट मिला है, ऐसा भी कह सकता हूँ।'

मा० 'क्या?'

मि० सिं—'नदी के पास हूँ और फिर भी मेरी प्यास नहीं बुझती।'

मा० —'इसमें किसका दोष है—क्या आपने इसे भी सोचा है? किनारे का जल आपको अनायास ही मिल सकता है; लेकिन आप ने अपनी प्यास का स्वभाव ऐसा बिगाड़ रक्खा है कि वह किनारे का जल पीने से शान्त नहीं हो सकती। यह आपने भुला दिया है कि धारा का जल केवल समुद्र के लिए है।'

यह कहते समय मारगरेट के अधरों पर एक हलकी मुसकान आ गयी।

मिस्टर सिंह के चेहरे पर निरुत्तर-सा हो जाने का भाव अंकित हो गया; फिर भी उन्होंने कहा—'खारे समुद्र का ऐसा भाग्य !'

'प्यासा जब अपनी तुलना समुद्र के साथ करता है तब उसको वह खारा जान पड़ता है; किन्तु वह खारा है या मीठा, यह तो नदी ही से पूछना चाहिए'—तुरन्त ही मारगरेट ने उत्तर दिया।

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद मिस्टर सिंह ने कहा—'अच्छा, कुमारी, यदि तुम्हारी उपमा मैं नदी से दूँ तो वह कौन सा समुद्र है जिसकी ओर तुम्हारा व्यक्तित्व प्रवाहित हो रहा है।'

'इसे मैं क्या जानूँ, सम्भव है, वह समुद्र आप ही हों, सम्भव है, कोई और हो। इस अनिश्चित संसार में, परिवर्त्तन शील, अत्यन्त अस्थिर जीवन में यदि किसी बात का पता लगाना कठिनतम है तो वह यही कि व्यक्तित्व-विशेष के विश्राम की जगह कहाँ है। मै स्वयं नहीं जानती कि मेरा प्रियतम कौन है ?'—मारगरेट हँस कर बोली और मिस्टर सिंह इसके उत्तर में क्या कहते हैं, इसे सुनने के लिए उनके मुख की ओर देखने लगी।

मिस्टर सिंह ने देखा कि मारगरेट किसी भी तरह यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है कि उसका श्यामकिशोर के साथ अनन्य प्रेम है। वे चाहते थे कि एक बार गम्भीर होकर मारगरेट अपने प्रेम का रहस्य बतला देती, जिससे फिर कभी इस सम्बन्ध मे कही गयी बात को मजाक कह कर टालने का अवसर न रह जाता। लेकिन दुर्भाग्य से—और सदैव वे पुरुष

ऐसे दुर्भाग्य से पीड़ित रहे हैं जिन्होंने जीवन के सन्ध्याकाल में कुमारियों से प्रेम करने की अदूर-दर्शिता की है— मारगरेट में वह कौशल था जिससे वह गम्भीर से गम्भीर समय में कही गयी बात को उचित अवसर पर दिल्लगी में उड़ाकर सहज ही उसे तो मनोरञ्जन की सामग्री बना ही देती थी, साथ ही हँसी की बात में भी गम्भीरता का दर्शन करने के उपलक्ष्य में मिस्टर सिंह को भी विनोद का सामान बना देती थी।

मिस्टर सिंह को चिन्ताशील देख कर मारगरेट ने उनका जी बहलाने के उद्देश्य से पूछा—'मिस्टर सिंह, क्या आप यह बता सकते हैं कि जीवन में आप ने सबसे अधिक प्रेम किससे किया है?'

मिस्टर सिंह बड़े चक्कर में पड़े। किन्तु प्रश्न रोचक था, इसलिए उत्तर देने में कोई हर्ज न समझ कर बोले—'तुम्हारे प्रश्न ने मेरे हृदय में बहुत सी स्मृतियाँ जगा दीं। आज मैं तुम्हें सत्य ही सत्य बतलाऊँगा। मेरी शादी तो माता-पिता ने अठारह साल की अवस्था ही में कर दी थी, लेकिन स्त्री से मेरा विशेष प्रेम न था। इसमें सन्देह नहीं कि वह सुन्दरी और गुणवती थी, किन्तु प्रेम बाधा-विघ्न के बिना रसीला नहीं होता, और, शरीर तो मैंने अपनी पत्नी को अर्पित किया तथा मन इलाहाबाद में एक तमोलिन की सुघर कुमारी लड़की को, जो मेरे होस्टल के पास ही रहती थी। इस प्रेमबाण से विद्ध होने के समय मेरी अवस्था लगभग बीस सालों की हो गयी थी। मेरी स्त्री जब जीवित थी तब भी मेरे लिए कोई अड़चन नहीं थी; किन्तु जब दो सालों बाद उसका देहान्त हो गया तब तो मैं निर्द्वन्द्व रूप से तमोलिन-कुमारी का उपासक हो गया। उस समय इस लड़की की अवस्था चौदह वर्ष की थी और उस पितृहीना को माता की गरीबी के कारण उसका विवाह नहीं हो रहा था। मायके में

उसका जीवन विषादपूर्ण हो जायगा, यह सोचकर एक दिन हम दोनों चुपके से लखनऊ भाग चले। उससे अधिक मैंने किसी को प्यार नहीं किया; हाँ उसके बराबर ही तुम्हें कर रहा हूँ।'

मा०—'आपने उस तमोलिन से ब्याह किया या नहीं ?'

मि० सिं०—'हिन्दू समाज में रहकर तो नहीं किया। वहाँ कहीं तमोलिन की लड़की और ठाकुर के लड़के का विवाह हो सकता है ? हिन्दुओं की विवाह-व्यवस्था में प्रेम का तो कोई आदर ही नहीं ! हाँ, हम लोग ईसाई हो गये। मृणालिनी हम लोगों की पहली लड़की थी। उसके जन्म के थोड़े ही दिन बाद मुझे डिप्टीकलेक्टरी मिल गयी। पाँच वर्ष बाद एक लड़की फिर हुई। वह बड़ी सुन्दरी थी। उसका चेहरा कमल के फूल की तरह प्रफुल्ल था, इसलिए मैंने उसका नाम 'मेरी कमलिनी' रक्खा था। मेरा सोने का संसार अचानक ही नष्ट हो गया। मेरी कमलिनी कलकत्ते की एक प्रदर्शनी में खो गई, फिर, बहुत ढूँढ़ने पर भी हाथ नहीं आयी। मेरे लिए संसार सूना हो गया। उसके बाद का हाल तुम्हें मालूम ही है; मृणालिनी और मृणालिनी की माँ—दोनों इस संसार से चल बसी। मैंने सब कुछ पाकर सब कुछ गँवा दिया। अब आज मैं तुमसे यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि जैसे यह झरना प्यासे की प्यास मिटा देता है वैसे ही तुम मेरे हृदय की प्यास हर लो।'

'आप की प्यास किस तरह मिटेगी ?'—मारगरेट ने पूछा।

मिस्टर सिंह ने उत्तर दिया—'तुम्हारे साथ विवाह हो जाने से।'

मा०—'आप विवाह को इतना अधिक महत्त्व क्यों दे रहे हैं ? अभी उस दिन मैंने समाचार-पत्र में पढ़ा था, एक दम्पति एक मित्र के यहाँ ठहरे । जब चलने का समय आया, पत्नी ने मित्र के यहाँ से जाना अस्वीकार किया । उस मनचली नारी ने विवाह को जितना महत्त्व दिया उससे अधिक आप क्यों दे रहे हैं ? थोड़े दिन हुए एक लार्ड घराने की पतोहू अपने पति के साथ एक विशेषज्ञ के यहाँ हवाई जहाज चलाना सीखने के लिए गयी थी; उसे इस नवीन मित्र की वधू हो जाने में देर नहीं लगी। विवाह की बात करते समय आप इस बात को क्यों भुला देते हैं कि मैं भी अँगरेज कुमारी हूँ और मैं भी चाहूँ तो साल भर के भीतर विवाह और तलाक के दर्जनों तमाशे दिखा सकती हूँ ?'

मि० सि०—'जो हो, विवाह से जीवन का कुछ आनन्द तो मिल जायगा। फिर तुम्हारे स्वभाव को मैं अच्छी तरह जानता हूँ; यदि तुम मेरे साथ विवाह कर लोगी तो मेरे जीवन भर मुझे नहीं छोड़ोगी।'

मा०—'आप का यह खयाल बिल्कुल गलत है। मैं चाहूँ तो आपसे विवाह करके भी आप को ठग सकती हूँ। रही स्वभाव की बात, सो भी निरर्थक है; मनुष्य का जीवन प्रति पल, प्रति घड़ी परिवर्त्तित होता रहता है; आपको मेरा भी विश्वास न करना चाहिए। शायद आप मेरे हिन्दू धर्म्मानुकूल संस्कारों के कारण मुझसे उचित से अधिक की आशा कर रहे हैं। सच मानिए, आप धोखा खा रहे हैं। मेरे जातीय संस्कार जीवन भर मुझे छोड़ नहीं सकते, मुझे तो यही समझ पड़ता है कि जो आनन्द आपको मृणालिनी देवी की माता के साथ मिल गया वह किसी भी अँगरेज स्त्री से नहीं मिल सकता। वे जन्म से हिन्दू थीं, उनकी नसों में हिन्दुओं के वे मनोहर संस्कार रक्त

के साथ प्रवाहित थे जो पारिवारिक जीवन को मधुर बना देते हैं। ऐसा ही है तो किसी हिंदू स्त्री को ईसाई बनाकर उसके साथ विवाह कर लीजिए।'

मि० सिं०—'चलो हम तुम दोनों हिन्दू हो जायँ'।

मा०—'वाह, यह खूब कही! एक ब्याह के लिए आप ईसाई हुए !! दूसरे के लिए हिन्दू होने को तैयार हैं !!! आप तो हिन्दुओं से बड़ी घृणा करते हैं; फिर क्या अपने से भी घृणा करेंगे ?'

मिस्टर सिंह का कोई भी लासा इस चिड़िया को फँसाने में सफल नहीं हो रहा था; लाचार बहेलिए की विवशता इस समय उनके चेहरे पर अंकित हो रही थी।

मारगरेट फिर बोली—'अच्छा, मिस्टर सिंह, चलिए मेरी और आपकी शादी हो ही जाय। निकट भविष्य में कई जोड़ों का विवाह होगा, चपला और मिस्टर शिवप्रसाद का तथा कमला और दीनानाथ का, चलिए, मेरा आप का जोड़ा भी हो जाय।'

मि० सिं०—'तुम्हारी आँखों में इस समय शरारत भरी हुई है; तुम मुझे बनाने पर तुली हुई हो। शिवप्रसाद तो संसार की किसी भी स्त्री के साथ विवाह नहीं कर सकता; रहे दीनानाथ सो वे भी अपना दूसरा विवाह शायद ही करें, हाँ, वे माँ की आज्ञा को नहीं टाल सकते; यदि माँ ने विवाह के लिए बहुत जोर दे दिया तो बात ही दूसरी है। मेरा और तुम्हारा विवाह भी नहीं हो सकता; अब तुम्हारी तबीयत मजाक करने की हो रही है।'

मारगरेट की तबीयत हँसने को हुई, पर उसने दाँतों को होठों के भीतर दबा रक्खा। अपने को सँभाल कर तथा गम्भीर बन कर उसने कहा—'नहीं, नहीं, मिस्टर सिंह, आप इस तरह

सन्देह करके मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। क्या मैं पूछ सकती हूँ कि मेरे प्रति आपके हृदय में ऐसा सन्देह क्यों उत्पन्न हो रहा है?'

मि० सिं०—'इसलिए कि तुम बाबू श्यामकिशोर को जी से चाहती हो और उन्हें छोड़ कर दूसरे से विवाह नहीं कर सकती।'

मा०—'मेरे चाहने का कोई प्रमाण? प्रेम हो जाने के बाद प्रेमिक और प्रेमिका आपस में पत्र-व्यवहार नहीं करते? आज हम लोगों को यहाँ आये लगभग पचीस दिन हो गये; इस बीच में बाबू श्यामकिशोर के पास मैंने कितने पत्र भेजे? एक तार कमला को भेजा था, उसे आप जानते ही हैं; एक तार आज या कल बाबू श्यामकिशोर को अवश्य देना है; सो, आप की इच्छा हो तो आप ही दे दीजिएगा।'

मि० सिं० 'यदि तुम श्यामकिशोर को इसी तरह भुला सको तो तुम्हारे साथ विवाह करने से बढ़ कर दूसरा कोई पौष्टिक मेरे जीवन के लिए हो नहीं सकता।'

मा०—'भुलाने से क्या मतलब?'

मि० सिंह कुछ कहना चाहते थे,लेकिन कहते हुए झेंपते थे। मारगरेट उनकी इस दुर्बलता को समझ कर बोली—'आप शायद यह चाहते हैं कि मै बाबू श्यामकिशोर से पत्र-व्यवहार न रक्खूँ; शायद यह भी चाहते हों कि मैं उनसे बोलूँ भी नहीं, मिलूँ भी नहीं। इस प्रकार क्या आप मुझे पर्दानशीन औरत बनाना चाहते हैं?'

यह कहने के साथ ही साथ मारगरेट हँस पड़ी।

मिस्टर सिंह की सारी बनी-बनायी बातों की गंभीरता आप ही मारगरेट की हँसी के आईने में निष्प्राण सी दीखने लगी। उनकी कल्पना का महल एक साधारण झोंके ही से धराशायी

होने लगा। एक बात उनके हृदय में अच्छी तरह से धँस गयी और वह यह कि केवल शिवप्रसाद को अमरीका भेजने से काम नहीं चलेगा; श्यामकिशोर को भी अपने रास्ते में से निकाल कर बाहर करना पड़ेगा। उनका चित्त इस विषय पर इतना केन्द्रीभूत हो रहा था कि वहाँ बैठना उन्हें नीरस प्रतीत होने लगा। इसी-लिए उन्होंने आकाश की ओर देखकर कहा – 'मारगरेट, चन्द्रमा अपने पूर्ण सौन्दर्य के साथ आनन्द की वर्षा करने लगा है। जी तो नहीं होता कि यहाँ से अभी चलें; विशेष करके झरने की धारा के भीतर ज्योत्स्ना की चमक तो हृदय को अपनी ओर खींच कर उठने ही नहीं देना चाहती; लेकिन घर पहुँच कर आज कुछ पत्र लिखने हैं; इसलिए, अब चलना ही उचित होगा।'

यह कह कर मिस्टर सिंह उठ कर खड़े हो गये। मारगरेट ने भी अनुसरण किया। साधारण बातचीत करते हुए दोनों निवासस्थान पर आये। इस बीच में मारगरेट ने मिस्टर सिंह में एक विचित्र निश्चिंतता का भाव देखा। वह मिस्टर सिंह को बहुत अधिक आशान्वित नहीं करना चाहती थी; लेकिन साथ ही उन्हें सर्वथा निराश भी नहीं करना चाहती थी। उसकी समझ में मिस्टर सिंह की निश्चिन्तता का उद्गम उनकी निराशा ही से हो सकता था; यह देख कर वह स्वयं कुछ निराश हुई।

कमरे में प्रवेश करते ही मारगरेट ने मिस्टर सिंह के कंधे से लग कर कहा—'मिस्टर सिंह, मैं आप के हृदय को दुखाना नहीं चाहती, मैं आप से ब्याह कर लूँगी; लेकिन उसकी एक शर्त है।'

'सो क्या'—अत्यन्त प्रसन्न होकर मुस्कराते हुए मिस्टर सिंह ने कहा।

मारगरेट बोली—'आप श्यामकिशोर को अपने मार्ग में से हटा दीजिए।'

उन्होंने पहले ही अपने प्रेम के सबसे बड़े प्रतिद्वंदी को मार्ग में से निकाल कर अलग करने का रास्ता मन ही मन सोच लिया था। इसी से वे मनही मन सन्तुष्ट भी होने लगे।

मिस्टर सिहने आश्चर्य-सागर में डूब कर मारगरेट की ओर देखा। मारगरेट और कुछ नहीं बोली; कोच पर जाकर लेट गयी।

[२७]

गर्मी से सताये हुए फूलों और लताओं का निरीक्षण करते हुये दीनानाथ सन्ध्या समय अपने नये बंगले के बाग में टहल रहे थे। लू अब भी चल रही थी, लेकिन बाग में कुछ ठंढक हो गयी थी; बाग के भीतर नीम का एक पुराना पेड़ पड़ गया था; उससे दीनानाथ का गरमी का बहुत कुछ कष्ट हलका हो रहा था। इस पेड़ के नीचे दीनानाथ ने एक बड़ी सी कुर्सी, जिस पर अनेक आदमी बैठ सके, रखवा दी थी।

दीनानाथ कुछ देर टहल कर इसी कुर्सी पर बैठ गये। पास ही शिवराम फूलों की एक क्यारी की मिट्टी ठीक कर रहा था। एक बार उसने सिर उठा कर दीनानाथ की ओर देखा; उनकी दृष्टि उसी के काम पर थी। उनसे बातचीत का अच्छा समय उपस्थित देखकर उसने अपने काम में कोई रुकावट न डालते हुए कहा—'आप से एक बात कहनी है।'

दीनानाथ ने तुरंत ही उत्तर दिया—'कहो।' उनके चेहरे पर कुछ उत्कण्ठा का भाव दिखायी पड़ने लगा। वे जानते थे कि शिवराम जब कहेगा अपने स्वार्थ की नहीं मेरे ही काम की कोई बात कहेगा; उनकी अधिक उत्सुकता का यही प्रधान कारण था।

शि०—'अम्मा जी को रसोई बनाने में बड़ी तकलीफ हो रही है।'

दी०—'उस तकलीफ को घटाने का कोई उपाय भी है?'

शिव०—'उपाय तो है, लेकिन जब आप करें तब। आप एक दूसरा विवाह कर ले।'

दी०—'क्या तुम समझते हो कि की माँ ऐसी स्त्री मुझे फिर मिल सकती है?'

शि०—'ना बाबू जी, अब वैसी देवी कहाँ से मिल सकेगी'। फिर भी अच्छे घराने की कोई बहू आ जायगी तो आप की गृहस्थी हरी-भरी हो जायगी।'

'लेकिन एक बात याद रखिएगा, बाबू जी," शिवराम ने काम रोक कर और सिर उठा कर कहा, "सब जगह ब्याह की बातचीत चलाइएगा, केवल चपला और कमला बीबी के सम्बंध में स्वप्न में भी न विचार करिएगा। इनमें भी चपला बीबी के साथ आप ब्याह कर लेंगे तो यह घर बरबाद हो जायगा।'

दी०—'तुम्हें यह कैसे शंका हो गयी कि मैं चपला के साथ ब्याह करना पसंद कर लूँगा? वह लड़कपन से मुझे चाचा कहती आयी है; मैं भी उसे लड़की की तरह मानता रहा हूँ!'

शि०—'नहीं, अगर डिप्टीसाहब ही के परिबार में आप को ब्याह करना हो तो कमला बीबी से कर लीजिए।'

दी०—'अरे भाई, मैं तो ब्याह ही नहीं करना चाहता। कैसी चपला और कैसी कमला!'

शि०—'नही ब्याह से तो आप बच नहीं सकते। लल्लू चार छः बरस के होते तब और बात होती; इतने नन्हें से बच्चे को सँभालने के लिए एक माँ तो चाहिए ही। मैंने इलाहाबाद में देखा कि कमला बीबी को बच्चों से बड़ा प्रेम है।

देखिए,आपकी बीमारी में उन्होंने आप ही की कितनी सेवा की; उससे अधिक सेवा वे लल्लू की करती थीं।'

दी०—'कमला तो एक विचित्र लड़की है; उसके बड़े ऊँचे विचार हैं।'

इस समय डाकिया एक लिफाफा दीनानाथ के हाथ में देकर चला गया। उन्होंने खोल कर पढ़ना शुरू किया; यह कमला का पत्र था—

पूज्यवर;

प्रणाम

परीक्षा-फल प्रगट होने के बाद मैंने बाबू जी के सामने अपने भविष्य जीवन का कार्य्य-क्रम रक्खा। उन्होंने मेरे अनुरोध को स्वीकार कर लिया है। प्रमाण-रूप में वही पत्र भेज रही हूँ जिसे उन्होंने मेरे पत्र के उत्तर में लिखा और बाबू श्यामकिशोर के हाथ से मेरे पास भेजा। अब आप कृपा करके मेरे लिए उद्योग कर दीजिए, जिससे मैं वहाँ शीघ्र ही आ सकूँ।

आज लगभग तीन बजे मारगरेट का तार आया है, बाबू श्यामकिशोर एल एल० बी०, प्रथम वर्ष, की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो गये।

बादलों के आ जाने से गर्मी कुछ घटी है; लेकिन उसका स्थान ऊमस ने ले लिया है। यहाँ बाबू जी, अम्मा जी, चपला आदि सभी लोग अच्छी तरह हैं।

आशा है, अम्मा जी, आप और लल्लू सभी लोग सकुशल हैं।

आपकी अनुचरी—
कमला

दीनानाथ ने पत्र पढ़ने के बाद शिवराम से कहा—'कमला तो यहाँ बहुत शीघ्र आ जायगी। वह यहाँ लड़कियों को पढ़ाना चाहती है।

शि०—'बहुत अच्छा है, बाबू जी, उन्हें आप बुला लीजिए।

यह कह कर और दीनानाथ को उठते देखकर शिवराम ने बातचीत समाप्त कर दी और अपने काम में पूरा ध्यान लगाया।

शीघ्र ही शौच स्नानादि से निवृत्त होकर दीनानाथ रेशमी कुर्ता, सुन्दर अहमदाबादी धोती तथा गाँधी कैप पहन कर और पाँवों मे चप्पल डालकर महिला-विद्यालय के सभापति के पास गये। उनकी स्वीकृति मिल जाने पर दूसरे ही दिन उन्होंने स्थान-सहित १५०) मासिक वेतन पर काम करने के लिए विद्यालय कार्य-कारिणी समिति की ओर से एक अनुरोध-पत्र कमला के पास भेज दिया।

एक सप्ताह के भीतर कमला लखनऊ में आ गयी।

[२८]

शिवप्रसाद ने निराश हो जाने के बाद से चपला ऐसा अनुभव करने लगी जैसे संसार उसके लिए सूना हो गया हो। टटोल कर देखा तो उसे मालूम हुआ कि उसने केवल शिवप्रसाद ही को नहीं, आत्मविश्वास को भी खो दिया है। अपने सौन्दर्य और लावण्य की बात वह कैसे स्वीकार कर सकती थी जब अपने जीवन के प्रभात-काल ही में वह इस प्रकार असफल हो गयी? वह कमरा बंद करके संसार की सुन्दरियों के रूप से अपने रूप की तुलना करती थी; उनके बाल, उनकी आंख, उनकी नाक, उनके होंठ और उनके दाँत का अपने इन्हीं अंगों से मिलान करती और अंत में अपने में कोई ऐब न पाकर भी अपनी आँखों को पक्षपात का दोष लगा देती थी। अपने हृदय के एक एक कोने को वह बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देखने

की कोशिश करती और कहीं भी शिवप्रसाद के प्रति प्रेम में कमी न पाकर अनुभवी लोगों के इस कथन पर विश्वास न करती कि सच्चा प्रेम कभी निष्फल नहीं होता। वह तरह तरह से अपनी लज्जा का निवारण करना चाहती थी; किन्तु मनुष्यों की कौन कहे, पशुओं और पक्षियों के सामने भी उसका सिर नीचा हो जाता था। नारी की सब से बड़ी विजय है प्रियतम को अपनी इच्छा का दास बना लेने में; इसी विजय से रहित होकर जैसे उसने जीवन का केन्द्र ही खो दिया था; जीवित रहने का अधिकार ही गँवा दिया था। उसका सारा अभिमान चूर्ण चूर्ण हो कर मिट्टी में मिल गया था। क्रोध कर के भी तो वह अपने जी को बहला नहीं पाती थी; क्रोध का भाव आते ही उसके हृदय में न जाने कौन हाहाकार मचा देता और दीपक पर प्राण निछावर करने वाले पतंग की याद दिला कर पूछता क्या तुम्हारा प्रेम वास्तव में सच्चा नहीं है; क्या तुम अपने प्राणेश्वर की इच्छा की वेदी पर अपना बलिदान नहीं कर सकतीं? इस प्रश्न के सामने चपला निरुत्तर हो जाती थी और क्रमशः सदा की अल्हड़ और लापरवाह यह लड़की प्रणय की पोथी का प्रथम पाठ जीवन-बलिदान के रूप में पढ़ने लगी।

चपला प्रेम के ऊँचे आदर्श के नीचे दबी जा रही थी। दिन रात वह यही सोचती कि हो न हो शिवप्रसाद ने मुझमें सच्चे प्रेम का अभाव देखा और उसी कारण मेरा त्याग कर दिया; क्योंकि यदि मैं उनसे सत्य अनुराग करती हूँ तो उनके प्रति संयम और क्षमा का भाव मेरे हृदय में क्यों नहीं है? त्याग का इतना अधिक महत्त्व उसने कभी समझा नहीं था और अपनी इसी अयोग्यता और असमर्थता को अवलम्ब बनाकर वह अपने प्रियतम को दोष से मुक्त किया करती थी।

परन्तु चपला के हृदय की यह स्थिति अधिक समय तक नहीं टिकी। आदर्शवाद का चाबुक उसके मन रूपी घोड़े को कुछ दूर तक, कुछ समय तक चला सका; किन्तु शिवप्रसाद के व्यवहार में एक त्रुटि का अनुसंधान करते ही उसका अपमानित नारीत्व कुचले हुए सर्प की भाँति फुंकार कर उठा। उसने अपने ही आपसे पूछा—'यदि शिवप्रसाद को मेरे साथ विवाह नहीं करना था तो मेरे सामने प्रेम का ढोंग खड़ा करके उन्हें इतनी घनिष्ठता बढ़ाने की क्या आवश्यकता थी? हिन्दू समाज के स्वभाव को जानते हुए भी एक प्रतिष्ठित कुल की हिन्दू कुमारी के जीवन के साथ खिलवाड़ करने का उन्हें क्या अधिकार था? क्या उन्होंने उस उत्तरदायित्व की भावना के साथ काम किया जो एक सुशिक्षित व्यक्ति में अनिवार्य रूप से होना चाहिए? इन प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर था---नहीं। इसी 'नहीं' ने चपला में, मृत चपला में, फिर से जीवन-सचार किया। उसके आहत आत्म-सम्मान ने रोषमयी वाणी में पूछा—तो शिवप्रसाद के इस दुर्व्यवहार का प्रतीकार क्या है? क्या शिवप्रसाद से इस अनिष्ट का बदला न लेना चाहिए?

बदला? प्रतिहिंसा? इन शब्दों के रौद्र रूप को देख कर और इनके उदर के भीतर की संहार-लीला की कल्पना करके चपला का सुकुमार हृदय काँप उठा। जिससे प्रेम किया; जिसको सर्वस्व समर्पण किया उसी को हानि पहुँचाने का प्रयत्न करके एक प्रेमिका कैसे प्रसन्न हो सकती है? चपला निष्ठुर नहीं थी; वह इतने से ही सन्तुष्ट थी कि शिवप्रसाद का एक अपराध वह स्थापित कर सकी थी। कुछ समय के बाद वह इतनी उदार होने की भी कोशिश करने लगी कि अपने प्रेमपात्र को इस अपराध के लिए भी क्षमा कर दे; किन्तु उसे इतनी कड़ी चोट लगी थी कि इतने ऊँचे चढ़ने में वह असमर्थ हो गयी।

पानी अपने प्रवाह का पथ स्वयं ही परिष्कृत कर लेता है; इसी तरह मानव-हृदय की वेदनाएँ भी, प्रकृति के किसी अज्ञेय नियमानुसार, अपनी शान्ति का मार्ग आविष्कृत कर लेती हैं। चपला के हृदय के भीतर की उदारता तथा रोष का पारस्परिक संघर्ष तब तक पारस्परिक विजय और पराजय की क्षणिकता तथा क्षण-भंगुरता के साथ चलता रहा जब तक उसने शिवप्रसाद से—अपने हृदयेश्वर से बदला लेने का एक उपाय ढूँढ़ नहीं लिया। शिवप्रसाद का किसी तरह बाल बाँका हो, इस भाव को वह कल्पना में भी नहीं ला सकती थी; किन्तु उनके हृदय को उतनी ही चोट पहुँचाने में उसने कोई हानि नहीं देखी जितनी चोट उन्होंने उसके हृदय को पहुँचायी थी। यह सोचते सोचते उसकी आत्म-शक्ति जागृत होने लगी और वह अपनी उस भयंकर भूल पर पछताने लगी जो स्वयं को शिवप्रसाद की दृष्टि में बहुत सुलभ बनाकर उसने की थी; इसी भूल के ज्ञान में आज उसे अपनी सम्पूर्ण असफलता के रहस्य का परिचय मिल गया और उसका उत्सुक हृदय अपनी उस भाग्यवान परिस्थिति की कामना करने लगा जब शिवप्रसाद को पूर्ण रूप से अपने हाथ की कठपुतली बनाकर वह भी उनके साथ वैसा ही निर्दय व्यवहार कर सकेगी जैसा उन्होंने उसके साथ किया था। किन्तु ऐसे समय और अवसर के सुदूर होने की उसे उतनी ही प्रखर आशंका भी थी जितनी उसकी वर्त्तमान पीड़ा असह्य थी।

दीनानाथ को चोट लगी, उनका इलाज हुआ और लगभग तीन सप्ताह तक प्रयाग में रह कर वे लखनऊ चले गये—यह सब चपला के लिए एक स्वप्न ही की तरह था; जब तक उसके दर्द के लिए ठीक ठीक मलहम का पता नहीं चल गया था तब तक उसकी अवस्था विक्षिप्त की सी बनी रही। जो हो, जिस

दिन संध्या समय उसके हाथ में रमदेइया ने बाबू रघुनाथप्रसाद का एक पत्र लाकर रख दिया उस समय उसका चित्त कुछ स्वस्थ हो चला था और किसी विषय पर ठीक तौर से विचार कर सकता था। चपला लिफाफे में से चिट्ठी निकाल कर पढ़ने लगी, उसमें बाबू रघुनाथप्रसाद ने इस प्रकार लिखा था:—

प्रिय बेटी चपला;

तुम्हारे विवाह के सम्बन्ध में मैंने शिवप्रसाद को जो पत्र भेजा था उसे उनके उत्तर समेत मैंने तुम्हारे पास, कई सप्ताहों पहले ही, पहुँचा दिया था। आशा है, इस बीच में तुमने अपना कुछ विचार स्थिर कर लिया होगा। तुम्हारी अवस्था अब उन्नीस वर्ष की हो रही है और तुम्हारा विवाह अब अधिक समय तक रुक नहीं सकता। मैं इसी साल, दिसम्बर तक, तुम्हारा विवाह कर डालना चाहता हूँ; समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए यह बहुत आवश्यक है। फिर भी, तुम यह तो देख ही रही हो कि मैंने कमला की आपत्ति को स्वीकार करके उसे अविवाहित रहने देना ही स्वीकार कर लिया है; यद्यपि साथ ही मै तुम्हें यह भी बता देना चाहता हूँ कि तुम्हारी परिस्थिति कमला की परिस्थिति नहीं है और तुम्हें अपने उस प्यारे पिता की इच्छाओं का भी कुछ खयाल रखना चाहिए जो तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति और तुम्हारा जीवन सुखमय बनाने की चेष्टा करने में तनिक भी कसर नहीं करता। मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि बा० दीनानाथ के साथ विवाह करने में तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं है ?

तुम्हारा प्यारा पिता
रघुनाथप्रसाद

इस पत्र को चपला ने दो बार पढ़ा और तुरन्त ही इस प्रकार उत्तर लिख दिया—

पूज्य बाबू जी;

मुझे बाबू दीनानाथ के साथ विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं है।

आपकी आज्ञाकारिणी
कन्या,
चपला

इस चिट्ठी को लिफाफे में बंद कर के चपला ने ट्रंक के भीतर रख दिया। इसके बाद वह छत पर टहलने चली गयी।

× × ×

सवेरे रमवेइया के हाथ से चपला का पत्र पाते ही बाबू दीनानाथ ने गायत्री देवी का अनुकूलता समझ कर दीनानाथ के नाम पत्र लिख दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने गायत्री देवी को समझा-बुझा कर उनसे एक पत्र करुणा देवी के नाम भी भेजवा दिया तथा उस पत्र में श्यामकिशोर के शीघ्र जाने की सूचना भी दे दी।

[२६]

कमला प्रयाग से आने के बाद कई दिनों तक तो प्रारम्भिक प्रबंधों में ऐसी व्यस्त रही कि तीन चार दिन के पहले वह दीनानाथ के घर पर न जा सकी; यद्यपि इस बीच में स्वयं दीनानाथ कमला की व्यवस्था ठीक करने के उद्देश्य से कई बार आये। आने के पाँचवे दिन सवेरे लगभग ७ बजे कमला दीनानाथ के यहाँ गयी। उस समय वे अपने कमरे में बैठे 'गीता-रहस्य' के पन्ने उलट रहे थे। बिजली का पंखा कमरे में से गर्मी के कष्ट को हवा कर रहा था।

कमला नमस्कार करके सामने बेंच पर बैठ गयी।

कमला का स्वागत करने के बाद दीनानाथ ने पूछा—

'कमला, तुम्हें लखनऊ कैसा लग रहा है ? तुम्हारी तबियत लग रहीं है या नहीं ?'

क०—'तबियत तो लगाने ही के लिए आयी हूँ। लखनऊ से तो मैं प्रयाग को हर हालत में अच्छा समझती हूँ। यहाँ तो हर वस्तु से विलासिता की बू आती है। मेरी निगाह में प्रयाग और लखनऊ में बड़ा अन्तर है; इस नगर का संस्कार नवाबों की लौकिक विभूति और वासना ने किया है और प्रयाग का संस्कार गंगा और यमुना की पवित्र धारा ने किया है;इस नगर का विकृत रूप प्रयाग के प्रकृत स्वरूप की तुलना नहीं कर सकता। किन्तु मैं तो इसे प्रयाग की अपेक्षा अधिक चाहूँगी ही; क्योंकि, इसने मुझे कार्य-क्षेत्र दिया है। अभी विद्यालय के खुलने में कितने दिनों की देर है ?'

दी०—'लगभग एक सप्ताह की। सात जुलाई को वह खुल जायगा। दो तीन दिन और बीतते-बीतते तक अन्य कई अध्यापिकाएँ आ जाएँगी और अब तुम्हारी तबियत लगने लगेगी। तुम्हें तो स्टेशन से यहीं चले आना चाहिए था; व्यर्थ ही अभी तुम वहाँ चली गयीं।'

क०—'तब तक मेरी इच्छा है कि आप से कुछ गीता पढ़ लूं।'

दी०—'हाँ, हाँ, मुझे तो गीता बड़ी प्रिय है।'

इसी समय करुणा देवी भीतर से बैठक में आगयीं। कृष्णकुमार रो रो कर आसमान सिर पर उठाये था; उसे दीननाथ को देना था। उन्हें देखते ही कमला ने उठ कर आदर से प्रणाम किया और मधुर हँसी तथा उससे भी मधुर प्यार के साथ कृष्णकुमार को गोद में ले लिया। कमला की गोद में जाते ही बच्चा सचमुच चुप हो गया—यह देख कर करुणा देवी और दीनानाथ दोनों हँसने लगे।

करुणा देवी ने कहा—'बेटी, तू यहाँ कितने देर से आयी है ? मुझे बताया तक नहीं। मैं संयोग से यहाँ न आती तो शायद मुझसे भेंट भो न होती। बाहर हो बाहर बातें करके चल देती। चल कुछ पानी तो पी ले।'

'अभी तो आ ही रही हूँ, माँ जी।'—कमला ने शरमाते हुए कहा। उसके कपोलों पर लाली दौड़ गयी। कृष्णाकुमार को गोद लिये, सिर जरा सा नीचा किये, वह संकोच और सुशीलता की मूर्त्ति सी करुणा देवी के पीछे पीछे मकान के अन्दर चली गयी।

शाक-भाजी लेने के लिए बाहर गई हुई बूढ़ी महरी सरूपा इसी समय पहुँच गई। उसके साथ थोड़ी देर तक झाँव-झाँव कर लेने के बाद करुणा देवी ने कुछ नमकीन और कुछ मिठाई दो तश्तरियों में लाकर एक तिपाई पर रख दी और जब तक कमला ने कृष्णाकुमार को शिवराम की गोद में देकर उसे ग्रहण करना शुरू नहीं किया तब तक उसकी नाक में दम कर रक्खा।

जहाँ कमला बरामदे में बैठी थी उसके ठीक सामने ही शिवराम की लापरवाही से कुछ रद्दी बटोरन पड़ा रह गया था। भैया की सीधाई से ये नौकर सिर पर चढ़ गये हैं, कोई भी काम ठीक ठीक नहीं करते—आदि बड़बड़ाती हुई हुई करुणा देवी ने अपने ही हाथ में झाड़ू लेकर उस जगह को साफ कर दिया। बेचारा शिवराम जमीन में गड़-सा गया।

कमला जलपान करने लगी तो करुणा देवी ने हँस कर कहा—'बेटी, अब तो हमारे भैया के विवाह की बातचीत शुरू हो गई। कल बा० रघुनाथप्रसाद की चिट्ठी भैया के और गायत्री देवी की चिट्ठी मेरे पास आयी है। श्याम-

किशोर भी शीघ्र ही आ रहे हैं। अगहन के इधर तो अब बनेगा नहीं।

कमला को न जाने क्यों यह अच्छा नही लगा। फिर भी उसने मधुर मुसकराहट के साथ कहा—'तो क्या बहू मिलने की खुशी ही में मेरा यह सत्कार कर रही हो अम्मा? या हर रोज मुझे ये चीजें मिलेगी।'

करु०—'बेटी, अब शरीर में ताकत रह नहीं गई। भैया के लिए रोज भोजन तो बनाना ही पड़ता है। रसोइया वगैरह के हाथ का खाना मुझे पसन्द नही। इतने ही में छठ्ठी की याद हो आती है। कल बड़ी हिम्मत करके ये थोड़ी-सी मिठाइयाँ और नमकीन बना लिये थे। कुछ न कुछ तो पानी पीने के लिए तुझे हमेशा मिलता रहेगा। लेकिन इतनी चटोरी तू कब से हो गयी? इलाहाबाद में तो मै देखती थी कि काम-धाम के पीछे तू रोटी खाना भी भूली रहती थी।'

शीघ्र ही जल-पान से निवृत्त होकर कमला ने शिवराम की गोद से कृष्णकुमार को फिर ले लिया। वह कभी करुणा-देवी की स्नेहमयी मुखमुद्रा की ओर और कभी कमला के मुसकराते हुए चेहरे की ओर मुग्धभाव से निहारने में दत्त-चित्त था।

इसी समय श्यामकिशोर भी स्टेशन से आ गये। उन्हें देख कर कमला और करुणादेवी दोनों प्रसन्न हो गयीं। थोड़ी देर के लिए घर में बड़ी चहल-पहल हो गयी। बाबू दीनानाथ को बाहर भीतर कहीं न देख कर श्यामकिशोर ने कहा—'अम्मा, दीना बाबू को कहाँ भेज दिया?'

करु०—'बेटा, अभी अभी तो बैठक में थे, मैं कमला को लेकर इधर चली आई, जान पड़ता है तभी कहीं चल दिये।

विवाह की वातचीत से भैया वहुत घवरा गये हैं। उनका अगर वस चले तो संसार से कहीं उड़ जायँ।'

श्या०—'अम्मा, जव तक आप जोर न देंगी तव तक दीना वावू का विवाह के लिए राजी होना कठिन वात है। और मैं यह कहूँगा कि आप के हित के लिए तथा इस छोटे वच्चे कृष्ण-कुमार की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि उनका विवाह हो जाय।'

करु०—'तुम समझा किसे रहे हो ? मैं तो स्वयं ही तुम्हारी अम्मा से वात लेकर आयी हूँ कि चपला का विवाह भैया ही के साथ हो। तुम जानते ही हो वेटा, जितना अधिक चपला को वे प्यार करते आ रहे हैं उतना संसार में माता-पिता अथवा भाई को छोड़ कर और कोई नहीं कर सकता। उनके साथ चपला को वहुत सुख मिलेगा।'

श्या०—'अम्मा की चिट्ठी तो आपको मिली ही होगी; उसके सिवा उन्होंने चलते समय मुझसे कहा है कि मेरी ओर से माँ जी से वार वार प्रार्थना करना कि अगहन में व्याह अवश्य हो जाय।'

करु०—'सो तो अव तुम पक्का ही समझो। लेकिन मेरी एक वात तुम्हें माननी पड़ेगी।'

श्यामकिशोर ने मुस्करा कर कहा—'माँ जी, आप घूस कव से लेने लगीं ? खैर, अगर शक्ति के भीतर होगा तो आप की आज्ञा का उल्लंघन नहीं होने पावेगा।'

करु०—'मैं तुम्हारी शक्ति के भीतर ही की वात कहूँगी।'।

श्या० 'तो कह भी डालो।'

करु०—'अगहन ही में मैं तुम्हारा व्याह कमला के साथ भी कराऊँगी। मेरी कमला वेटी तुम्हारे ही योग्य है।'

कमला लजा कर वहाँ से भाग गयी। श्यामकिशोर भी

शरमा गये। थोड़ी देर के बाद बोले—'माँ जी, तुम दीना बाबू के ब्याह की चिन्ता करो; मेरे लिए चिन्ता करना छोड़ दो।'

करु०—'बेटा, तुम्हारे बाबू जी और अम्मा जी का तो देख लिया। तुम्हारी उम्र २४-२५ बर्ष की होने आयी; लेकिन अभी तक वे कान में तेल डाले पड़े हैं। मेरे भैया की शादी तो अठारह साल ही में हो गयी थी। दूसरी बात यह कि चपला का ब्याह हो जाय और उससे बड़ी कमला क्वाँरी ही पड़ी रहे—यह देखने में अच्छा नहीं लगता। मैं गायत्री देवी को चिट्ठी लिख कर दूँगी; तुम लेते जाना।'

श्या०—'डाक से भेज दीजिएगा। मेरी ही शादी, मैं ही चिट्ठी लेकर जाऊँ, अम्मा अपने मन में क्या कहेंगी!'

करु०—'अच्छा, मैं ही लिखूँगा।'

श्या०—'लेकिन अम्मा, मैं तो शादी ही नहीं करना चाहता,' लिखोगी क्या?'

करु०—'अच्छा, अच्छा, तेरी इन झूठी बातों को मैं अच्छी तरह समझती हूँ।'

यह कह कर करुणा देवी हँसने लगीं।

श्यामकिशोर मुस्कराते हुए बैठक की ओर यह देखने के लिए चले गये कि दीना बाबू आये या नहीं।

श्यामकिशोर के चले जाने के बाद कमला फिर करुणा देवी के पास आ गई और एक झोंक के साथ बनावटी रोष दिखाती हुई बोली—'अम्मा, जान पड़ता है, तुम मुझे अपने घर आने देना नहीं चाहती हो!'

करुणा देवी ने आश्चर्य में डूब कर कहा—'क्यों बेटी मुझसे क्या चूक हो गई जो तू ऐसा समझ रही है? सच बात तो यह है कि मैं तुझ से इस घर में हमेशा रहने के लिए कहने वाली थी और कहने का मौका ही ढूँढ़ रही थी। कारण यह

कि जब साँझ को भैया घूमने चले जाते हैं और कई घंटों तक बाहर रहते हैं तब मुझे ऐसा जान पड़ने लगता है जैसे यह महाकाय मकान मुझे ही निगल जाने को मुँह बाये खड़ा है। मेरी भोली बेटी, भला सोच तो सही कि कहाँ तो मैं तुझे अपनी साथिन बनाने की फिक्र में हूँ और कहाँ तू कहती है कि मैं तुझे अपने यहाँ आने देना नहीं चाहती।'

करुणा-माँ की प्यार-भरी बातों ने कमला को शीतल कर दिया, फिर भी भौंहों पर थोड़ा बल देती हुई वह कुछ धीमे स्वर में बोली—'माँ, न आने देने के अनेक ढंग होते हैं। जब तुम मुझे इस तरह गालियाँ दोगी तो क्या मैं मुँह में कालिख पोतने के लिए आया करूँगी।'

करुणा देवी ने सिर हिला कर कहा—'अच्छा, अब समझी। उसी ब्याह वाली बात पर तू इतना बिगड़ रही है? बेटी ब्याह की चर्चा करना गाली देना तो नहीं है। न अब श्यामकिशोर ही लड़का है और न तू ही दूध-पीती छोकरी है। तुम लोगों की शादी-ब्याह की चर्चा न होगी तो किसकी होगी? इतनी उम्र में क्वाँरा और क्वाँरी बने रहना अच्छा नहीं लगता, रानी। देख, बच्चों के लिए हृदय में इतना प्यार रखकर अगर तू बच्चों की माँ होने से इनकार करेगी तो मुझसे नहीं सहा जायगा। कृष्णकुमार तेरी गोदी में पहुँचते ही सो गया। उसे पालने में लिटा दे। आज उसकी देह कुछ गरम हो रही है।'

कमला उठी और कृष्णकुमार को पालने में लिटा आकर फिर करुणा देवी के पास बैठती हुई बोली, 'माँ जी, मैं तो अपनी सारी उम्र पढ़ाने और पढ़ने में व्यतीत करूँगी, मुझे विवाह करना बड़ा बुरा लगता है।

करु०—'वाह री विवाह से डरने वाली! पढ़ाने और पढ़ने वाली!! बहुतों को देख लिया, अब तेरी बाकी है। यही जो गीता

पढ़ लिया करती है, क्या उसी से तू समझती है कि जीवन यों ही बीत जायगा ? बेटी, यह संसार महा कठिन है; इससे ठट्ठा करना ठीक नहीं, जो इससे ठट्ठा करते हैं उन्हें यह ऐसा छकाता है कि वे भी याद कर-जाते हैं।'—थोड़ी ही दूरी पर चूल्हे की की मंद पड़ती हुई आग को ठीक करने के लिए जाते हुए करुणा देवी ने कहा।

कलछी से दाल चला कर, नमक, मसाला आदि डाल कर तथा बटलोही का मुँह कटोरी से बंद करके वे ज्योंही लौटीं, कमला ने कहा—'तो क्या संसार कोई राक्षस है, अम्मा ? तुम मुझे उसका घर बता दो तो उसके छकाने के पहले मैं ही उसे छका आऊँ। सोते समय उसके गले में फाँसी लगा दूँ, मर जाय।'

यह कह कर ताली बजाकर वह बड़े जोर से हँस पड़ी।

करुणा देवी ने प्यार भरे तिरस्कार के साथ कहा—'जा हट, तेरा लड़कपन और भोलापन न जायगा, ऐसे ही तू लड़कियों को पढ़ावेगी भी। मेरा बस चले तो तुझे तो एक कलम से खारिज कर दूँ। ये दई मारे विद्यालय वाले इतना भी नहीं समझते कि यह लड़की किसी कमजोर बूढ़ी सास की सेवा में रहने योग्य है या जवान तन्दुरुस्त लड़कियों को ए० बी० सी० डी० बोलना सिखा कर समय और जिंदगी बरबाद कर देने लायक। आ तो बेटी, जरा मेरे बालों में तेल डाल दे।'

करुणा देवी की आज्ञा पाकर सरूपा महरी एक कोसे में तिल्ली का तेल दे गई। कमला सिर दबाने लगी।

कमला के कोमल कर-स्पर्श का सुख अनुभव करके करुणा देवी ने कहा—'बेटी, आज कितने दिन बाद मुझे ऐसा आनन्द मिल रहा है। प्रयाग से लौटने के बाद इस अभागे सिर को यह आराम नहीं मिला। क्यों बेटी, मैं सच कहती

हूँ, अगर तू मेरे ही घर पर रहा करे तो तुझे क्या कष्ट हो सकता है ?'

कमला ने फिर हास्य के उद्देश्य से पूछा—'माँ तुमने जो मिठाई खिलाई सो वह घूस थी या मेरी मेहमानी ?'

करुणा देवी ने हँस कर उत्तर दिया—'कमला, मैंने तो यही सुना था और प्रयाग में भी यही जाना कि तू बड़ी शान्त लड़की है; लेकिन आज यहाँ मै देख रही हूँ कि तू कम नटखट नहीं है।'

क०—'अम्मा तुम मुझे बेटी कहती हो, इसीलिए मैं तुम्हारे साथ नटखटपन करती हूँ और यदि तुम्हें मेरा नटखटपन असह्य न हो तो मै यहाँ रहने को तैयार हूँ। हाँ, यहाँ रहना होगा तो एक बात मुझे बता देना कि प्रोफेसर साहब को मैं अब से क्या कहूँ; क्योंकि उनकी शादी अब चपला से होने वाली है।'

करुणा देवी ने हँस कर कहा—'हाँ, हाँ, कमला! यह तुझे खूब सूझी ! तू उन्हें अब जीजा कहा कर। भैया चिढ़ेंगे तो बहुत, लेकिन कुछ हर्ज नहीं; मै तेरा पक्ष लूँगी।'

लगभग आध घंटे बाद दीनानाथ और श्यामकिशोर ने घर में प्रवेश किया। कमला को देखकर दीनानाथ बोले—'अम्मा, यह क्या ! कमला को तुमने अभी जाने नहीं दिया।'

करुणा देवी ने उत्तर दिया—'भैया कमला को नहीं जाने दूँगी। जैसे बोर्डिंग में रहेगी वैसे ही यहाँ भी रहे, इसे किसी तरह का क्लेश नहीं होने दूँगी।।'

दी०—'यह तो सब सही,तुम तो उसे आँखों की पुतली बना कर रक्खोगी, परन्तु उसकी क्या इच्छा है ? वह कोई बच्ची तो है नहीं कि अपना लाभ या हानि न सोच सके।'

करुणा देवी ने उत्तर दिया—'वह तो यहाँ रहने के लिए तैयार है; परन्तु पूछती है कि यदि वह तुम्हें जीजा कह कर पुकारे तो तुम चिढ़ोगे तो नहीं।'

इसका उत्तर न देकर तथा चेहरे पर आये हुए सरल भाव को गम्भीरता में परिणत करते हुए दीनानाथ ने बात टाल कर कहा—'भोजन में कितनी देर है ?'

करुणा देवी ने पूछा— 'क्यों, क्या भूख लगी है? अभी कृष्णकुमार सोया है; शाक बनाना है; दाल में थोड़ी सी कसर है, बस एक घंटे में सब तैयार हुआ जाता है।'

कृष्णकुमार जहाँ सोया था वहीं जाकर दीनानाथ चारपाई पर लेट गये। सोते हुए बालक की मुख-मुद्रा में निश्चिन्तता का भाव देख कर दीनानाथ मुग्ध हो गये और वात्सल्य-भाव से उसके सिर पर हाथ फेरने लगे। किन्तु ऐसा करते ही उन्हें मालूम हुआ कि बच्चे को ज्वर चढ़ आया है। उन्होंने कहा— 'माँ, कुमार को तो जुकाम की वजह से ज्वर हो आया है। ऋतु बदल रही है, तुमने लापरवाही की।'

बातों को ज्यों का त्यों छोड़ कर करुणा देवी बच्चे के पास दौड़ीं। पीछे पीछे कमला भी आई। बच्चे का मस्तक तवे की तरह जल रहा था।

\+ \+ \+ \+

शाम की गाड़ी से श्यामकिशोर इलाहाबाद वापिस चले गये।

दीनानाथ से कोई उत्तर न पाने पर भी केवल करुणा देवी की स्वीकृति से वे सन्तुष्ट थे। एक सप्ताह बाद मिस्टर सिंह और मिस मारगरेट पहाड़ से लौटते हुए, लखनऊ में दो घंटों के लिए, दीनानाथ के मेहमान हुए। मिस्टर सिंह ने कुछ दिनों की छुट्टी और बढ़वा ली थी।

[२६]

कृष्णकुमार की बीमारी के कारण कमला को दीनानाथ ही के यहाँ कई दिन रह जाना पड़ा। सहानुभूति और सेवा-परायणता तो कमला के बाँटे पड़ी थी। वह बच्चे के साथ इस तरह चिपकी रही जैसे उसकी माँ वही हो। अभी कुछ ही दिनों पहले कमला ने स्वयं दीनानाथ की कितनी सेवा की थी; आज उसने उनके बच्चे की सेवा करके, उसके लिए कहीं अधिक कष्ट सहन करके दीनानाथ के कृतज्ञ हृदय को चिर ऋणी बना लिया। जिस चपला को वे इतना प्यार करते थे वह उनके पास भी नहीं फटकती थी और जिस कमला को एक अनाथ और पोषित बालिका समझ कर सदा ही उन्होंने प्यार की नहीं, करुणा की दृष्टि से देखा था वही उन्हें एक बार नहीं, दो बार उपकार के भार से इतना अधिक दबा बैठी कि उनके लिए सिर उठाना कठिन हो रहा था। इस समय वे मानव-मस्तिष्क के भीतर बहुत छिप कर बैठे हुए उस भाव को कोसते थे जो कितनी भी अधिक उदारता के साथ संयुक्त क्यों न हो जाय; किन्तु अमीर और गरीबके बीच, भाग्यवान और मन्द-भाग्य के बीच कुछ न कुछ अन्तर समझता ही है। कमला के साथ किये गए अन्याय का किस प्रकार प्रतिकार किया जाय, यही विचार दीनानाथ के मस्तिष्क पर इस समय अधिकार कर रहा था।

पूर्व पत्नी का वियोग, तथा एक ऐसी वधू के साथ संयोग की सम्भावना, जिसके साथ सफल दाम्पत्य-जीवन की उन्हें तनिक भी आशा नहीं थी इन दोनों चिन्ताओं ने कृष्णकुमार की बीमारी की चिन्ता से संयोग करके दीनानाथ के हृदय को मथ डाला। इस घने अन्धकार के भीतर यदि कहीं थोड़ी सी ज्योति थी, जिससे उनके हृदय को किंचित् आश्वासन होता था, तो वह था कमलाके सुन्दर हृदय की प्रभासे देदीप्यमान उसका मनो-

मुग्धकर मुखमण्डल। और, जब जब वे उसे देखते तब तब उन्हें ऐसा अनुभव होता था जैसे कोई ऋणी अपने ऐसे महाजन के सामने आ गया हो जो कभी तकाजा करता ही न हो, इतना उदार हो कि सदा देने ही के लिए तैयार रहे, किन्तु जिसका मौनावलम्बन ही हृदय में कसक उत्पन्न कर देता हो। अतएव, दीनानाथ गम्भीरतापूर्वक सोचने लगे कि कमला को उसके उपकार का क्या बदला दूँ। इस सम्बन्ध में जिस कठिनाई ने सबसे पहले उनका सामना किया वह थी उसकी आवश्यकता और अभाव का पता लगाने के विषय में। कमला के जीवन में किस बात की कमी है जो उसकी पूर्ति करके मैं धन्यवाद का भाजन बनूँ?

कृष्णकुमार के प्रति कमला का अपार प्रेम देखकर दीनानाथ ने सोचा कि बच्चों से इतना अधिक प्रेम रखनेवाली स्त्री विवाह की ऐसी कट्टर विरोधिनी क्यों हो गई है? इतनी सुशील, इतनी सेवा-परायण स्त्री विवाहित जीवन से घृणा तभी कर सकती है जब उसकी धार्मिक भावना इतनी जागृत हो कि अपने जीवन के प्रतिक्षण वह ईश्वर की चिन्ता ही में बितावे? क्या कमला इस कोटि की धार्मिक स्त्री है? इसका उत्तर स्पष्ट था। ईश्वर क्या है और हम उसको क्यों मानें इस पर तो कमला नास्तिकतापूर्ण तर्क-वितर्क करती अघाती ही नहीं। उसका प्रेम पुस्तकें पढ़ने में अलबत्ता है। सो यदि यह मान लिया जाय कि उस प्रेम के कारण वह विवाह करना नहीं पसन्द करती, तो इसके साथ ही यह प्रश्न उठता है कि फिर वह अपना समय मेरे यहाँ क्यों नष्ट करती है? नहीं, उसकी इस उदारतामें कोई कारण है, और उसके हृदय के निगूढ़तम प्रान्त में कोई वासना अवश्य है। इस वासना को ढूँढ़ निकालनेका भी दीनानाथने बड़ा उद्योग किया। परन्तु मनोविज्ञान के पंडित होने पर भी वे

कमला के हृदय की थाह नहीं पा सके। उन्हें जीवन-मरण की समस्याओं पर व्याख्यान देना होता हो सरलतापूर्वक दे डालते; परन्तु कमला के चित्त में चपला के प्रति कितना द्वेष है, यह वे किसी प्रकार न समझ सके। उन्हें स्वप्न में भी इस बात का ज्ञान नहीं था कि मैंने ही चपला का अधिक प्यार-दुलार करके इस द्वेष का बीज बोया है। उन्हें इसका क्या पता कि चपला की निन्दा करने से कमला के ईर्ष्या-पूर्ण चित्त को अनुकूल आहार मिलता है! यह दर्शन-शास्त्री जैसे इन बातों को नहीं समझ सका वैसे ही यह भी न अनुमान कर सका कि यह युवती मुझ अधेड़ पुरुष को उपकार से बाँधने का इतना प्रयत्न क्यों करती है? बारम्बार शास्त्र का यही निर्णय होता कि कमला अनुराग-वश ऐसा करती है और दीनानाथ बारम्बार अपनी अवस्था का ख्याल करके इस निर्णय का तिरस्कार करते। जब वे स्वयं किसी परिणाम पर न पहुँच सके तब उन्होंने कमला से संकोच त्याग कर यह पूछने का निश्चय किया कि वह विवाह क्यों नहीं करती?

कमला ने इस बीच में छुट्टी भर प्रति दिन दीनानाथ से गीता पढ़ने का अपना कार्य्य-क्रम स्थिर रक्खा था। एक बार जब वह पढ़ना समाप्त करके चलने लगी तब दीनानाथ ने कहा—'कमला! तुमसे एक जरूरी बात पूछनी है।' कमला खड़ी हो चुकी थी, फिर बैठ गई। बोली—'क्या?'

दीनानाथ ने कहा—'तुम विवाह का इतना विरोध क्यों करती हो? कमला ने उत्तर दिया—'मुझे विवाह की बात सोचने के लिए समय नहीं है।'

दी०—'क्यों? आखिर बात क्या है? क्या यह विराग किसी खास कारण से उत्पन्न हुआ है?'

कमला—'नहीं; कोई कारण नहीं; मै झगड़े में पड़ना नहीं चाहती।'

दी० 'कौन से झगड़े ?'

क० 'यही जो विवाहित जीवन में दिखाई पड़ते हैं।'

दी०—'कमला ! मै तुम्हारा पक्का हितैषी हूँ। यदि तुम मुझसे सच्ची बातें बता दोगी तो तुम्हें कोई हानि नहीं होगी। यदि मुझसे हो सकेगा तो मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।'

कमला ने गम्भीर होकर कहा—'यदि मुझे इस बात का पक्का विश्वास होता कि आप मेरी सहायता कर सकेंगे तो मैं अवश्य ही कुछ कहती।'

दीनानाथ ने उत्तर दिया—'कमला ! यह कैसी बात कहती हो ! मैं कृतघ्न नहीं हूँ।'

कमला—'आप कृतघ्न तो नहीं हैं, आपके हृदय की महत्ता का मुझे पूर्ण परिचय है; किन्तु आप मातृ-भक्त हैं और आप बाबू जी की आज्ञा का विरोध नहीं कर सकते।'

दीनानाथ ने चकित होकर कहा—'तुम्हारी बातें एक पहेली सी हैं कमला ! मैं समझ नहीं रहा हूँ। तुम्हारी ऐसी कौन सी इच्छा है जिसकी पूर्ति में सहायता देने से माँ नाराज होंगी और डिप्टी साहब को असन्तोष होगा ?' 'बस, इससे अधिक मै कुछ कहना नहीं चाहती हूँ'—यह कह कर कमला तुरन्त ही चली गई। दीनानाथ की पहेली पहले से भी अधिक जटिल हो गई।

एक दिन जब कमला पढ़ाने चली गई थी और दीनानाथ के कालेज में छुट्टी थी, दीनानाथ ने माँ से पूछा—'माँ, यह तो बताओ, तुम्हारी समझ में कमला कैसी लड़की है ?'

करुणा देवी चौकन्नी हो गईं उन्होंने सोचा—'हो न हो, रोज रोज पढ़ने-पढ़ाने से इन दोनों में स्नेह बढ़ रहा है और

भैया का मन इसके साथ विवाह करने को हो रहा है; बोलीं—'बेटा, लड़की तो बहुत समझदार है। हम लोगों की बहुत सेवा करती है; ऐसी दशा में हमें भी इसका जीवन सुधार देना चाहिए। मेरी राय है कि श्यामकिशोर के साथ इसका विवाह करा देना चाहिए। डिप्टी साहब तो जहाँ तक होगा नहीं मानेंगें पर हमें उन पर जोर डालना चाहिए।'

दी०—'डिप्टी साहब शायद यही कहें कि दोनों भाई-बहिन की तरह रहे हैं; और उनका यह कहना ठीक ही है। और, अगर वे और ही कोई बात कह कर असमर्थता प्रकट करें तो इस मामले में उन्हें मजबूर करना तो ठीक न होगा, माँ!'

करु०—'भैया, अगर कमला से मदद लेते हो तो उसकी भलाई के लिए डिप्टी साहब को मजबूर करना भी ठीक होगा। यदि वे यह कहें कि ये दोनों भाई-बहिन की तरह रहे हैं तो मैं भी तो कह सकती हूँ कि तुम और चपला पिता-पुत्री की तरह रहे हो, फिर क्यों डिप्टी साहब ऐसे विवाह के लिए तुम्हें लिख रहे हैं? सच बात यह है कि उनके इनकार करने का कारण दूसरा होगा। अनाथ लड़की की तरह पालना उतना कठिन नहीं है जितना उसे पतोहू बनाना कठिन है। क्योंकि, पतोहू बनाने में उन्हें अपनी अनेक आकांक्षाओं का बलिदान करना पड़ेगा। फिर यह भी तो नहीं पता कि कमला की जाति क्या है।' इसी बीच कृष्णकुमार ने जागकर रोना शुरू कर दिया। करुणादेवी उसके पास दौड़ी गईं।

[३०]

दीनानाथ विवाह करना नहीं चाहते थे। जिस स्त्री को वे इतना अधिक प्यार करते थे, जिसके सौन्दर्य्य का, सौजन्य और सुशीलता का उन पर ऐसा स्निग्ध प्रभाव पड़ता था कि जीवन की अरुचिकर बातों की ओर सहज भाव से उनके हृदय में

विराग उत्पन्न हो जाता था, वह जिस प्रकार रोग के आघात से जीर्ण-शीर्ण होकर इस लोक से विदा हुई उसने उनकी अंतर्दृष्टि खोल दी थी। संसार में सृष्टि, विकास और संहार का कार्य्य तो अनवरत रूप से चल रहा है; कहीं किसी घर में माई के लाल का जन्म होता है; कहीं किसी महल में से त्रिलोक में विजय का डंका बजाने वाले सम्राट की इह-लीला समाप्त होती है; और कहीं प्राकृतिक नियमों से पूरा प्रश्रय पाकर शारीरि, मानसिक, और आध्यात्मिक विकास का मनोहर दृश्य दिखाई पड़ता है। ये तीनों ही बातें हमारे नेत्रों के सामने प्रति दिन और प्राय: प्रति घड़ी, आया करती हैं। शरीर धारण करने के बाद इससे और इसके द्वारा सिद्ध होने वाले विषयों के प्रति हमारी इतनी अधिक वासना होती है कि संहार-दृश्यों को देखकर भी हम अनदेखा कर जाते हैं। इस पाठ को सीखने के लिए हम तब तक तैयार नही होते जब तक वह हमारी आँखों के सामने खड़ा होकर हमें कठोर दृष्टि से घूरने नहीं लगता। परन्तु जो अनुभव से शिक्षा ग्रहण करना नहीं चाहते वे ऐसा समय पड़ने पर किंकर्तव्यविमूढ़ और उसके चले जाने पर फिर उन्हीं वासनाओं में रत हो जाते हैं। दीनानाथ ने भी औरों की भाँति रुद्र की विनाश-लीला की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया; परन्तु उनमें इतनी विशेषता अवश्य दिखाई पड़ी कि जब उन्हें पत्नी-वियोग की दारुण वेदना मिली तब इस संसार के भोग के प्रति सच्चे विराग से उनका हृदय भर गया। प्रयाग जाने पर एकाएक जो चोट उनको लग गई उसने उनकी विरक्ति को और भी प्रोत्साहन दिया और वहाँ से चंगे होने के बाद लौटने पर उनका अधिक समय धार्म्मिक ग्रन्थों के अध्ययन, साधु-महात्माओं के सत्संग आदि ही में व्यतीत होने लगा। अगर करुणादेवी डोरी की तरह उन्हें काबू में न रक्खे रहतीं तो दीनानाथ का हाल कटी हुई पतंग ही का होता।

परन्तु माँ के प्रति उनके हृदय में जो अपार आदर-भाव था वह उन्हें लखनऊ के बाहर जाने, शहर में या बाहर कहीं गये भी तो वहाँ अधिक देर लगाने आदि से उनकी रक्षा किये रहता था।

दीनानाथ को यह अच्छी तरह मालूम हो गया था कि चपला के साथ विवाह करने में माँ की सम्मति है। सम्मति का वे विरोध नही कर सकते थे, यह स्पष्ट था। परन्तु, मन-ही-मन वे अपनी विवशता पर अपने आप को, अपने दुर्भाग्य को कोसने लगे। कमला भी मुझसे विवाह करना चाहती है, इस सम्बन्ध में एक भ्रान्त धारणा ने उनके हृदय में प्रवेश कर लिया था; यद्यपि यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनकी धारणा का पोषण करने वाले कारण उनके सामने नहीं थे। वे सोचते—यदि विवाह करने के लिए मुझे विवश होना ही है तो कमला में क्या दोष है? क्या यही कि वह अनाथ लड़की है। किन्तु बड़े बाप की लड़की को लेकर मैं क्या करूँगा, यदि वह मेरे मुख में कालिख लगाती फिरेगी। फिर बचपन में भी कमला की उपेक्षा करके जो मैंने चपला का इतना दुलार किया वह भी क्या उचित था तथा मैंने अनाथ लड़की को अपनी लड़की न समझ कर एक धनवान शक्तिशाली व्यक्ति की लड़की को अपनी लड़की क्यों समझा? इसी को पक्षपात और अन्याय कहते हैं। क्या मैं भी, जो अपने को औरों की अपेक्षा अधिक ज्ञानी और शिक्षित समझता हूँ, इस अनुचित व्यवहार को जारी रखूँगा। क्या इस अन्याय के निवारण के लिए माँ की आज्ञा की अवहेलना करना उचित न होगा? एक बड़े अपराध से बचने के लिए क्या एक छोटा अपराध कर लेना तर्क-संगत न कहा जायगा? उन्होंने अनेक दृष्टि-कोणों से माँ की विवाह-सम्बन्धी **कामना की** विवेचना की। विवाह के परिणाम-स्वरूप

प्राप्त होने वाले सुख-दुख की जिम्मेदारी किस पर होगी ? मैं अपना शेष जीवन ऐसे धार्मिक कार्यों में लगाना चाहता हूँ जिनसे मानव-जन्म की सार्थकता होती है—उससे वंचित करके मुझे फिर वासना-पंक में फेंक देने का उत्तरदायित्व किस पर होगा ? चपला के आचार-विचार की सूक्ष्म परीक्षा किये बिना ही केवल कृतज्ञता का भार हलका करने के लिए उसको मेरे गले बाँधने का दोष किस पर मढ़ा जायगा ? सभी प्रकार से दीनानाथ को इस समय माँ का अनौचित्य बहुत विशालरूप में दिखाई पड़ता था। एक बार उन्होंने यह निश्चय किया कि इतना अधिक अत्याचार मैं नहीं सहन करूँगा और माँ से अपनी कठिनाइयाँ स्पष्ट-रूप से बता दूँगा। इस निश्चय से उन्हें यह अनुभव हुआ जैसे उनके सिर से एक बड़ा भारी भार उतर गया हो।

परन्तु, माँ से इस विषय की चर्चा कैसे चलावें, यह एक कठिन समस्या थी। बारम्बार यह सोचते कि आज तो यह कार्य कर ही डालूँगा,किन्तु, ऐन मौके पर हिम्मत छूट जाती। बचपन ही में पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण करुणादेवी ने उन्हें माँ की तरह दुलारा था और पिता की तरह सख्ती के साथ नियमों के भीतर रखा था। इस कारण दीनानाथ सदा ही उन्हें भय-मिश्रित प्रेम की दृष्टि से देखते थे। इसी प्रबल संस्कार ने उनके मार्ग में दुर्निवार बाधा उपस्थित कर दी। संभवतः दीनानाथ सोचते ही विचारते रह जाते और कभी अपने भावों को हलके-से-हलके ढंग में भी प्रकाशित न कर पाते; किन्तु, करुणादेवी ही की ओर से ऐसा अवसर उपस्थित होगया। श्यामकिशोर के आने के तीन-चार दिन बाद एक दिन संध्या-समय दीनानाथ अपनी उधेड़-बुन में पड़े हुए चारपाई पर लेटे थे; चिन्ता उनके

चेहरे पर नाच रही थी, इसी समय करुणादेवी ने आकर पूछा—'बेटा, उदास क्यों हो?'

दीनानाथ ने उत्तर दिया—'योंहीं, माँ।'

इतना अनुकूल समय उपस्थित होने पर भी दीनानाथ विवाह की चर्चा न छेड़ सके।

करुणादेवी ने कहा—'नहीं बेटा, तुम्हारा उदास चेहरा किसी गहरी चिन्ता का परिचय देता है। मै तुम्हें इतना चिन्तित नहीं देखना चाहती।'

दीनानाथ के जी में आया कि इससे अच्छा मौका हाथ न आवेगा, अब सच वात कह ही दूँ, परन्तु फिर कहते-कहते रुक गये। क्या कहूँ, यह तय करने में उन्हें जब कुछ देर लगी तो करुणादेवी ने स्वयं बात छेड़ी। वे बोलीं—'यह तो बताओ भैया, डिप्टीसाहब की चिट्ठी का कुछ जवाब दिया या नहीं, वे बेचारे इन्तजारी करते होंगे।'

करुणादेवी की सहानुभूति स्पष्ट थी। दीनानाथ का सारा साहस सपना हो गया। कुछ विरक्ति का भाव प्रदर्शित करते हुए उन्होंने कहा—'दे दूँगा, कोई जल्दी है?'

करुणादेवी ने उत्तर दिया—'बेटा, अपनी ही सी भीर सब की समझनी चाहिए। लड़की की शादी माँ-बाप को कितनी मुसीबत में डाल देती है, यह तुम क्या जानोगे। भैया! उनसे तुम्हारा इतना प्रेम रहा है, अभी चोट लगने पर उन्होंने तुम्हारी कितनी सेवा की—यह सब सोचना चाहिए, नहीं तो कहेंगे कि कितना वेमुरौवत आदमी है!'

दीनानाथ मन-ही-मन झुँझला रहे थे। आखिरकार बोल उठे—'माँ, जिसे अपनी लड़की समझा उसी के साथ शादी करना कैसे ठीक हो सकता है?

करुणादेवी पुत्र के भावों से ताड़ गई थीं कि यह चपला के साथ विवाह करने का विरोधी है। परन्तु इस लचर दलील को सुनकर उत्साहित हो उठीं और बोलीं—'बेटा, इसमें कौन सी बुराई है। संसार में जितने भले आदमी हैं वे सभी स्त्रियों को माँ, बहिन, या बेटी के रूप में देखते हैं, यह तो मरजाद की बात है, कायदे की बात है, यह तो होना ही चाहिए। परन्तु इसका यह अर्थ थोड़े ही है कि शादी-ब्याह रुक जाय।'

दीनानाथ के पास कोई अस्त्र नहीं था। उनके चेहरे से लाचारी का भाव टपकने लगा।

उन्हें चुप देखकर करुणादेवी ने कहा—'जाओ, चिट्ठी का कागज और कलम-दावात लाकर मेरे सामने ही पत्र लिखो। मैं जानती हूँ, तुम अपने मन से कभी जवाब नहीं दोगे।'

इस आज्ञा का उल्लंघन करने की शक्ति दीनानाथ में नहीं थी। तुरन्त ही वे सब सामान लाकर बैठ गये।

करुणादेवी ने कहा—'तुम लिखो, मैं बोलती हूँ।'

करुणादेवी बोलने और दीनानाथ लिखने लगे—

श्रीमान् बाबू रघुनाथप्रसाद की सेवा में—

मान्यवर !

दीनानाथ का चित्त कृष्णकुमार की बीमारी के कारण चिन्तित था, इस कारण वह आपके पत्र का उत्तर श्यामकिशोर के हाथ से नहीं भेज सका। मैं भी बहुत घबरा गई थी। ईश्वर को धन्यवाद देती हूँ कि उसके अनुग्रह तथा कमला की विशेष सहायता से मेरे पौत्र ने फिर स्वास्थ्य-लाभ किया।

दीनानाथ को भी चपला के साथ विवाह स्वीकार है। मैंने यह पत्र उसे दिखा लिया है। आगामी अगहन में विवाह हो जायगा। आप निश्चिन्त हो कर प्रबन्ध करें। भवदीया,

करुणादेवी

यह पत्र लिखने के बाद लिफाफे पर पता लिखवा कर करुणादेवी ने पत्र वापिस माँगा।

दीनानाथ ने नम्रता के साथ पूछा—'माँ, क्या मुझ पर आप सन्देह करती हैं। मुझे इतना अविश्वास-पात्र न समझो। तुम्हारे कहने से मैं आँख मूद कर कुएँ में कूद सकता हूँ, यह कौन-सी बात है।'

यह कह कर दीनानाथ उठे और बाहर जाने के लिए कपड़े बदलने लगे।

करुणादेवी ने कहा—'बेटा, इलाहाबाद में चोट लगने पर यदि बाबू रघुनाथप्रसाद ने तुम्हें आश्रय न दिया होता तो क्या जाने आज तुम्हारी क्या दशा होती। मनुष्य सब कुछ भूले परन्तु यदि अपने साथ किये गये उपकारों को भी वह भूलता है तो वह मनुष्य नहीं है; पशु है। मैं तो गायत्रीदेवी और रघुनाथप्रसाद का मुँह देख कर अपनी समझ में तुम्हारा बहुत अच्छा विवाह किये जाती हूँ। आगे क्या होगा, यह तो राम जाने।'

आगे क्या होगा, यह राम तो जानते ही हैं, किन्तु मैं भी जानता हूँ—यह मन-ही-मन कहते हुए दीनानाथ शीघ्रता के साथ बाहर निकल गये। सोचा था क्या, हुआ क्या—यही वे रास्ते भर सोचते गये। पार्क में एक जगह एकान्त में पहुँच कर एक कुर्सी पर बैठे-बैठे अपने भविष्यके सम्बन्धमें उन्होंनेविचार करना शुरूकिया—यह कितनी अखरनेवाली बातहै कि एकओर कमला अपनी भरी जवानी में अविवाहिता रहने का प्रण करती है, और दूसरी ओर मैं आधी उम्र व्यतीत कर चुकने के बाद पुनर्विवाह करने जा रहा हूँ। इसके अतिरिक्त चपला के साथ विवाह करना तो जान बूझ कर विपत्ति मोल लेना है; मेरे और उसके विचारों में जमीन आसमान का अन्तर हो गया है।

ऐसी अवस्था में जब मैं नित्य नयी आपदा में फँसूँगा और कमला व्यंग के बाण छोड़ेगी, तब मेरी क्या गति होगी ? बड़ी विचित्र बात तो यह है कि आचार-विचार के कड़े नियमों को माननेवाली माता जी ही एक ऐसी लड़की को बहू बनाने का हठ कर रही हैं जिसकी शौकीनी, और लापरवाही वे अपनी आँखों से देख चुकी हैं। शायद यही सोच कर वे ऐसा कर रही हैं कि मैं चपला को प्यार करता हूँ; वे चाहती हैं कि मेरा शेप जीवन आनन्द और शान्ति के साथ व्यतीत हो। हाय रे माता का हृदय! मेरे सुख की आशा करके तुमने अपने कट्टर संस्कारों की भी उपेक्षा कर दी। एक ईसाई के साथ चपला कितने समय तक स्वच्छन्दता के साथ घूमती फिरती रही है, यह बात भी तुमने भुला दी !! ऐसी करुणामयी माता की आज्ञा का उल्लंघन भी कैसे किया जा सकता है ?—इन्हीं विचारों में वे बड़ी देर तक उलझे रहे।

प्रायः परिस्थिति से विवश होकर भी मनुष्य अपने कर्तव्य-पालन में तत्पर होता है। दीनानाथ यह अनुभव करते थे कि चपला का चरित्र ऐसा नहीं है जो संयम के भीतर लाया जा सके। चपला के लिए वे बहुत कुछ त्याग कर सकते थे; लेकिन उसके साथ विवाह कर लेना इतना बड़ा त्याग था, जिसके लिए उनका हृदय सहज ही तैयार नहीं होता था। फिर भी वे इस बात से इनकार नहीं कर सकते थे कि चपला के समाज में तिरस्कृता, और, विवशता के कारण, अविवाहिता रह जाने की स्थिति के उत्पन्न होने की आशंका उपस्थित होने पर उनका यह कर्त्तव्य था कि वे अधिकतर त्याग करें तथा अपनी बहुत सी इच्छाओं की पूर्ति को स्थगित कर दें। माँ की इच्छा से यदि उन्हें लाचार न हो जाना पड़ता तो शायद उन्हें यह खयाल भी न होता कि चपला की स्थिति सम्भवतः वैसी ही

हो गयी है। जो हो, धीरे धीरे चपला के सम्बन्ध में उन्हें अपने कर्तव्य का ज्ञान हुआ और उन्होंने चपला को पत्नी-रूप में ग्रहण करने का विचार निश्चित रूप से कर लिया। एक बार फिर कमला उनके मानसिक नेत्रों के सामने उपस्थित हुई और यह कहती हुई सी जान पड़ी—'बाबू दीनानाथ, आज यदि चपला की स्थिति में मैं होती तो क्या आप यह त्याग करने को तैयार होते? चपला बाबू रघुनाथप्रसाद की लड़की है—क्या यह खयाल आप से यह महान त्याग नहीं करा रहा है?' दीनानाथ ने मन-ही-मन कमला से कहा—'कमला, यह जानते हुए भी कि मुझे तुम्हीं से विवाह करना चाहिए था, केवल कर्तव्य की प्रेरणा से, मैं चपला को पत्नी-रूप में ग्रहण कर रहा हूँ। देखो, चपला के जीवन के कलंकित हो जाने की आशंका है; आओ हम दोनों उसके लिए त्याग करें; तुम भी चपला की बड़ी बहिन हो।'

दीनानाथ ने देखा कि कमला की आँखों से टप टप आँसू टपक रहे हैं। वे उन्हें पोंछने के लिए उठे; किन्तु तुरन्त ही कमला गायब हो गयी। तब उन्हें ज्ञान हुआ कि कमला वहाँ नहीं थी; केवल उनके भ्रम ने कमला को वहाँ उपस्थित कर दिया था। अपने मस्तिष्क और हृदय की अवस्था देख कर दीनानाथ को बड़ी ग्लानि हुई। वे कुर्सी पर से उठ पड़े और पास ही लेटर बक्स में चिट्ठी छोड़ कर इधर-उधर टहलने लगे।

[३०]

शिवप्रसाद सोचते थे कि यद्यपि चपला फिलहाल नाराज हो गई है, और यद्यपि यह भी संभव है कि मेरी अनुपस्थिति ही में उसका विवाह हो जाय, फिर भी थोड़े ही यत्न से वह फिर मेरे वश में आ जायगी; क्योंकि उसकी नाराजगी ही

प्रगट करती है कि वह मुझे हृदय से चाहती है। इसलिए चपला के रोप से वे भयभीत न हुए। वास्तव में उसके क्रोध से एक परिणाम—किसी अन्य के साथ विवाह—से तो वे सन्तुष्ट ही हो सकते थे; क्योंकि विवाह का उत्तरदायित्व वहन करना सचमुच उन्हें अप्रिय था; उनका खयाल था कि किसी स्त्री को स्वकीया बना कर रखने में उतना रस नहीं मिलता जितना परकीया रूप में उसे ग्रहण करने में प्राप्त होता है। इन्हीं कारणों से उन्होंने चपला के इस क्षणिक सम्बन्ध-विच्छेद को न स्थायी ही समझा और न जीवन के आनन्द को हरण करने वाला ही; यद्यपि यह तो वे जानते थे कि चपला को फिर अपने वश में लाने के लिए अब सालों तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

यदि शिवप्रसाद को तुरन्त ही चला जाना होता तो शायद चपला का वियोग उन्हें इतना न अखरता; किन्तु जाने में अभी कई महीनों की देर थी। ऐसी अवस्था में चपला के बिना इतनी लम्बी अवधि पार करना उन्हें कठिन जान पड़ने लगा। उन्होंने सोचा, चलें एक दिन चपला के पैरों पर अपना सिर रख दें, और अपने अपराध के लिए क्षमा माँग आवें। किन्तु उनका सारा उत्साह शीघ्र ही ठण्डा पड़ जाता था; क्योंकि, चपला ने प्रेम की जो कसौटी निर्धारित कर दी थी उस पर खरा उतरना उनके लिए संभव नहीं था। स्त्री की अपेक्षा धन का मूल्य उनकी आँख में अधिक था; उनका मत था कि धन और ऐश्वर्य वह पेड़ है जिससे स्त्री रूपी लता लिपटती है; इस कारण वे अमरीका जाकर अपनी पद-वृद्धि के अवसर को खो नहीं सकते थे। इस परिस्थिति में उन्हें चपला के लिए मन ममोस कर ही रह जाना पड़ता था। कई बार उन्होंने पत्र लिखे; लेकिन उन्हें भेजने का साहस नहीं हो सका। यही नहीं, कई

बार चपला से मिलने के लिए भी उन्होंने पैर आगे बढ़ाये; लेकिन उनके किसी भी प्रयत्न को सफलता नहीं मिल सकी। अन्त में उन्होंने अमरीका पहुँचने पर ही चपला को पत्र लिखने का निश्चय किया।

मिस्टर सिंह और कुमारी मारगरेट जुलाई के तृतीय सप्ताह के शुरू ही में बनारस आ गये। धीरे-धीरे अगस्त महीने का अन्त भी आया और शिवप्रसाद की यात्रा की तैयारी होने लगी। पहली सितम्बर को मिस्टर सिंह और कुमारी मारगरेट के साथ वे बनारस से बम्बई के लिए रवाना हुए। बाबू रघुनाथप्रासद से मिलते हुए अब वे झेंपते थे, इसलिए छिउँकी के रास्ते से होते हुए ही वे निकल गये।

अमरीका पहुँचने पर उन्होंने चपला से भी अधिक सुन्दर और चंचल युवतियों से शीघ्र ही प्रीति कर ली; फिर भी चपला को वे भुला न सके। उन्हें शीघ्र ही यह अनुभव होने लगा कि अमरीकन नारी कागज के विचित्र फूलों की तरह मनोहारिणी तो होती है; लेकिन सुगंधि-शून्य होने के कारण हृदय को तृप्त नहीं कर सकती। प्रयाग में रहकर उन्होंने चपला के स्नेह का मूल्य नहीं समझा था; किन्तु अब विदेश में, सर्वथा विभिन्न समाज में, उनका हृदय उसके लिए अधिकाधिक व्याकुल होने लगा। उन्होंने देखा कि अमरीकन युवती अविवाहित और विवाहित दोनों अवस्थाओं में व्यक्ति की नहीं, समाज की सम्पत्ति है। अपनी इसी वेदना की शान्ति के लिए एक दिन रात को वे चपला को पत्र लिखने बैठ गये और उसे इस प्रकार लिखा :—

न्यूयार्क अमरीका
प्रिय चपला; १५ अक्टूबर

आज बहुत अधिक साहस करके मैं तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ। तुम्हें मेरे प्रति अश्रद्धा हो गयी है; तुम्हें मेरा मुँह देखने से घृणा होती है: तुम्हारा यह व्यवहार सर्वथा स्वाभाविक है; तुमने मुझे अपना निस्वार्थ प्रेम प्रदान किया; उसका जितना मूल्य मुझे आँकना चाहिए था उतना न करने के कारण आज मुझे जो विषाद हो रहा है उसकी सत्यता प्रमाणितकरने के लिए मेरे पास कोई साधन नहीं है। अस्तु। यह पत्र मैं इस उद्देश्य से भेज भी नहीं रहा हूँ कि तुम मुझे मिथ्याचारी और पाखंडी के अतिरिक्त और कुछ समझो। मुझे कष्ट इसी बात का है कि अपने परिवर्त्तित मनोभावों का परिचय मैं तुम्हें उचित समय पर नहीं दे सकूँगा और मेरे लौटने के पहले ही तुम विवाहिता हो जाओगी।

और क्या लिखूँ ?

तुम्हारा अभागा,
शिवप्रसाद

\+ \+ \+

मिस्टर शिवप्रसाद के पत्र से चपला के चित्त में फिर हलचल मच गयी। उसका सोया हुआ सम्पूर्ण अनुराग जाग उठा। उसने सोचा, अमरीका जाकर भी, अमरीकन सुन्दरियों के बीच में होकर भी, वे अब तक मुझे भूले नहीं हैं। शिवप्रसाद जब तक प्रयाग या काशी में रहे तब तक तो चपला ने अपने को बलपूर्वक उनसे विलग रक्खा था;किन्तु जिस दिन उसने जाना कि वे अमरीका के लिए रवाना हो गये और इलाहाबाद होकर नहीं गये उसी दिन से न जाने किस शक्ति ने उसके हृदय को मोम की तरह पिघला दिया था। वे आज बम्बई पहुँचे होंगे;

आज जहाज पर चढ़े होंगे, आज जहाज पर चले जा रहे होंगे; आज अमरीका में जहाज से उतर रहे होंगे; अब अमरीका की सुन्दरी स्त्रियों की मंडली में आमोद-प्रमोद कर रहे होंगे—शिवप्रसाद से रुष्ट होकर भी न जाने क्यों उसका हृदय यह सोचने से विरत नहीं रह सका। चिट्ठी आ जाने पर तो वह बहुत ही अधीर हो गयी। मन-ही-मन कहने लगी—हाय! मैं कितनी बड़ी अभागिनी हूँ; यहाँ महीनों तक उनसे बोली नहीं; उनके पास एक चिट्ठी तक नहीं भेजी! क्या इसी का नाम प्रेम है? वे अच्छी तरह जानते हैं कि मैं उनसे घृणा करती हूँ, और फिर भी इतनी दूर जाकर भी वे मेरे पास पत्र भेजते हैं! इधर मुझे देखो—मैं उन्हें प्यार करने का दम भरती हूँ और फिर भी उनसे बदला लेना चाहती हूँ; उन्हें सताना चाहती हूँ! इस नीचता की भी कोई हद है! भावुकता के आवेग ने उसे शिवप्रसाद को एक क्षमा-प्रार्थनामय प्रेम-पत्र लिखने की प्रेरणा की; क्षणिक उमंग में उसने यहाँ तक सोचा कि लिख दूँ, मैं विवाह नहीं करूँगी; जब तुम अमरीका से लौट कर आओगे तभी उसकी बात सोची जायगी। किन्तु एकाएक उसे पिता का ध्यान आ गया और अपने प्रेम के पथ में एक अनिवारणीय बाधा को देखकर उसका जी व्याकुल होने लगा। फिर उसने सोचा, क्या मेरे प्यारे पिता, मेरे कृपालु पिता मेरे ऊपर एक बार फिर कृपा न कर देंगे? यदि अब भी शिवप्रसाद उनके पास उनकी रुचि के अनुकूल एक पत्र भेज दें तो क्या अपनी प्रिय सन्तान के प्रति अपार करुणा से भरा हुआ उनका हृदय शिवप्रसाद को क्षमा न कर देगा? तो फिर शिवप्रसाद के पास एक पत्र क्यों न भेज दूँ?

इस प्रकार अनेक तर्क-वितर्क के पश्चात् उसने अगली रात

को भोजन करने के बाद कमरा बन्द करके शिवप्रसाद के पत्र का उत्तर इस प्रकार लिखा:—

प्रयाग

प्रियतम ;

आपका पत्र मिला। आपके भावों से मुझे पता लगा कि आप अब भी मुझे प्यार करते हैं। मै तो आपके प्रेम की भूखी हूँ। लेकिन आप बड़े निष्ठुर हैं जो मुझसे मिले बिना चले गये। मेरे विवाह में अब अधिक बिलम्ब नहीं है; बाबू दीनानाथ के साथ तय हो चुका है। विवाह को केवल एक मास और शेष है। यदि आप अब भी एक पत्र पिता जी के पास भेज दें और अमेरिका से लौटने के बाद मेरे साथ विवाह कर लेने का वादा करें तो बात सुधर सकती है। मैं भी थोड़ा-बहुत उद्योग कर सकती हूँ। यदि आप मुझे सचमुच प्यार करते हैं तो आपके लिए ऐसा करने में कठिनाई न होगी और फिर हम लोगों का जीवन बहुत सुखमय हो जायगा। क्या आप ऐसा करके मेरे हृदय को उत्साहित नहीं करेंगे?

आशा है, आप सकुशल हैं।

आपकी वही
प्रेममयी,
चपला

पत्र समाप्त करने के बाद चपला ने उसे एक बढ़िया लिफाफे में बन्द किया और सबेरे डाक में डलवाने के लिए रख छोड़ा।

× + ×

सबेरे जब चपला सोकर उठी तब उसका चित्त कुछ अधिक स्वस्थ था और उस पत्र की उपयोगिता और अनुपयोगिता पर वह कुछ संयमपूर्वक विचार कर सकती थी। उसे अनुभव

होने लगा मानों वह फिर शिवप्रसाद के चंगुल में फँसने जा रही है। उसके हृदय के किसी कोने से आवाज आयी—उन्होंने मेरे लिए कौन-सा त्याग किया है? और त्याग के बिना प्रेम की परीक्षा कैसे हो सकती है? क्या केवल एक पत्र लिख देना ही शिवप्रसाद की स्वार्थपरायणता का पाप धो देने के लिए पर्याप्त है? इस समय उसे कमला की अनुपस्थिति विशेष रूप से अखरी। वह शिवप्रसाद के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक उससे पूछ कर अपना मत निर्धारित करना चाहती थी। 'किन्तु', उसके हृदय में बैठे हुए न जाने किसने उससे कहा, 'क्या कमला दीदी ने बारम्बार तुझे शिवप्रसाद के चक्कर में पड़ने से मना नहीं किया था? क्या उन्होंने तुझसे नहीं बताया था कि शिवप्रसाद ही के कारण कितनी ही स्त्रियों को विष के कड़ुए घूँट पीने पड़ रहे हैं? तूने उनकी बातों का कितना आदर किया? फिर क्या जो कुछ वे तुमसे कह चुकी हैं उससे अधिक भी कोई बात जानने की तुझे जरूरत है?' चपला ने विचार कर देखा तो उसे ऐसा मालूम होने लगा-जैसे वह किसी ऐसे ढालू चट्टान पर खड़ी है जहाँ से पाँव का तनिक भी फिसलना उसे भयानक गर्त्त में डाल सकता है। वह सोचने लगी—मान लिया अभी शिवप्रसाद ने मेरी बात मान ली और बाबू जी को वैसा ही पत्र लिख दिया जैसा मैं चाहती हूँ, किन्तु, साल भर के बाद, लौटते समय, अपने साथ यदि वे एक मेम लेते आये तो फिर मैं कहाँ की हूँगी? मुझे कहाँ ठिकाना मिलेगा? अभी तो बाबू दीनानाथ के साथ विवाह हो जाने से पिता जी के तथा मेरे दोनों के मुँह की लाली बनी रहेगी; किन्तु वैसी परिस्थिति खड़ी होने पर क्या हम सभी के मुँह में कालिख न पुत जायगा? नहीं; शिवप्रसाद को मुझसे प्रेम नहीं है; वह केवल मुझे अटकाये रहना चाहते हैं। इस विचार-धारा ने धीरे-धीरे उस भावुकता का

नाश कर दिया जिसके वशीभूत होकर चपला ने शिवप्रसाद के पास भेजने के लिए नवीन प्रेम-पत्र लिखा था। एक बार फिर उसने शिवप्रसाद के पास आये हुए पत्र को पढ़ना शुरू किया। प्रेम का भूखा उसका हृदय आप ही आप कह उठा—'इसके समस्त भाव, समस्त उद्गार मिथ्या हैं; इसमें आदि से अन्त तक बनावट है।' तुरन्त ही उसने दोनों पत्रों का फाड़ कर उनके नन्हें नन्हें टुकड़े कर डाले। छत के टीनवाले बरामदे में, जहाँ वह ऊनी कपड़ों से ढकी एक आराम कुर्सी पर बैठी थी, शीघ्र ही सूर्य्य की किरणों ने स्वच्छन्द प्रवेश करके उसके म्लान मुख को पास ही की मालती-लता से अधिक मनोहर प्रकाशयुक्त कर दिया। उस समय का उसका प्रदीप्त आनन, जिसके दाएँ भाग में एक काला तिल गोरेपन की आभा को दुगुनी कर रहा था, स्वर्ण कमल ही सा जान पड़ता था; सिर के कपड़े का नियंत्रण न स्वीकार करके कपोलों को चूमने ही में जीवन की सार्थकता क अनुभव करने वाली अलकें भी उन्मत्त भ्रमरी ही-सी प्रतीत होती थीं।

ईश्वर ने प्रेम के साथ ही सन्देह और अनिश्चय की भी सृष्टि की है। एक मोहक भ्रमसे मुग्ध होने का जो आह्लाद उसे अभी-अभी प्राप्त हुआ था, वह क्षण भर से अधिक नहीं ठहरा। उसने सोचा, कई महीनों से मैंने शिवप्रसाद के साथ कोई सम्बन्ध ही नही रक्खा था और मै सोचती थी कि उन्होंने मुझे भुला दिया है; लेकिन मेरे द्वारा अपमानित होने पर भी उन्होंने क्षमा-भाव ही धारण किया और इतना प्रेमपूर्ण पत्र लिखा। यदि उन्होंने मुझे हृदय से निकाल ही दिया होता तो वे यह दिखावट क्यों करते ? उनके समान गुणी, स्वस्थ और सुन्दर पुरुष पर क्या अमरीकन नारियाँ टूट न पड़ी होंगी ? तो फिर मिथ्या सन्देहों में पड़कर मैं अपने प्राणप्रिय को हाथ से क्यों निकलने

दे रही हूँ ? क्या यह मेरी मूर्खता नहीं है ? अच्छा यदि मैं अपना पत्र शिवप्रसाद के पास भेज ही दूँ तो इससे मेरी अधिक-से-अधिक हानि क्या हो सकती है ? यही न कि शायद आगे चल कर मेरा विवाह न हो सके ? तो अभी विवाह करके मैं कौनसा सुख लूट लूँगी ! हृदय एक ही व्यक्ति को दिया जा सकता है, और उसे मैं शिवप्रसाद को समर्पित कर चुकी हूँ। शिवप्रसाद बुरे हों या भले हों; मेरे लिए वही सब कुछ हैं। उनके नाम पर, उनके अत्याचार की वेदी पर बलिदान होकर जीवनपर्यन्त कुमारी रह जाना बाबू दीनानाथ के साथ विवाह स्वीकार करने की अपेक्षा अधिक सुखकर है। चपला अपने मन के निगूढ़ प्रान्त में अत्यन्त नीरव भाषा में भी यह बात कह कर चौंक पड़ी—न जाने किसने सिर उठाकर उससे कहा, 'चपला, तू ने दीनानाथ के निस्वार्थ, निर्मल प्रेम की जो उपेक्षा की है, उसे पावों तले जिस तरह रौंदा है, उसी का यह परिणाम है कि तू सच्चे प्रेम के लिए तरस रही है।' दीनानाथ के प्रेम की शीतलता और गम्भीरता को उसने स्वीकार किया; 'किन्तु' उसने मन-ही मन उसी अज्ञात से पूछा, 'मैं प्रेम, की इस आग के लिए क्या करूँ जो शिवप्रसाद ने मेरे हृदय में लगा दी है, इसकी लपटों में पड़ कर मैं खाक भले ही हो जाऊँ, लेकिन शिव-प्रसाद की परिहास-प्रफुल्ल कमल सरीखी आँखों की याद को कैसे भुला सकती हूँ '' चपला को इस प्रश्न का उत्तर कहीं से न मिला। कुछ ही देर के बाद वह उन्हीं तिरस्कृत चिट्ठियों को इकट्ठा करके एक दूसरे के साथ मिलाने लगी। इसी समय अचानक श्यामकिशोर ने आकर पूछा, 'चपला, क्या तुम्हारे पास अमेरीका से कोई पत्र आया है। एक बात मैं तुमसे कह देना चाहता हूँ कि शिवप्रसाद के साथ अब तुम्हारा पत्र-व्यव-हार रखना हम लोगों को नहीं रुचेगा।' बाबू दीनानाथ के साथ

तुम्हारे विवाह की बात अब बहुत आगे जा चुकी है और अब उसमें थोड़े ही दिनों की देर रह गयी है। आज के पन्द्रहवें दिन तिलक चढ़ जायगी।'

चपला कुछ सिटपिटा गयी, लेकिन शीघ्रही अपने को सँभाल कर उसने हाथ में पड़े हुए टुकड़ों को दिखा कर कहा—'उसी चिट्ठी के ये टुकड़े हैं; मैं तो अपनी ओर से पत्र-व्यवहार रोक चुकी हूँ; उन्होंने व्यर्थ ही यह पत्र भेज दिया है, इसका उत्तर जब मैं भेजूँ तब कहिएगा।'

यह कहते समय वह मन ही-मन सोच रही थी कि अच्छा ही हुआ जो अपने पत्र को भी फाड़ डाला; किन्तु, साथ ही उसे यह डर भी हुआ कि शायद मेरे पत्र के टुकड़े बहुत छोटे न हुए हों और भाई साहब उन्हें पढ़ने का उद्योग करें, इसलिए सब टुकड़ों को एक साथ समेट कर, साथ ही उनके किसी भी प्रकार जोड़े न जा सकने के सम्बन्ध में पूरा इतमीनान करके उन्हें कूड़े में छोड़ दिया। श्यामकिशोर सन्तुष्ट होकर नीचे चले गये।

श्यामकिशोर के चले जाने पर चपला फिर आरामकुर्सी में पड़ गयी और अपनी परिस्थिति पर विचार करने लगी। उसको यह विश्वास हो गया कि यदि मैं अब भी शिवप्रसाद को नहीं भुला देती तो आगे बहुत भयंकर स्थिति में पड़ जाऊँगी। जो हो, दो एक दिन के लिए तो उसने शिवप्रसाद को पत्र लिखना स्थगित कर हीं दिया। उसने सोचा—चलो,दो चार दिन मेरे पत्र के लिए प्रतीक्षा ही करेंगे। मुझे उन्होंने बहुत सताया है, थोड़ा वे भी तड़फड़ाएँ; मैंने न जाने कितनी रातें बेचैनी में जाग कर काट दी हैं, वे भी दो एक रातें करवटें बदल बदल कर बिताएँ। धीरे-धीरे यही विचार निश्चय के रूप में

परिणत हो गया और उसका चंचल चित्त यहीं विश्राम पाकर स्थिर हो गया।

[३१]

दिसम्बर में विवाह हो जाने के बाद जब चपला ने सास के घर में प्रवेश किया तब कमला को वहाँ का रहना अनुचित समझ पड़ने लगा। उसने दस पाँच दिनों का अन्तर देकर एक दिन करुणा देवी से कहा—अम्मा, अब तो कृष्णकुमार की देखरेख करने के लिए चपला आही गई है, मुझे अब आज्ञा दो तो बोर्डिंग चली जाऊँ। कभी कभी दर्शन कर जाया करूँगी।

करुणा देवी को इस बात का बिलकुल खयाल न था कि कमला ऐसी बात कह बैठेगी। पाँच छः महीने मकान में रह कर कमला ने उनकी इतनी सेवा की थी कि अब वे उसे अपने जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक समझने लग गयी थीं और जिस समय कमला ने अपनी जाने की इच्छा प्रकट की उस समय उन्हें यह न सूझ पड़ा कि क्या उत्तर दूँ। इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के लिए भी वे तैयार नहीं हुई! इसके विपरीत, उनकी ममता को, जो उनके हृदय में कमला के प्रति उत्पन्न हो गई थी, एक गहरी ठेस लगी और वे एक आवश्यक कार्य का बहाना बना कर और कहीं चली गईं। ज्यों ज्यों एक दिन के बाद दूसरा दिन बीतता था त्यों त्यों कमला की अधीरता बढ़ती जाती थी। इस कारण एक ओर तो वह जाने की आज्ञा माँगने के लिए करुणा देवी से बातें करने का मौका ढूँढ़ती थी, और दूसरी ओर करुणा देवी इस कोशिश में थीं कि कमला से विशेष बातचीत करने का अवकाश ही न मिले। घर में नई बहू आयी थी। करुणा देवी एक-न-एक काम में अपने को फँसाये रख सकती थीं

इसलिए कमला सवेरे खाट पर से उठते ही बोर्डिंग जाने का जो संकल्प करती वह भी प्रायः रात्रि को सोने के समय जैसे अपनी दिन भर की थकावट मिटाने के लिए सो जाता और दूसरे दिन कमला के जागने के साथ ही साथ ताजगी पाकर जागता। दस-पन्द्रह दिन तक यह क्रम चला। अन्त में चपला की उपस्थिति में एक दिन कमला ने फिर करुणादेवी से कहा—अम्मा, मेरे लिए क्या आज्ञा होती है ?

करुणादेवी ने जानबूझकर अनजान बनते हुए कहा - 'तू कैसी आज्ञा चाहती है ? तेरे लिए मेरी आज्ञा इसके सिवा और क्या हो सकती है कि अपनी प्रसन्नता से मेरे घर को प्रकाशित कर दे।'

कमला ने कहा - 'मै बोर्डिंग जाना चाहती हूँ। जिस समय उसके मुख से ये शब्द निकले उस समय उसकी दृष्टि अम्मा की ओर न हो कर आकाश की ओर थी। करुणादेवी की स्नेह-कातर आँखों की ओर देखने की शायद उसमें हिम्मत न थी।'

करु०—'बेटी, क्या बोर्डिंग इस घर से अधिक सुन्दर है जो वहाँ जाने के लिए तू इतनी उतावली हो रही है ! या कोई और बात है जो तुझे इस घर से विरक्त बना रही है ?'

कमला के पास मौन के सिवा कोई उत्तर नहीं था। अनेक कठिनाइयों को मन में अनुभव करते हुए भी वह उन्हें जबान पर नहीं ला सकती थी। फिर भी उसने कहा—'अम्मा, जिस समय मैं आई थी यह सोच कर आई थी कि इतने बड़े घर में अकेले रहने के कारण आप का जी ऊबता है और अब जाना चाहती हूँ इस कारण कि वह परिस्थिति अब नही रही।'

कमला स्वयं यह अनुभव कर रही थी कि यह उत्तर अधिकांश में अम्मा के लिए न होकर चपला के लिए था; क्योंकि जिस दिन चपला ने दीनानाथ के घर को आलोकित किया उसी दिन से कमला को मालूम होने लगा जैसे मौन रहकर भी चपला उसके सामने खड़ी होकर यह प्रश्न पूछ रही है कि तुम यहाँ क्यों हो ! बेचारी चपला ने कमला के मार्ग में किसी प्रकार की असुविधा उत्पन्न की हो, सो बात नहीं। जब अम्मा सामने न होतीं तब वह कमला के साथ, जितना संभव होता उतना, मनोरंजन करने की चेष्टा करती। परन्तु यह सब कमला को उस प्रश्न की भयावहता से बचाने में असमर्थ था जिसकी कल्पित मूर्ति सदैव उसके सामने खड़ी रहती। आज अवसर मिलने पर कमला ने जो अपनी इतनी सफाई दे दी उससे उसके हृदय पर से जैसे एक पहाड़ का बोझा टल गया। उसे कुछ विश्राम सा मिल गया।

करुणादेवी ने कहा—'बेटी कमला, तब तेरी जरूरत थी तो क्या अब नहीं रही। क्या तुम्हारे चले जाने से चपला को मुझ से कम कष्ट होगा ? यहाँ तुझे तकलीफ भी तो किसी बात की नहीं है। गाड़ी है, ताँगा है, जहाँ जी चाहे घूमने जाओ, तबीयत बहलाओ।'

यह कह कर करुणादेवी चुप हो गईं। किन्तु उत्तर की प्रतीक्षा में उनकी दृष्टि कमला के मुख की ओर स्थिर बनी रही।

कमला आँगन वाले विशाल आम्र वृक्ष की डाल पर बैठे हुए तोते की ओर ध्यानपूर्वक देखने का बहाना करने लगी।

कमला को निरुत्तर देख तथा अपनी सफलता समझ कर करुणा देवी शिवराम और सरूपा महरी के कलह का निपटारा करने चली गईं।

चपला ने कुछ स्वतन्त्रता का अनुभव करते हुए कमला से कहा—'बहिन ! मेरे ऊपर इतनी नाराज क्यों हो जो बार-बार बोर्डिंग जाने की धमकी दे रही हो। मैंने तुम्हारे मार्ग में कौन सी असुविधा उत्पन्न कर दी जो तुम्हें मुझ से इतना परहेज हो गया है। अपनी समझ में मैंने तो कोई त्रुटि नहीं की। तुम यहाँ रहतीं तो मुझे परीक्षा देने में आसानी होती, कुछ पढ़ाई भी हो जाती ; नही तो प्राइवेट भी नहीं बैठ पाऊँगी।'

कमला का मुख निस्तेज हो गया। वास्तव में उससे एक बहुत बड़ी गलती हो गई थी। जब दीनानाथ के पत्नी-विहीन होने की अवस्था में कमला किसी प्रकार की आपत्ति किये बिना उनके घर में रह सकी तब उनके पत्नी-युक्त होने पर वह घर से चली जाने को क्यों उतावली हो रही थी—यह प्रश्न किसी भी समझदार व्यक्ति के सामने खड़ा हो सकता था। और जब कमला का ध्यान इस असंगति की ओर गया तब वह मन-ही मन अत्यन्त संकुचित सी हो गई। परन्तु, इस बार निरुत्तर होने में, विशेप कर के चपला के सामने, उसकी पूरी हार हो जाने का डर था। इसलिए शीघ्र ही उसने अपनी स्थिति को मजबूत करने का उद्योग किया और कहा—'चपला, अम्मा के हठ से मैं परेशान हूँ, सच बात यह है कि यहाँ आकर मैंने भारी गलती की, जाऊँ तो भी नहीं बनती, न जाऊँ तो भी नहीं बनती।'

चपला ने मुसकराकर कहा—'तो ऐसा करो कि तुम्हारे जाने से किसी के मन में कोई गाँठ न पड़े। इसमें कोई सन्देह नही कि यदि तुम अभी चली जाओगी तो मैं यही कहूँगी कि बहिन को अपने जीजा से अकेले-अकेले गीता पढ़ने में सुविधा होती थी, किन्तु जब उस एकान्त को भंग करने के लिए मै आ गई तब उन्हें कष्ट होने लगा और वे चली गई। क्या तुम चाहती

हो कि मैं सब लोगों से यही कहा करूँ ? यदि नहीं तो आज से जाने का नाम न लेना।'

चपला की इन बातों में परिहास का कुछ अंश अवश्य था, किन्तु वह भी हृदय से चाहती थी कि कमला अभी न जाय, क्योंकि उसके रहने से स्वयं उसे भी तो आराम था; कृष्णकुमार की सेवा करने का भार अपने ऊपर लेने से वह बहुत डरती थी।

कमला ने अपनी समस्त दुर्बलता को एक हँसी के साथ बाहर निकालते हुए कहा--लो जब तुम इस तरह अंट-शंट बकने को तैयार हो तो मैं कहीं न जाऊँगी।

[३२]

दीनानाथ ने विवाह करने को तो कर लिया था, लेकिन वे यह जानते थे कि मेरे शेष जीवन में अभाग्य का ताण्डव नृत्य हुए बिना नहीं रहेगा। किन्तु जब चपला ने समस्त संकोच भाव का त्याग करके उन्हें अपने भावों से परिचित होने का अवसर दिया तब उन्हें अपने व्यर्थ भ्रम और भय पर खेद और आश्चर्य दोनों हुआ। जब कभी उन्होंने शिवप्रसाद की चर्चा का श्रीगणेश अथवा संकेत मात्र किया तब चपला की ओर से ऐसा विरोध हुआ कि विवश होकर उन्हें उसे स्थगित ही करना पड़ा। इससे चपला के प्रति दीनानाथ की धारणाओं में क्रान्ति हो गई। उनके हृदय में प्रेम की प्रबल धारा फिर उमड़ चली और जिस दिन उन्होंने गद्गद-हृदय होकर चपला के साथ अनिच्छापूर्वक किये हुए विवाह पर हार्दिक स्वीकृति की मुहर लगादी उस दिन उन्हें ऐसा अनुभव हुआ मानो उनके लिए एक नये ही स्वर्ग का द्वार खुल गया हो। उसी दिन उनके जीवन की सारी क्लान्ति, सम्पूर्ण विषाद ने चपला के काले-काले बालों की लटों में बाँध कर सिर नीचा कर लिया। उसी

दिन उनके ड्राइंग रूम में स्नेहपूर्वक टँगे हुए चपला के तैल-चित्र ने उनके सामने एक अपूर्व प्रेम की आभा प्रकट कर दी।

दीनानाथ का प्रेम का भूखा हृदय नवीन पत्नी के अनुराग-प्रसून पर रसिक भ्रमरकी तरह मँड़राने लगा। कालेज में जाते तो सारे दिन चपला की याद बनी रहती और यही सोचते रहते कि कब छुट्टी हो और कब घर चलें; यद्यपि थोड़े समय से प्रिंसिपल के देहान्त के कारण स्थानापन्न प्रिंसिपल होने से उन पर उत्तरदायित्व अधिक था। समस्त कर्तव्य-भावना, सार्वजनिक कार्य्यों में जहाँ तहाँ जाने की आवश्यकता आदि ने इस नवल प्रणय-प्रवाह के दुर्निवार वेग का लोहा मान लिया। चपला को परीक्षा भी देनी है, इसकी ओर भी उन्हें ध्यान न रह गया। यहाँ तक कि स्वयं करुणा देवी बड़े असमंजस में पड़ कर कमला से कहने लगीं कि कलियुग के लड़कों और लड़कियों के मन में क्या रहता है, यह उनकी जिह्वा से नहीं जाना जा सकता। और यद्यपि कमला ने इस तरह सफाई देने का प्रयत्न किया कि कम से कम उनका वाक्य उस पर भी लागू न हो जाय तथापि उन्होंने अपने मत में कोई संशोधन नहीं किया। उन्होंने अत्यन्त तेजस्वी भाव से कहा—'जो विवाह के प्रति इतनी अधिक अनिच्छा प्रकट करे वही पत्नी के आ जाने पर माँ के प्रति भो अपने कर्त्तव्यों को भूल जाय तथा उसकी गणना भी ज्ञानी पुरुषों में की जाय, यह अन्धेर नहीं है तो क्या है कमला!' कमला सिर नीचा किये, पृथ्वी की ओर देखती रह गई।

कमला चाहती थी कि यह प्रसंग शीघ्र ही समाप्त हो जाय। इसलिए उसने तुरन्त ही कृष्णकुमार को गोद में उठाया और द्वितीया के चन्द्रमा का विचित्र दर्शन कराकर उसे प्रसन्न करने

के उद्देश से छत पर जाने का उपक्रम किया; किन्तु, उसे रोक कर करुणा देवी ने सरल हास के साथ कहा - 'क्यों बेटी कमला! यदि तेरा ब्याह हो जाय तो तू बीमारी के समय मेरी चारपाई के पास बैठेगी या अपने पति की मीठी-मीठी बातें सुनना पसन्द करेगी?

कमला को इस मामले में करुणा देवी के साथ सहानुभूति नहीं थी, क्योंकि यदि वह दीनानाथ को चाहती भी तो यह स्पष्ट था कि करुणादेवी उसे अपनी पुत्र-वधू नहीं बना सकती थीं। इसलिए लापरवाही के साथ हँसते हुए उसने उत्तर दिया— 'यदि मैं अभी कह दूँ कि मैं तुम्हारी ही सेवा करूँगी और विवाह के बाद अपने वादे से पलट जाऊँ तो तुम मेरे ऊपर नालिश तो न करोगी अम्मा! यह कौन कह सकता है कि कब किसकी तबीयत किस ओर झुकेगी। मनुष्य बहुत से काम तो ऐसे करता है जिन्हें करने में उसकी मनोवृत्तियाँ उसे विवश कर देती हैं और उचित अनुचित का ज्ञान तक उसे नहीं रह जाता।'

करु०—'यह बात तो सच है बेटी कि चपला के लड़कपन से ही भैया उसे बहुत चाहते हैं, लेकिन विवाह करने के पहले उनके इतना विरोध करने से मैंने समझा था कि बहू के आ जाने पर उन्हे घर की ओर झुकना पड़ेगा न कि उलटा उनकी आसक्ति की शिकायत करनी पड़ेगी। अब मैं यह देखती हूँ कि तू घर में न रहे तो सब काम पड़े ही रह जायँ, कृष्णाकुमार को तो कोई पूछे न।'

कमला ने कहा—'अम्मा, अब मेरी भी तबीयत कुछ ऊब रही है, आज्ञा दो तो कुछ दिन के लिए चली जाऊँ। फिर जब बुलाओगी तब आ जाऊँगी।'

करु०—'जा बेटी, मैं तेरे साथ अन्याय नहीं करूँगी, तूने अपना धर्म्म बहुत निबाहा। कोई समझता ही नहीं तो कहाँ तक व्यर्थ ही पिसती जाओगी। तुम्हें पढ़ाने भी जाना और तुम्हीं यहाँ की सारी गृहस्थी भी सँभाले फिरो तो यह कैसे हो सकता है !'

करुणादेवी की इन बातों ने कमला के दुखे हुए हृदय में और भी घाव कर दिये। उसकी आँखें भर आयीं। बोली—'अम्मा, संसार में मेरा कौन है। आप ही लोगों को चाहे माँ समझूँ, चाहे बाप और भाई समझूँ। औरों ने मुझे पाला-पोसा न होता तो मैं इतनी बड़ी हो ही नहीं सकती थी। अब उसी तरह मेरा भी तो कर्तव्य है कि मैं औरों की सेवा करूँ। तुम शादी, शादी चिल्लाती रहती हो, मैं इसीलिए शादी के झंझट में नहीं पड़ना चाहती, अम्मा।'

करुणा देवी ने कहा—'बेटी, तुम जाओ, बोर्डिंग में रहो, तुमसे मैंने बहुत काम लिया, अब इन लोगों की बेहयाई देख कर तुम्हें अधिक हैरान करने को जी नहीं चाहता। देखो, तुम मुझसे किसी वजह से नाराज तो नहीं हुई कमला। यदि कोई भूल चूक हुई हो तो माफ करना बेटी।'

कमला ने प्यार भरी नाराजी का प्रदर्शन करते हुए कहा—'अम्मा तुम्हारा सारा दुलार, सारा प्यार, समस्त ममता तुम्हारी ऐसी ही एकाध बातों से बिलकुल बेकाम हो जाती है। भूल-चूक माफ कराने का मेरा काम है या तुम्हारा? अगर तुम मुझे अपनी बेटी समझतीं तो मुझसे इस तरह बातें न करती, अम्मा !'

यह कह कर कमला कोठे पर चली गई।

अम्मा कमला की सुशीलता की सराहना करती तथा अपनी

इस छोटी सी भूल के लिए मन ही मन पछताती चुपचाप बैठी रहीं।

[३३]

कमला ने वोर्डिंग जाने की तैयारी तो कर दी, परन्तु कृष्ण-कुमार के स्नेह से वह विवश थी। अव भी यदि उससे थोड़ा सा आग्रह किया जाता तो शायद वह रुक जाती,परन्तु करुणा-देवी तो उसे जाने को आज्ञा दे ही चुकी थीं,ऐसी दशा में चपला के सिवा उसे रोकने वाला और कोई नहीं था। चपला ने देखा कि कमला के जाते ही कामों का पहाड़ मेरे सिरपर टूट पड़ेगा। अम्मा की तवियत का क्या ठिकाना, दो दिन अच्छी तरह रहती हैं तो तीसरे दिन जरूर ही अस्वस्थ हो जाती हैं। यह सोच कर चपला ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए कमला को वोर्डिंग में न जाने देने का निश्चय किया। और चपला के इस क्रियात्मक विरोध में करुणादेवी ने भी दवीजुवान से साथदिया। परिणाम यह हुआ कि कमला का जाना रुक गया, परन्तु उसने करुणा देवी को अपने वादे से पलट जाने पर प्रेम-भरा मीठा उलहना देकर अपनी स्थिति को मजवूत करने की कोशिश अवश्य ही की।

कमला वास्तव में केवल कृष्णकुमार के स्नेह से ही दीना नाथ के यहाँ नहीं रहना चाहती थीं। वाल्यकाल में चपला के प्रति दीनानाथ का अपार स्नेह देखकर वह उसे द्वेष की दृष्टि से देखती आ रही थी। फिर कुछ वड़ी उम्र में जव दीनानाथ का वह प्रेम शिथिल पड़ गया तव उसे सन्तोष हुआ था। उसने इतने से ही,फिर भी,अपना कार्य समाप्त हुआ नहीं समझा। वह चपला के स्थान को स्वयं ग्रहण करना चाहती थी। इसीलिए उसने वहुत मनोयोग और स्वार्थ-त्याग पूर्वक आगरे में चोट लगने पर उनकी सेवा की। इसी कारण जिस समय विवाह की चर्चा चल

रही थी उस समय उसने कृष्णकुमार की बीमारी आदि में उस धैर्य और प्रेम के साथ काय किया जो माता को छोड़ कर अन्य स्त्री में मिलना दुर्लभ है। दीनानाथ का उसकी ओर ज्यों-ज्यों स्नेह बढ़ा त्यों-त्यों उसने उद्देश्य-सिद्धि में सफलता प्राप्त होती देख आनन्द का अनुभव किया। किन्तु उसका यह आनन्द चपला ने आकर फिर छीन लिया। जिसको प्रसन्न करने में उसे इतना परिश्रम करना पड़ा, इतना कष्ट सहना पड़ा उसी को चपला ने इतनी सरलता के साथ फिर अपने वश में कर लिया, यह देख कर कमला हैरान थी। ऐसी परिस्थिति में बोर्डिंग में चले आने पर भी कमला के चित्त में शान्ति नहीं आ सकती थी और वहाँ रहकर वह चपला को फिर पराजित करने का तो कोई उद्योग कर ही नहीं सकती थी। यदि परिस्थिति में थोड़ा ही अन्तर होता, उदाहरण के लिए यदि चपला का अस्तित्व न होता तो दीनानाथ को आकर्षित देखकर भी कमला उपेक्षा ही दिखाती। परन्तु चपला के प्रति द्वेष तो उसके रोम-रोम में बसा था, वह उसके हृदय का एक संस्कार हो गया था; ऐसी दशा में दीनानाथ से असन्तुष्ट होकर भी उसे उपाय तो वही करना था जिससे दीनानाथ पर से चपला का जादू उतरे। इसलिए अभी बोर्डिंग न जाकर उसने धैर्यपूर्वक कुछ दिन चपला और दीनानाथ के सम्बन्धों की प्रगति को तटस्थ व्यक्ति की भाँति देखने का विचार किया।

एक दिन दीनानाथ कालेज से हँसते हुए आए और एक पत्र चपला के सामने फेंक कर बोले—'देखो, यह पत्र अमरीका से आया है।'

'अमरीका से ?' चौंक कर चपला ने पूछा।

दीनानाथ ने उत्तर दिया—'हाँ, हाँ, अमरीका से; शिव

प्रसाद महाशय का पत्र है। विवाह के लिए बधाई दी है। पढ़ो तो सही।'

पत्र निकालकर चपला पढ़ने लगी। शिवप्रसाद ने लिखा था—
श्रीमती चपला देवी जी;

महासमुद्र-पार प्रवास करने वाला तुम्हारा एक शुभ-चितक तुम्हारे थोड़े से अमूल्य समय को नष्ट करने के लिए पहले ही से क्षमा माँगता है। यदि वह क्षमा-प्रदान संभव हो तब तो आगे पत्र पढ़ने की तकलीफ गवारा करना और यदि नही तो उसे तुरन्त ही फाड़कर फेंक देना। यह प्रवासी कौन है, यह तो तुम्हें लिफाफे ही की बाईं ओर देखने से मालूम हो जायगा। आशा तो मुझे है कि क्षमा न कर सकने की अवस्था में भी तुम मेरे पत्र को पूरा पढ़ ले जाओगी, क्योंकि कुछ दिनों से तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति अकारण रोष और घृणा का जो सागर उमड़ पड़ा है वह भी तुम्हारे उत्कण्ठा-भाव को जगाये बिना नहीं रहेगा। तुम्हारे उदार भाव से निराशा होगी तो तुम्हारा क्रोध मेरा काम अवश्य ही सिद्ध कर देगा।

चपला! तुम्हारे विवाह के सम्बन्ध में 'भारतसेवक' में जो नोट निकला है उसे ही पढ़कर इस विदेश में तुम्हारे पास बधाई का पत्र भेजने की इच्छा प्रबल हो उठी, इतनी प्रबल कि उसे मैं रोक न सका। अन्त में सब प्रकार से विवश होकर मैंने कलम और कागज हाथ में लेकर रोशनाई के सहारे अपने भावों को व्यक्त करने की इच्छा की है। मैं तुम्हारा शिक्षक रह चुका हूँ, उसी नाते तुम्हें अपने अनुभव की कुछ बातें बताता हूँ।

यहाँ अमरीका आने पर मैंने अमरीकनों के दैनिक दम्पति-जीवन का बड़ा सूक्ष्म अध्ययन प्रारम्भ कर दिया है। मैं निस्सं-कोच कह सकता हूँ कि इनके जीवन में आनन्द की वह धारा

प्रवाहित नहीं होती जो भारतवर्ष के हिन्दू दम्पति के जीवन में देखी जाती है। हिंदुस्तान के ईसाइयों ने अन्धवत् पाश्चात्य समाज का अनुकरण करके ऐसी गलती की है कि उसकी भयंकरता का ठीक-ठीक अनुमान कर सकना कठिन है। ईसाइयों के गृहजीवन में विशेष कर तथा अँगरेजी प्रभावों से प्रभावित अन्य विवाहित हिंदुस्तानी महाशयों के दैनिक जीवन में भी साधारणतया जो उच्छृङ्खलता देखी जाती है, उसकी, स्वदेश में पहुँचकर, मै तीव्र आलोचना करूँगा और समझाऊँगा कि भारत के प्राचीन आदर्श की ओर चलो।

प्रिय चपला! लौटने पर तो मैने यहाँ जो कुछ देखा और सीखा है वह सब तुम्हें बताऊँगा ही, किंतु तुम्हारे शुभ विवाह की सूचना अपने प्यारे स्वदेश के पत्र से पाकर इतना लिखने का लोभ संवरण करना तो कठिन है कि तुम्हें अपने नवीन जीवन में प्रवेश करने पर भारत के प्राचीन आदर्शों के ही रास्ते पर चलना सीखना चाहिए। मैं यह जानता हूँ कि तुम्हारी वर्तमान मनोवृत्ति के ज्यों की त्यों बनो रहने की अवस्था में मैं ये सब बातें लिख कर तुम्हारे रोष के बढ़ने अथवा तुम्हारी उपहास-प्रवृत्ति के उल्लसित होने के लिए उचित सामग्री ही दे रहा हूँ। जो हो, मुझे परिणाम की चिंता कुछ नहीं है। मेरा जो कुछ कर्तव्य है उसे मै कर रहा हूँ।

अन्त में तुम्हें एक बार और बधाई देकर मैं विदा होता हूँ।

तुम्हारा कृपाकांक्षी
शिवप्रसाद

पत्र पढ़ कर चपला ने दीनानाथ के आगे फेंक दिया और कहा—देखिए कैसी अमूल्य शिक्षा दी है, मानो आप के हाथ से मेरे निकल जाने का सब से बड़ा सदमा इन्हीं को होगा।

दीनानाथ ने पत्र पढ़कर चपला के सामने रख दिया और अपने नाम का पत्र भी उसके हाथ में दे दिया। उसमें शिव-प्रसाद ने लिखा था -

प्रिय बाबू दीनानाथ जी;

आपके विवाह का समाचार मिला। श्रीमती चपला देवी आप के लिए बहुत उपयुक्त वधू हैं। विद्वान और विदुषी तो आप लोग हैं ही, साथ ही दोनों में अनेक ऐसे गुण हैं जो एक दूसरे के अभाव की पूर्ति करते हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि आप चपला देवी जी की सुशीलता से बहुत सन्तुष्ट होंगे। आठ-दस महीने में मेरा यहाँ का काम समाप्त हो जायगा और आप का दर्शन कर के आप को स्वयं बधाई दे सकूँगा।

आपका
शिवप्रसाद

चपला इस पत्र में अपनी थोड़ी प्रशंसा देखकर कुछ प्रभा-वित अवश्य हुई। फिर भी उसने अपनी मुख-मुद्रा से इसके प्रकट न होने देने का पूरा प्रयत्न किया।

[३४]

दीनानाथ इस बात को जानते थे कि उनके कर्त्तव्य-पालन में काफी त्रुटि हो रही है। परन्तु यह जानकर भी वे स्वयं को उस मोह से मुक्त नहीं कर सकते थे जो चपला के मादक सौन्दर्य ने उनके हृदय में उत्पन्न कर दिया था। इस कारण जहाँ आजकल वे जीवन का सब से बड़ा आनन्द अनुभव कर रहे थे वहाँ हृदय के एक कोने से नैतिक असन्तोष की पुकार से भी विचलित हो जाया करते थे। जब तक घर का साधारण कार्य सुविधा से चला जाता रहा तब तक वे अपनी मधुपान-तृप्ति में भूले रहे, किन्तु जब उन्हें माँ की बीमारी का समाचार मिला तब उनकी निद्रा भंग हुई।

जिस कमरे में करुणादेवी ज्वर-ग्रस्त होकर व्याकुल पड़ी हुई थीं उसमें जाकर दीनानाथ माँ के पैताने बैठ गये और बोले—कैसी तबीयत है माँ ?

करुणादेवी ने पुत्र के चेहरे पर उदासी और चिन्ता का भाव देखा तो पहले का उनका सारा क्रोध, सारी माख नष्ट हो गई और दीनानाथ का परितोष करने के लिए उन्होंने कहा—'बेटा, तुम कोई फिक्र मत करो, बहुत जल्दी चंगी हो जाऊँगी।'

दीनानाथ कुछ न बोले। माँ की यह सरल बात भी उनके हृदय पर आघात कर बैठी। उन्हें अपनी पूर्व उपेक्षा पर गहरा पछतावा हुआ और चपला के सौन्दर्य का रसास्वादन उनके हृदय में अरुचि उत्पन्न करने लगा। माँ के सहज, निर्विकार प्यार की विजय होने लगी। दरवाज़े की ओर नजर गई तो एक ओर की किवाड़ से चिपक कर सिमिटे तथा चिन्ता की मूर्ति बने हुए शिवराम को देखकर कहा—'जाओ कमला से थर्मामीटर माँग लाओ।'

बहू जी का नाम न लेकर आज कमला रानी का नाम बाबू जी ने क्यों लिया, यही सोचता हुआ शिवराम सीधा वहीं गया जहाँ कमला कृष्णकुमारी को सुलाने का प्रयत्न कर रही थी। शिवराम ने कहा—'बाबू जी ने थर्मामीटर माँगा है।'

'मुझ से थर्मामीटर माँगा है ?' कमला ने चौंक कर पूछा। फिर, तुरन्त ही कहा—'थर्मामीटर मेरे पास कहाँ है जो मुझ से माँगते हैं, जा बाबू जी से कह दे।'

बाबू जी का भी विचित्र हाल है। चीज रखने को देंगे बहू जी को, तो मांगेंगे कमला रानी से। क्या जाने कैसे कालेज में पढ़ाते हैं। या तो इन्हें कुछ रहता ही नहीं - अपने ही कानों को सुनाने भर की ऊँची आवाज में यह सब बड़बड़ाता हुआ शिवराम दीनानाथ के पास पहुँचा और बोला—'बाबू जी, वे तो

कहती हैं कि उन्होंने मुझे कभी दिया भी था कि माँगते ही भर दें।'

कमला के रोष के साथ शिवराम के रोष ने संयुक्त होकर कमला के भाव की प्रायः रक्षा करते हुए उसकी भाषा में थोड़ा परिवर्तन कर दिया था।

दीनानाथ ने समझा था कि उनके इस कार्य से कमला सन्तुष्ट होगी। किन्तु यह न होने पर भी उन्हें कम से कम इतना तो मालूम हो गया कि उसके असन्तोष की खाई कितनी गहरी है। धीरे से बोले—'जाओ देखो, बहू जी के पास होगी।'

शिवराम ने चपला से जाकर कहा तो चपला स्वयं थर्मामीटर लेकर सास के कमरे में दौड़ी आई। उसे यह दिखाने का अवसर छोड़ना पसन्द नहीं आया कि सास की बीमारी से मैं कम चिन्तित नहीं हूँ। कमला भी कृष्णकुमार को सुलाकर शीघ्र ही आ गई।

दीनानाथ ने थर्मामीटर लगाकर देखा तो १०२ डिग्री का ज्वर था। ऐलोपैथिक दवाइयों से तो करुणादेवी को मुद्दत से घृणा थी। इसलिए दीनानाथ ने शिवराम को शीघ्र ही वैद्य बुलाने के लिए भेजा। रास्ते में उसे सरूपा महरी बहुत धीमी चाल से आती दिखाई पड़ी। कोई खास कारण न होने पर भी ताँगे पर बैठने के बाद शिवराम ने महरी से डाँट कर कहा—'वहाँ अम्मा की तबीयत खराब हो रही है और यहाँ तुम खरामा-खरामा घूम रही हो। इस महीने में तुम्हारी तनखाह न कटवा दूँ तो मेरा नाम शिवराम नहीं।'

सरूपा महरी काफी चपट थी। फिर भी ताँगे का असर तो उस पर पड़ ही गया; घबराई हुई घर की ओर झपटी।

वैद्य जी ने परीक्षा करके दवा दी और विश्वास दिलाया कि एक सप्ताह में ये चंगी हो जायँगी। किन्तु एक सप्ताह की जगह

एक महीना बीता, दो महीने बीते, करुणादेवी अच्छी नहीं हुईं। अच्छे से अच्छे वैद्यों ने उन्हें जवाब दे दिया। बीमारी की ऐसी संकटपूर्ण अवस्था जानकर बाबू रघुनाथप्रसाद श्रीमती गायत्री देवी और श्यामकिशोर को साथ लेकर आ पहुँचे। और भी कितने ही नये पुराने रिश्तेदार आ गये।

तीन चार दिन के बाद करुणादेवी इस संसार में अपनी कीर्ति छोड़ कर परलोकगामिनी हो गईं। दो ही दिन बाद चपला के बी० ए० पास होने का समाचार मिला।

माँ के स्वर्गवास से दीनानाथ को इतना शोक हुआ कि चपला की मादक मुसकान की मदिरा भी उसे दूर न कर सकी। माँ के जीवित रहते हुए वे अपनी गणना लड़कों ही में करते थे और जब किसी कारण-वश उन्हें अपना लड़कपन विस्मृत हो जाता था तब माँ की प्यार-दुलार से भरी बातें उसे फिर जगा देती थीं। अब माँ के न रहने पर उनकी सब से बड़ी हानि इसी लड़कपन के लोप के रूप में उपस्थित हुई। दीनानाथजैसे भावुक व्यक्ति के लिए यह हानि कोई साधारण हानि नहीं थी।

चपला के लिए करुणादेवी का वियोग एक साधारण घटना थी। जैसे नदी का प्रवाह कगारे के टूटने सेबन्द नहीं होता, बल्कि उसे भी आत्मसात् करके निर्विघ्न रूप से अग्रसर होता है वैसे ही चपला देवी का विहार और विलास-प्रिय चित्त सास की अनुपस्थिति से अपनी प्रवृत्तियों को छोड़ नहीं सकता था। जिस दिन करुणादेवी ने इस संसार से कूच किया उस दिन और उसके बाद जब तक क्रिया-कर्म समाप्त नहीं हो गया तब तक तो शोक मनाना नैतिक दृष्टि से बड़ा भारी अपराध माना जाता; चपला इस कोटि की अपराधिनी होने का साहस नहीं रखती थी; किन्तु उसके बाद स्मृतियों से विषाद का आहार प्राप्त करके विरही अस्तित्व बनाये रखने के लिए वह तैयार न थी,

और, उसने अपना हारमोनियम सँभाल कर गाना-वजाना शुरू कर दिया। दीनानाथ शायद चपला के संगीत से स्वयं भी कुछ आनन्द लाभ करने की चष्टा करते, लेकिन जब वे एक ओर तो कमला को उदास और कृष्णकुमार की देख-रेख में व्यस्त तथा दूसरी ओर चपला को वुलवुल की तरह चहकती पाते, तथा, साथ ही, इस तुलना में जब उन्हें यह भी स्मरण आता कि कमला गरमी की छुट्टी में कहीं न जाकर मेरे कार्यों में सहयोग देती रही है तव उनकी विराग-प्रवृत्ति में कृतज्ञता का समावेश सम्पन्न होकर उन्हें चपला के विहार का विरोधी वना देता था। इस प्रकार दीनानाथ की सहानुभूति आजकल कमला की ओर अधिक वढ़ रही थी। इस सहानुभूति की प्राप्ति से कमला को संतोष था, किन्तु, उसने इसके लिए कोई उद्योग नहीं किया था। वह करुणादेवी के निर्मल प्रेम से सचमुच ही वहुत प्रभावित हुई थी और वच्चों की सी कपटशून्यता लेकर जो वे कभी कभी उसके साथ विनोद में सम्मिलित होती थीं उसकी याद अनेक उपकारों और कृपाओं से दवी हुई कमला की आँखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित कराती थी। उसके वर्तमान कष्ट में कोई वनावट न थी, कोई कोशिश न थी। इस अवस्था में उसकी मौन वेदना आसपास के वातावरण को प्रभावित करके चपला के मनोविनोद को अप्रिय और दीनानाथ को अपना अनुगत वना लेती थी तो कोई अचरज की वात नहीं।

इधर दीनानाथ को चपला से शिकायत थी, उधर चपला को भी दीनानाथ से कम शिकायत न थी। वह मन ही मन कहती—माँ क्या किसी और की नहीं मरतो, संसार मे क्या एक इन्हीं की माँ थीं, पर किसी को इस तरह स्त्री से विरक्त होते नहीं देखा। सीधे से वोलते नहीं, गम्भीर ऐसे वने रहते हैं मानों

संसार की सारी गम्भीरता का इन्होंने ही ठेका ले लिया हो। दीनानाथ को वर्तमान प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में चपला की विचार-श्रेणी अग्रसर होते होते उसे ऐसे स्थान पर पहुँचाती जहाँ उनके विराग और उदासीनता का कारण केवल माँ का वियोग अपर्याप्त समझा जा सकता था। दीनानाथ और कमला के अधिक संपर्क को सन्देह की दृष्टि से देखकर उसने उक्त अपर्याप्ति का निवारण कर लिया। दीनानाथ को आकर्षित करने में असफल होकर क्रमशः गाने-बजाने में वह शिथिलता का अनुभव करने लगी; क्योंकि उसका प्रशंसा-प्रिय स्वभाव किसी की वाह-वाही के बिना, किसी के प्रेम-पूर्ण उद्गारों के बिना उसे चैन नही लेने देता था। इस कारण अपने आमोद-प्रमोद में थोड़ी कमी करके वह कमला और दीनानाथ के पारस्परिक सौहार्द की जाँच करने में अधिक समय खर्च करने लगी।

जब सन्देह का कीड़ा किसी अभागे के हृदय-पुष्प में प्रवेश करता है तब उसके विचार-दलों में वह उदारता नहीं रहने पाती जो उसका सहज शृंगार है। चपला की भी यही दशा हुई। कृष्णकुमार की देख-रेख में वह स्वयं अधिक समय व्यतीत नहीं करती थी, लेकिन उसके सम्बन्ध से दीनानाथ और कमला के बढ़ते हुए साधारण संपर्क को भी वह अत्यंत संशयशील होकर देखने लगी। छुट्टी समाप्त होते ही,कमला बोर्डिंगहाउस में जाकर रहने लगी।

घर से कमला का चला जाना दीनानाथ को बहुत अखरा। चपला से वे रुष्ट तो थे ही, किन्तु इस घटना से उनके रोष ने एक गभीर रूप पकड़ा। चपला यह समझती थी कि यदि कृष्णकुमार की देख-रेख में किसी प्रकार त्रुटि होगी तो पति-देवता को कमला की प्रशंसा करने का एक अच्छा अवसर मिल जायगा। इसलिए जितना वह कर सकती थी उतना तो करती थी।

लेकिन दूसरों के बच्चों के साथ माँ का सा वर्ताव करना सभी स्त्रियों का काम नहीं है। अतएव, चपला प्रायः असावधान और असफल पाई जाती थी। एक दिन चपला हारमोनियम बजाने में ऐसी भूली कि उसे दीनानाथ के कालेज से लौटने का समय याद न रहा। इसी बीच कृष्णकुमार सोती हालत में चारपाई से गिरकर रो रहा था। साधारण चोट भी आ गई थी। संयोग की बात, इस समय घर में न शिवराम था, न सरूपा महरी। शिवराम साधारणतया ऐसे समय कोचवान वगैरह से गप्प लड़ाता और बड़े गर्व के साथ दीनाबाबू पर अपने प्रभाव और अधिकार की चर्चा तथा उनके यहाँ अपनी लम्बी नौकरी की डींग हाँकता रहता था। परन्तु सरूपा तो तभी मकान के बाहर जाती थी जब चपला उसे किसी काम से भेजती थी। ऐसी दशा में दीनानाथ ने एक ओर लड़के का रोना और दूसरी ओर हारमोनियम का बजना सुन लिया। एकाएक उनके प्रायः शान्त रहने वाले चेहरे का रंग बदल उठा, आखें लाल हो गईं, होंठ फड़कने लगे। काँपते हुए शब्दों में अपने क्रोध को उन्होंने व्यक्त भी कर दिया, बोले, 'यह क्या हो रहा है? क्या कृष्णकुमार का बलिदान करने ही के लिए तुमने कमला को यहाँ से रवाना कर दिया है? तुम्हारी नजरों में कृष्णकुमार इतना खटकता क्यों है? जब तक वह बेचारी रही तब तक उसे बराबर तंग करती रहीं, अब यह भी नहीं होता कि इस बच्चे को तो सँभालो।'

चपला एक दम से सन्नाटे में आ गई। कम से कम आज उसने जान बूझ कर अपराध नहीं किया था। इस समय अगर वह अपनी सफाई देती तो उसके स्वीकृत होने में सन्देह था। फिर भी उसने कहा—'मुझे क्या मालूम कि वह गिर पड़ा है।'

दीनानाथ ने चपला को अधिक बोलने का अवसर न देते हुए कहा—'तुम्हें मालूम भी कैसे हो ? तुम्हें हारमोनियम बजाने से मतलब, लड़का भाड़ में जाय।'

चपला ने देखा कि इस समय कुछ भी कहना व्यर्थ है। इसलिए उसने प्रयत्न करके अपने आप को संयमित रक्खा। उसी दिन से पति-पत्नी के बीच मत-भेद की एक गहरी खाई पड़ गई। एक दूसरे की त्रुटियों पर उदारतापूर्वक दृष्टिपात करना दोनों ने छोड़ दिया। दीनानाथ यों भी प्रायः कमला के पास हो आया करते थे, किन्तु गृह-कलह के बढ़ने पर उसके पास नित्य जाने का उन्होंने नियम कर लिया।

एक दिन जिस समय दीनानाथ कालेज में पढ़ा रहे थे उसी समय चपला इस प्रश्न पर विचार कर रही थी कि स्त्री-पुरुष से दबती क्यों है ? पुरुष उसे इतना तुच्छ क्यों समझता है ? क्या इसीलिए कि पुरुष कमाता है और स्त्री को भी खिलाता है ? उसकी दृष्टि में इस क्षमता का कोई मूल्य नहीं था; क्योंकि उसका खयाल था कि चाहूँ तो मैं भी काफी कमा सकती हूँ। ऐसी अवस्था में दीनानाथ का उसपर रोब जमाना उसे एक प्रकार की अनधिकार चेष्टा समझ पड़ी। उसने मन ही मन कहा—दीनानाथ की सब लोग कितनी प्रशंसा करते हैं, कोई कोई तो उन्हें आदर्श पुरुष तक कह डालते हैं। जनता की दृष्टि में जो आदर्श पुरुष है जब वह व्यवहारिक जीवन में ऐसा हो सकता है कि पर-स्त्री को लोलुप दृष्टि से देखे, और अपनी स्त्री के प्रति इस प्रकार अन्यायपूर्ण व्यवहार करे तो फिर साधारण जन की क्या अवस्था होती होगी ! यह दीनानाथ हैं जो मुझे खिलौने की तरह प्यार करते थे, यही दीनानाथ हैं जिन्होंने मेरा तैल-चित्र बनवा कर अपनी बैठक में टाँग रखा है। हो न हो विवाहित जीवन का यह दोष है, जिसके कारण देवता भी राक्षस

हो जता है। इस समय एकाएक चपला को शिवप्रसाद की याद आ गई। उसने सोचा—ठीक ही यह शख्स कह रहा था कि विवाह करना प्रेम के लिए आवश्यक नहीं है। आह! मैंने सख्त गलती की जो उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया, उलटा नाराज हो बैठी। देखो न होशियार कमला को, भाई साहब को तो फाँस ही रखा है,मेरे पति के लिए भी जाल बिछा दिया। विवाह किया होता तो इस तरह मनमाना प्रेम करने का मौका थोड़े ही लगता!

तो फिर मै अब क्या करूँ? क्या दासता की बेड़ियों में जकड़ी रहूँ या अपनी शिक्षा के अनुरूप अज्ञान के इस अन्धकार के प्रति विद्रोह करूँ? इस समय चपला की जैसी मनोवृत्ति थी उसके कारण इस प्रश्न का उत्तर निश्चित करने में उसे देर नहीं लगी। वह अशिक्षिता स्त्रियों की तरह आँख मूँद कर पति का शासन स्वीकार करने को तैयार नहीं थी। उसने अपने आप से कहा—अंगरेज औरतों को देखो, वे कितनी स्वतंत्र होती हैं, और इसी कारण अंगरेज मर्द को उनकी कितनी इज्जत भी करनी पड़ती है। शिवप्रसाद जी के पास पत्र लिखकर क्यों न वहाँ की महिलाओं के सम्बन्ध में कुछ बातें पूछूँ और जैसा वहाँ की स्वतंत्र स्त्रियाँ करती हों वैसा ही मैं भी करूँ। यह निश्चय करके उसने उनके पास निम्नलिखित पत्र रवाना किया:—

गोलागंज, लखनऊ

श्रीमान्!

कुछ समय पहले आप ने मेरे पास एक कृपा-पत्र भेजा था। खेद है, उसका उत्तर मैं नहीं दे सकी। हाल ही में आपका एक पत्र फिर आया था। खेद है, अनेक झंझटों में फँसी रहने के

कारण मैं आज के पहले उसका उत्तर भी न दे सकी। आशा है, आप मुझे इस विलम्ब के लिए क्षमा करेंगे।

एक बात मै आप से बहुत स्पष्टता के साथ कहना चाहती हूँ। आप का यह खयाल गलत है कि मैं आप से नाराज हूँ। किसी समय आपस में कोई खास बात खटक जाय तो उसका यह अर्थ नहीं कि जिन्दगी भर के लिए नाराजी की बात पैदा हो गई। आप ने अपने पत्र में जिस विनम्रता की शैली ग्रहण की है उससे मै अत्यन्त अधिक संकोच में पड़ गई हूँ। आप को ऐसा न करना चाहिए था।

आप ने मुझे विवाह अवसर के उपयुक्त जो उपदेश दिया है उसकी निस्सारता का परिचय तो मुझे थोड़े ही दिन के विवाहित जीवन से हो गया। प्रश्न यह है कि स्त्री पुरुष से दबे क्यों? उसको देवता की तरह पूजे क्यों? क्या इसीलिए कि उसकी मिहरबानी की बदौलत दो रोटियाँ मिलती हैं? अमरीका के दम्पति-जीवन की आप ने जो आलोचना की है उसमें आप स्त्री की स्वतन्त्रता के प्रति अनुदार हो गये हैं। यदि स्त्री स्वतन्त्र हो और पुरुष भी स्वातन्त्र हो तब संघर्ष की आशंका उतनी नहीं है जितनी उस अवस्था में जब कि एक गुलाम हो और दूसरा स्वतन्त्र हो। और तब उस संघर्ष का परिणाम भी क्या होगा! एक की मृत्यु और दूसरे का अधःपतन। अतएव. मैं आप की आज्ञा को मानने के लिए तब तक तैयार नहीं हूँ जब तक मेरा अनुभव मुझे सन्तुष्ट न कर दे। क्या आप कृपा कर के अमरीका की स्त्रियों के सम्बन्ध में कुछ अधिक लिखने की मिहरबानी करेंगे।

आप को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस वर्ष में

बी० ए० हो गयी हूँ। पत्र प्रोफेसर साहब की मारफत मत भेजियेगा।

आप की वही
चपला

मिस्टर शिवप्रसाद ने निम्नलिखित उत्तर भेजा—

न्युयार्क, अमरीका

प्रिय चपला ;

इस प्रिय सम्बोधन के लिए क्षमा करना। परन्तु तुम्हारे प्रेमपूर्ण पत्र ने मेरे हृदय में जिस आशा और प्रेम का संचार किया है उसने मुझे इसी प्रकार लिखने के लिए विवश कर दिया है। उस दिन पार्क में जब तुम मुझ से नाराज हो गई थीं तब मैंने यह तो समझा था कि अपने क्रोध के नशे में तुम कुछ न कुछ अनिष्ट कर डालोगी, लेकिन फिर भी मेरा विश्वास बना रहा कि कभी न कभी तुम्हें अपनी गलती पर पछताना पड़ेगा। सो जहाँ इस बात से मुझे हर्ष है कि तुमने तथ्य बात को समझ लिया वहाँ इसका खेद भी है कि तुम्हारे ऊपर वह सब उत्तरदायित्व आ पड़ा जो विवाह के कारण उपस्थित हो जाता है।

यह बात सच है कि आनन्दमय विवाह केवल दो स्वतन्त्र व्यक्तियों में हो सकता है। स्वतन्त्रता होने पर ही सच्चे प्रेम का भी रसास्वादन किया जा सकता है। अमरीका ही की स्त्रियाँ क्यों, सम्पूर्ण सभ्य जगत् की स्त्रियाँ पुरुषों की किसी प्रकार की भी अधीनता स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। इसका कारण है स्त्रियोंकी आर्थिक स्वाधीनता। यहाँ दो स्वाधीन स्त्री और पुरुष इसलिए प्रेम-सूत्रमें नहीं बँधते कि ऐसा किये बिना उनमें से एक का जीवित रहना कठिन हो जायगा बल्कि इसलिए कि उन्हें एक दूसरे से किसी प्रकार की सहायता की अपेक्षा न

होते हुए भी प्रेम-जनित विवशता का अनुभव करना पड़ता है। हिन्दुस्तान की ता लीला ही न्यारी है। वहाँ तो तुम्हारे जैसी ग्रेजुएट महिलाएँ भी अपनी जीविका अर्जित करने में संकोच करती हैं, जिसका कारण यह है कि शायद उन्हें जीवन के प्रति पल अपने सतीत्व के हरण ही की चिन्ता लगी रहती है। परिणाम यह होता है कि तुम्हारे ऐसी योग्य स्त्रियों के साथ भी पुरुष इस प्रकार का व्यवहार कर सकता है जो नारी-जाति के गौरव के प्रतिकूल हो।

गत पत्र में मैंने जो कुछ लिखा था वह मेरा उस समय का एक खयाल था जो उसी समय सूझा था और उसी समय के साथ चला भी गया। अमरीका की स्त्रियों के सम्बन्ध में क्या लिखूँ। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अनुचित बन्धनों में न पड़ कर ये स्वतंत्र विहार करतीं और जीवन के आनन्द लूटती हैं। मेरा तो खयाल है कि यदि तुम इस वातावरण में आओ तो औ. की और हो जाओ और फिर शायद प्रोफसर साहब से तुम्हारी तबीयत ऊब भी जाय, क्योंकि जहाँ तक मैं अनुमान करता हूँ वे आवश्य ही तुम्हारे सामने अनेक अड़चनें उपस्थित करते होंगे। मै शीघ्र ही भारतवर्ष के लिए रवाना हो जाऊँगा।

तुम्हारा वही,
शिवप्रसाद

इस प्रकार दीनानाथ की गैरजानकारी में चपला और शिवप्रसाद के बीच फिर सौहार्द स्थापित हो गया और दोनों एक दूसरे को शीघ्र से शीघ्र देखने के लिए तड़पने लगे।

पूरे एक वर्ष तक अमरीका में रह कर मिस्टर शिवप्रसाद भारतवर्ष को लौट आये। आते ही उन्होने बनारस, प्रयाग,

और लखनऊ के कालेजों में धर्म के तुलनात्मक अध्ययनविशिष्ट व्याख्यानों की धूम मचा दी। इन व्याख्यानों की ध्वनि से समझने वाले समझ गये कि शिवप्रसाद इस समय ऊँची तनख्वाह के लिए सौदा कर रहे हैं। बाबू रघुनाथप्रसाद अब भी शिवप्रसाद को आर्यसमाज मे ले लेना चाहते थे, लेकिन उनके मर्म को समझने में उन्हें देर न लगी। इससे वे उदासीन हो गये, क्योंकि उनको आर्यसमाजी बनाने का मतलब, वर्तमान परिस्थिति में, यही होता कि डी.ए.वी.कालेज, लखनऊ का जो पद प्रिंसिपल के स्वर्गवास के कारण रिक्त हो गया था और अभी जिस पर दीनानाथ स्थानापन्न के रूप में काम कर रहे थे, वह उनको दे दिया जाय। अपने दामाद की यह हानि करने के लिए वे तैयार न थे।

लेकिन बाबू रघुनाथप्रसाद डी० ए० वी० कालेज की कार्यकारिणी समिति के एक सदस्य मात्र थे। उनके पास इतना समय नहीं था कि समस्त अधिकारी सज्जनों को अपने पक्ष में कर लेते। समय होता भी तो शायद उनकी बात लोगों को न पसन्द आती; क्योंकि यही समझा जाता कि वे अपने दामाद के कारण ऐसा कर रहे हैं।

शीघ्र ही यह प्रगट हो गया कि शिवप्रसाद आर्यसमाज में दीक्षित होने के लिए सहमत हैं। बनारस ही में, जहाँ प्रोफेसर दीनानाथ और बाबू रघुनाथप्रसाद की सम्मतियों की उपेक्षा करके वे ईसाई हुए थे, मिस्टर सिंह की इच्छा के सर्वथा विरुद्ध तथा केवल इस कारण कि अमरीका से लौटते ही ईसाइयों ने उन्हें किसी कालेज का प्रिंसिपल नहीं बनाया, वे आर्यसमाजी हो गये। उन्हें डी० ए० वी० कालेज की स्थिति का पूरा पता था, इसी से उन्होंने अपने को वहाँ के योग्य बनाने में विलम्ब नहीं किया।

शिवप्रसाद का यह निशाना बिलकुल ठीक लगा; प्रिंसिपली उन्हें मिल गई। शुद्धि के काय में बाबू रघुनाथप्रसाद ने भी भाग लिया था, किन्तु कालेज के अधिकारियों द्वारा अपने दामाद का तिरस्कार उन्हें अखर गया। लेकिन वे क्या, कोई भी कुछ कर नहीं सकता था। विदेश में प्राप्त की गई उपाधि, विशेष कर डाक्टरेट की उपाधि की तुलना में, भारतीय विश्व-विद्यालयों की उपाधि का क्या मूल्य हो सकता था ?

दीनानाथ को यह अपमान अखरा तो, लेकिन डाक्टर शिवप्रसाद ने उनके साथ ऐसा सुन्दर व्यवहार किया, कालेज में उनकी प्रतिष्ठा को अक्षत बनाये रखने का ऐसा उद्योग किया कि वे अपने प्राचीन शिष्य की इस प्रशंसनीय योग्यता से मुग्ध हुए विना नहीं रह सके। और जब शिवप्रसाद पहले की तरह उनके घर पर आकर सरल भाव से उनके और चपला देवी के आदर-सत्कार को स्वीकार करते तब तो दीनानाथ कभी-कभी सोचने लगते कि जीवन में एक अपूर्व सरसता आ गई है। शिव-प्रसाद के विरुद्ध उनकी पहले की धारणाओं में एक घोर क्रान्ति सी उपस्थित हो गई। इन दिनों चपला के व्यवहारों में भी अप्रियता नहीं रह गई थी। इस चहल-पहल के समय वेचारी कमला दीनानाथ को विस्मृत सी हो गई।

इस नवजात उदार भाव के कारण दीनानाथ कभी-कभी चपला और शिवप्रसाद के बीच मैत्री-भाव की सूचक बातें तथा व्यवहार होते देख कर भी कुछ बुरा नहीं मानते थे। यदि इस विषय में उनके चित्त में तनिक भी सन्देह उपस्थित होता तो वे स्वयं ही उसका इस प्रकार उत्तर दे लेते थे—क्या मैं शिव-प्रसाद से घृणा नहीं करता था और क्या अब मैं उनसे प्रायः स्नेह करने की स्थिति में नहीं आ गया हूँ ? ऐसी दशा में चपला शिवप्रसाद से घृणा ही करती रहे—यह कब संभव है।

इस प्रकार की आशा करना तो इस परिवर्तनशील संसार में अपरिवर्तनशीलता का तकाजा करना होगा।

परन्तु जब दीनानाथ की आज्ञा लिये बिना ही चपला प्रायः शिवप्रसाद की मोटर में घूमने और सिनेमा वगैरह देखने चली जाती थी तब उनकी यह उदारता असन्तोष को स्थान दे देती थी; साथ ही इन दिनों चपला का दिमाग इतना ऊँचा हो गया था कि साधारण बातें छेड़ देने पर भी उन्हें उसके नाराज हो जाने तथा लड़ पड़ने की आशंका हो जाती थी। इसलिए वे बहुत प्रयत्न करके अपने क्रोध को दबा रहे थे।

इस नवीन परिस्थिति के विकास ने दीनानाथ को शिवप्रसाद की हरएक कृपा के प्रति सन्देहशील बना दिया और क्रमशः उन्होंने कालेज में उनके साथ 'अनिवार्य मात्रा' ही में सहयोग बनाये रखने का निश्चय किया। धीरे-धीरे शिवप्रसाद दीनानाथ की इस मनोवृत्ति को समझ गये। उन्होंने फिर भी न अपने कालेज-सम्बन्धी व्यवहार में कोई शिथिलता की, न चपला के साथ अपने सम्बन्धों में कमी। इसका परिणाम यह था कि दीनानाथ को न घर में शान्ति थी और न कालेज में। कमला के यहाँ जाकर जी बहलाने की कोशिश करते थे, लेकिन ज्यों ही वहाँ से आते, फिर वही चिन्ताएँ, फ़िर वही बेचैनी। चपला की स्वतन्त्रता जब इतनी अधिक बढ़ गई कि कृष्णकुमार के लिए एक दाई का रखना आवश्यक हो गया तब दीनानाथ का कलेजा वेदना के मारे पक सा गया। इस अशान्ति में पढ़ाने का काम करना भी उनके लिए कठिन हो गया, विवश होकर उन्होंने छः महीने की बिना वेतन की छुट्टी ले ली। इन्हीं दिनों डाक्टर शिव-प्रसाद उनके स्थान पर महिला-विद्यालय के सेक्रेटरी हो गये।

इस अवैतनिक छुट्टी में दीनानाथ कृष्णकुमार की देख भाल करते, धार्मिक ग्रन्थ देखते और साधु-महात्माओं के सत्संग में

समय बिताते। किन्तु, इस निठल्लेपन से घर का, विशेष करके चपला का खर्च तो नहीं चल सकता था। डाक्टर शिवप्रसाद के साथ रह कर चपला ने फ्रांस के फैशन और विलासितापूर्ण आदतें सीखने में देर नही लगाई थी, अतएव इतने दिन तक जो झगड़ा बचाया गया वह अब अनिवार्य हो गया। एक दिन चपला ने चिढ़ कर कहा—'इस तरह छुट्टी लेकर घर बैठने से काम कैसे चलेगा? कुछ अपनी जिम्मेदारी भी समझनी चाहिए। ऐसा ही करना था तो नाहक ब्याह किया।'

चपला ने फिर कहा—'सिनेमा देखने जाती हूँ तो क्या कोई ऐब का काम करती हूँ, तमाम दुनियाँ ही सिनेमा देखने जाती है। और आप न जायँ तो क्या किसी दूसरे के साथ भी न जाऊँ। रोज रोज मनहूसों की तरह मक्खियाँ मारते रहना मुझे पसन्द नहीं।'

चपला की बात दीनानाथ के कलेजे में गड़ गई। उन्होंने तिलमिला कर कहा—'तो जो मनहूस नहीं उसी के साथ ब्याह किया होता; मेरे गले क्यों पड़ीं?'

'आपके गले न पड़ती तो भूखों मरने और कपड़े-लत्ते भी न पाने की नौबत कैसे आती, जाता हूँ आज मैं भी महिला-विद्यालय में नौकरी का कोशिश करूँगी, मुझे भी रुपये मिलने लगेंगे, तब आप की आश्रित न रह जाऊँगी। बाबू जी ने भी मुझे कहाँ लाकर जंगल में छोड़ दिया।'

दीनानाथ ने कहा—'चपला! यदि तुम अपनी आदतों को ठीक कर लो तो अब भी यह परिस्थिति बदल सकती है।'

चपला ने तुरन्त ही उत्तर दिया—"मेरी तो कोई आदत खराब नही है, मैं ठीक क्या करूँ। मेरा यह विश्वास है कि स्त्री पति की गुलाम नहीं है, वह चाहे जिस पुरुष के साथ चाहे जहां जानेको स्वतंत्र है। जो आदमी इसमें कोई बुराई समझता

है वह अपनी मूर्खता को गले से लिपटाये रहकर भले ही ऐसा समझा करे; उल्लू के निन्दा करने से प्रकाश निन्दनीय नहीं कहा जा सकता।'

दीनानाथ झल्ला उठे, चिल्ला कर बोले, 'चपला जबान सँभाल कर बोलो, नहीं तो मैं तुम्हारा गला घोंट दूँगा।'

दीनानाथ को आशा थी कि इस जोरदार चिल्लाहट से चपला दब जायगी। किन्तु दबने के स्थान में वह भी उतने ही जोर से बोल उठी—'जाओ अपनी प्राणेश्वरी कमला रानी का गला दबाओ जहाँ चुपके चुपके पहुँचा करते हो। मै तुम्हारी कौन हूँ जो तुम मेरा गला घोंटोगे?'

इस नीच आरोप की दीनानाथ ने कल्पना नहीं की थी। यह उन्हें बाण की तरह लगा। घायल होकर उन्होंने कलेजा पकड़ लिया। बड़ी देर तक न कुछ बोल सके, न वहाँ से कहीं जा सके। गम्भीर, चिन्तित मुखमुद्रा बनाये न जाने क्या-क्या सोचते रहे।

चपला ने फिर वार किया—'तमाम दुनियाँ जानती है कि बड़े भारी साधु हैं, महात्मा हैं, दार्शनिक हैं, भीतर-भीतर क्या करतूतें हैं, इसे कोई क्या जाने!'

दीनानाथ से अब अधिक सहा न गया। क्रोध के कारण उनकी दबी हुई पशु-प्रकृति ने सिर उठाया और उनके जी में आया कि जिस जीभ से यह आग्नेय शब्दों को उगल रही है उसे बाहर खींच लूँ और इसे सदा के लिए गूँगी बना दूँ। परन्तु, शीघ्र ही उनकी ऊँची प्रकृति फिर जाग पड़ी और उसने तेजस्विता के साथ उनकी पशु-प्रकृति को कम से कम निष्क्रिय तो कर दिया; वे चुपचाप अपने कमरे में चले गये और चपला के बाल्यकालीन तैल-चित्र को देख देख कर आँखों से अश्रु-धारा बहाने लगे।

उस दिन दीनानाथ अपने कमरे से बाहर नहीं निकले। रोना समाप्त करके अपने भविष्य जीवन का कार्यक्रम बनाते रहे। संसार की परिवर्तनशीलता ने उनके हृदय को व्याकुल करके विरक्त बना दिया था।

[३५]

शिवप्रसाद के उच्छृङ्खल जीवन ने चपला को वह मदिरा पिला दी थी जो किसी का सर्वनाश किये बिना नहीं उतरती। चपला को संसार का रसास्वादन करने की प्रबल पिपासा थी और उसे शान्त करने के लिए वह अपना सर्वस्व निछावर कर सकती थी। उन्मत्त भ्रमरी की तरह वह मधुपान के लिए तड़प रही थी और गुलाब के फूल के काँटों से उसका शरीर छिद जायगा या नहीं, इसका विचार करने के लिए भी उसके पास धैर्य और समय नहीं था। विलासिता के भावों में डूब कर, स्वच्छन्दता को अपना लक्ष्य बनाकर, चपला ने डाक्टर साहब के अनुग्रह से महिला-विद्यालय में जिस दिन प्रवेश किया उसी दिन उसके सौन्दर्य की, फैशन की धूम मच गई। फिर यह समाचार कि चपलादेवी, सेक्रेटरी साहब की विशेष परिचिताओं में से हैं अध्यापिकाओं पर प्रभाव डालनेवाला था। लड़कियाँ और अध्यापिकाएँ दोनों चपला से इतनी आकर्षित हुई कि झूठ-मूठ तरह तरह के कामों के बहाने निकाल कर वे उससे बातें करने का उद्योग करने लगी। उसके हलके-से-हलके इशारे पर वे अधिक-से अधिक कष्ट उठाकर उसकी सेवा करने के लिए उत्कण्ठित दिखाई पड़ने लगीं। सब को यह बोध होता था कि कोई दिव्यांगना स्वर्गीय सन्देश देने के लिए भूलोक में उतर आई है। इस वातावरण में दीनानाथ को सर्वथा विस्मृति के गढ़े में डालकर चपला के गर्व ने विकास के लिए अनुकूल क्षेत्र पाया।

विद्यालय-कमेटी के एक एक सदस्य चपला के साथ परिचय प्राप्त करने के लिए उतावले हो उठे। कोई लिखता था—'आप अध्यापन का कार्य स्वीकार करके देश के सामने त्याग का अद्भुत आदर्श उपस्थित किया है। आप की देखादेखी ऊँचे घरानों की शिक्षित स्त्रियाँ भी शीघ्र ही इस ओर प्रवृत्त होंगी और देश में स्त्री-शिक्षा का प्रचार बहुत तेजी के साथ होने लगेगा...आदि' कोई-कोई महाशय इस प्रकार अपने आदर-भाव को प्रकट करते थे—'विद्यालय में आप के आने से उसकी उन्नति के सम्बन्ध में अब कोई सन्देह नहीं रह सकता। जितना ही आप का शिक्षा-प्रेम सराहनीय है उतनी ही आप की स्वतन्त्रता की भावना भी प्रशंसनीय है; दकियानूसी विचारों के के पुरुषों को भी अब यह बात हृदयंगम हो जायगी कि यदि वे स्त्रियों को समाज-हित के कामों को करने से रोकेंगे तो स्त्रियाँ उन्हें ठुकरा देंगी · आदि।'

धीरे-धीरे थोड़े ही समय में ऐसे-ऐसे प्रशंसा-पत्रों के ढेर लग गये। चपला में पहले ही से विद्यमान प्रबल अहम्भाव इन पत्रों की चाटुकारितापूर्ण भाषा और भाव से और भी पुष्ट हो उठा। साथ ही पति की अवज्ञा करने के फल-स्वरूप जो तिरस्कार समाज से स्वभावतः मिलना चाहिए उसके अभाव में उसके हृदय की रही सही दुर्बलता भी दूर हो गई। विद्यालय के सञ्चालकों में से बड़े-से बड़े लोग चपला के चंगुल में तो थे ही, साथ ही शिवप्रसाद की दावतों और अन्य प्रेमोत्सवों से उनके मुँह में भी ताले लगे हुए थे। इस कारण थोड़े ही समय में विद्यालय पर शिवप्रसाद का एक छत्र प्राधान्य हो गया। चपला कभी डा० शिवप्रसाद के साथ सिनेमा या थिएटर देखने जाती तो किसी दिन हवाखोरी करने के बाद उन्हीं के यहाँ रात को भी रह जाती थी। विद्यालय की स्वतन्त्र लड़कियाँ स्वयं भी

स्वतन्त्रता चाहतीं थीं और यह स्वतन्त्रता पूर्ण मात्रा में चपला ने उन्हें दे दी। कभी-कभी कोई-कोई लड़कियाँ भी इस प्रेमिक-मण्डली में शामिल हो जाती थी। ऐसी दशा में चपला और डा० शिवप्रसाद को किसी प्रकार की असुविधा नहीं थी।

कुछ दिन तो इसी तरह वीते। डाक्टर शिवप्रसाद से द्वेष सभी करते थे, किन्तु उनका बाल बाँका कर सकना किसी के लिए सम्भव न था। धीरे धीरे उनके प्रवल कौशल के सामने जब द्वेष भी वेकार सिद्ध हो गया तव उनका लोहा मान कर वे चपला की कृपा-दृष्टि प्राप्त करने के सम्बन्ध में निश्चेष्ट हो गये।

इसी बीच में झगड़े का एक अवसर उपस्थित हुआ। विद्यालय की वाइस प्रिन्सिपल को अन्यत्र अच्छी जगह मिल गई, इस रिक्त स्थान पर कमला को नियुक्त होने की आशा थी, क्योंकि उसका अनुभव, उसका अध्ययन तथा कार्य-काल सभी कुछ चपला की अपेक्षा वढ़ा-चढ़ा था। परन्तु डाक्टर शिव-प्रसाद के प्रयत्न का यह परिणाम हुआ कि वेचारी कमला की समस्त आशाओं पर पानी फिर गया। वह पद चपला को मिल गया।

इस अन्यायपूर्ण कार्य से कमला का हृदय विदीर्ण हो गया। कई दिन तो वह बिलकुल वेकाम सी अपने कमरे में पड़ी रही, बीमारी का बहाना करके पढ़ाने भी नहीं गई। किन्तु, कुछ समय वीतने पर धीरे-धीरे उसके निर्वल मन में स्फूर्ति का संचार हुआ। उसने सोचा, मान लिया मेरे साथ अन्याय हुआ, तो क्या उस अन्याय को चुपचाप सहन कर लेने में मेरा कुछ उत्तरदायित्व नहीं है? क्या इस अत्याचार का भंडाफोड़ कर देना मेरा कर्तव्य नहीं है। संभव है, वहुत परेशानी उठाने पर भी अन्त में निराश होना पड़े, कुछ फल न निकले। तो

क्या इस आशंका से सब तरह का प्रयत्न त्याग दिया जाय। उसे इस प्रसंग में गीता की निम्नलिखित पंक्ति का स्मरण हो आया—

कर्मण्येवाधिकारस्ते
मा फलेषु कदाचन।

अर्थात् तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने का है, फल मिलेगा या नहीं मिलेगा, यह तुम्हें न सोचना चाहिए। इस प्रकार कमला ने अपने हृदय को मजबूत करके प्रबन्ध-समिति के एक एक सदस्य के पास जा जाकर इस अनुचित पक्षपात की विवेचना करने का दृढ़ संकल्प किया।

इस निश्चय के अनुसार कमला विद्यालय के अधिकारियों के पास गई। उनमें से अनेक उससे चिर-परिचित थे। परन्तु आज तक न तो वह किसी से मिलने गई थी और न किसी प्रकार का व्यवहार ही उनसे रक्खा था। परिणाम यह हुआ कि कमला की बातों का उनपर कोई प्रभाव नही पड़ा। विद्यालय के सभापति महाशय से तो उसकी काफी बहस ही हो गई। ज्योंही उसने उनसे कहा कि मेरे साथ अन्याय किया गया है, उन्होंने कहा, 'मैं आप की पूरी शिकायत सुनने को तैयार हूँ।'

कमला ने कहा—'मैं विद्यालय की सेवा अधिक समय से कर रही हूँ। मैं सीनियर हूँ, मेरा डिवीजन भी वही है जो श्रीमती चपला देवी का है। ऐसी दशा में वाइस प्रिंसिपल का पद मुझे मिलना चाहिए था।'

स०—'सुनिए। वाइस प्रिंसिपल के पद के लिए केवल विद्वत्ता ही नहीं, किन्तु थोड़ा-बहुत प्रबन्ध कौशल भी चाहिए। आप स्वयं विचार करेंगी तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि श्रीमती चपला देवी में वह स्फूर्ति विशेष मात्रा मे है जो प्रबन्ध-पटुता मे सहायक

होती है। उसका, जहाँ तक मेरा खयाल है, आप में अभाव है। रही विद्वत्ता, सो आप स्वयं यह स्वीकार करती हैं कि जिस डिवीजन में आप ने बी० ए० पास किया है उसी में श्रीमती चपला देवी ने भी पास किया है।'

सभापति जी का यह रंग-ढंग देख कर कमला के पैर तले से जमीन ही खिसक गई।

इस प्रकार की बहस को निरर्थक समझ कर कमला ने सत्य बात को उसके नग्न रूप में ही उपस्थित करने का विचार किया। इस उपाय के सफल होने की उसे आशा थी। उसने विद्यालय की छात्राओं के नियमविरुद्ध आचरण के बढ़ते जाने की शिकायत की। सभापति महाशय ने अपने पद के उपयुक्त गम्भीरता के साथ पूछा—'क्या यह लेडी प्रिंसिपल तथा श्रीमती चपला देवी को मालूम नहीं है?'

क०—'श्रीमती चपला देवी को तो सब मालूम है। उन्हें यह भी मालूम है कि इस सारी उच्छृङ्खलता के बढ़ने की सारी जिम्मेदारी उन्हीं पर है। किन्तु, वे मजबूर हैं।'

स०—'क्यों?'

क०—'अपनी आदत से। चपला देवी स्वयं भी वही नियमविरुद्ध आचरण करती हैं। ऐसी दशा में वैसा ही करने से वे औरों को कैसे मना कर सकती हैं।'

स०—'यह क्या? यह तो मैंने कभी नही सुना। यदि यह बात सत्य हो तो यह तो क्षम्य नहीं है।'

क०—'डाक्टर शिवप्रसाद के साथ चपलादेवी प्रायः नित्य ही सिनेमा और थियेटर देखने जाती हैं, और कभी-कभी प्रायः सवेरा होने पर बोर्डिङ्ग हाउस में आती हैं।'

स०—'यह मेरी समझ में नहीं आता। आप का यह सब कहने से क्या मतलब है? क्या आप उन पर किसी कलङ्क का

आरोपण कर रही हैं। यदि ऐसी वात हैं तो इसका आप को पूरा प्रमाण देना पड़ेगा, अन्यथा वह क्षति आप के जिम्मे पड़ेगी जो किसी की मानहानि करने से होती है।'

कमला सन्नाटे में आ गई। उसने सोचा था कि विद्यालय के अधिकारियों में न्याय-बुद्धि होगी, किन्तु, यहाँ तो मामला ही उलटा है। ऐसे लोगों के राज्य में तो चोरी और अनाचार करने वाले वेरोक टोक आनन्द से घूमा करेंगे और मारे जायँगे वे जो इन दुराचारियों के विरुद्ध आवाज उठावेंगे। अपनी वर्त्तमान गलती पर कमला को वहुत अधिक पछतावा हुआ। उसे पुरुष-जाति पर तो आरम्भ से ही घृणा थी, अव यह घृणा और भी बढ़ गई। किन्तु, यह वात अधिक फैलाई जाय और अन्त में चपला और डाक्टर शिवप्रसाद भी इसे जान जायँ, इसके लिए कमला तैयार नहीं थी। और, अपने घृणा-भाव को मन में दवा कर अत्यन्त विनम्रता के साथ उसने सभापति जी से कहा—'श्रीमान् मेरा उद्देश्य किसी पर कलङ्क का आरोप करना नहीं है, यदि मेरे शब्दों से ऐसी ध्वनि निकलती हो तो मैं उन्हें वापिस लेती हूँ।'

स०—'श्रीमती जी, यदि मैं संस्था का अध्यक्ष न होता तो आप के शब्दों के कहने या वापिस लेनेका मेरे ऊपर कोई प्रभाव न पड़ता, परन्तु वर्तमान स्थिति में तो इन शब्दों के वापिस लिये जाने पर भी मैं उस कर्तव्य-भावना से अपने को मुक्त नहीं कर सकता हूँ, जो उन्होंने मुझमें जागृत कर दी है। आपने जिस उच्छृङ्खलता की ओर सकेत किया है उसकी मैं जाँच करूँगा और यदि उसका प्रमाण मिल जायगा तो भविष्य में उसे रोकने की उचित व्यवस्था करूँगा।'

कमला की ज़बान पर जैसे ताला लग गया। थोड़ी देर तक

चुपचाप शून्य की ओर दृष्टि किये रहने के बाद एकाएक उसने वहाँ से चलने का निश्चय किया।

सभापति जी ने कहा—'और कोई नवीन बात हो तो बताइए। आपने यहाँ आने में बहुत कष्ट उठाया, इसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ।'

झेंप कर कमला ने कहा—'बाबू साहब! क्षमा माँगनी मुझे चाहिए, उलटे माँगते आप हैं। मैंने वास्तव में आप का बहुमूल्य समय नष्ट करके आप को असुविधा पहुँचाई है; इसके लिए मैं क्षमा-प्रार्थिनी हूँ।'

कमला के इस विनय-प्रदर्शन में उचित से अधिक नम्रता थी। चपला के सम्बन्ध में मानहानिकारक बातें कह कर उसने अपनी स्थिति बहुत कमजोर बना ली थी।

शीघ्र ही सभापति जी से विदा होकर वह विद्यालय को रवाना हो गई। सारा रास्ता उसने अपने किये पर पछताने में काटा। अब वह ईश्वर से मना रही थी कि पहले की सी स्थिति भी आ जाय तो बहुत अच्छा, क्योंकि जिन बर्रों को उसने छेड़ दिया था उनके विषैले डंक उसके निस्सहाय अस्तित्व को मिटा डालने का भय दिखा रहे थे।

किन्तु कमला की सारी प्रार्थनाएँ व्यर्थ गईं। हुआ वही जिसकी उसे आशका थी। जिन जिन अधिकारियों के पास वह गई थी उन सब ने सारी बात डाक्टर शिवप्रसाद से कह दी। सभापति महोदय ने इतने से ही सन्तोष नहीं किया। उन्होंने विधिपूर्वक जाँच की, जिसका फल यह निकला कि चपला देवी बिलकुल निर्दोष हैं और कमला देवी ने व्यर्थ ही उन्हें औरों की दृष्टि में गिराने का प्रयत्न किया है। कमला को प्रबन्ध-समिति की ओर से यह प्रस्ताव मिला कि वे शीघ्र ही अपने अनुचित कार्य के लिए क्षमा-याचना करें।

जिस समय कमला को यह प्रस्ताव मिला, उसने सोचा, देखो तो यह कैसी विडम्बना है! जो सच कहे वही मारा जाय, जो झूठ के सहारे चले वही मौज करे। आज जीवन में प्रथम वार उसे यह अनुभव हुआ कि सदा सत्य की विजय नहीं होती, दुराचार सदैव निन्दनीय नहीं माना जाता।

प्रस्ताव की प्रतिलिपि को अपनी फाइल में डालने के वाद वह सोचने लगी कि अब क्या करना चाहिए? क्या क्षमा माँग लेने से काम चल जायगा? क्या उसके वाद मैं आराम से विद्यालय में काम कर सकूँगी? उसके आशंकाशील हृदय के एक कोने से आवाज आई—नहीं, यह तो केवल आरम्भ है, अभी तो यह प्रवन्ध-समिति के सदस्यों की कारगुजारी है, कौन जाने डाक्टर साहव अभी क्या आफत वरपा करेंगे। उनका वार तो सीधा होता ही नहीं, न जाने किस अप्रत्यक्ष ढंग से उनका क्रोध मेरे भाग्य और जीवन का निपटारा करे। आह! किस घड़ी में मैंने सोते सिंह को जगाया था।

फिर क्या किया जाय? यही प्रश्न वार-वार कमला के सामने उपस्थित होता था। इस समय उसका ध्यान वावू श्यामकिशोर की ओर गया। एक बार तो उसने निश्चय किया कि उन्हें पत्र लिख कर बुला लूँ। उनके सिवा संसार में मेरे साथ सहानुभूति करने वाला और कौन है? किन्तु इस समय वावू दीनानाथ की स्मृति भी उसे आ गई। फिर उसने मन-ही-मन कहा—क्या वावू दीनानाथ वावू श्यामकिशोर से अधिक सहृदय समझे जा सकते हैं? वावू दीनानाथ की दयालुता का ढिंढोरा तो चारों ओर पिटता आ रहा है। फिर भी उन्होंने मेरे साथ क्या किया? सच वात तो यह है कि इस विचित्र संसार में स्वयं वावू श्यामकिशोर मेरे साथ अपनी वहन की तुलना में कितनी सहानुभूति रख सकेंगे, यह कहा नहीं जा सकता,

विशेष करके उस अवस्था में जब बहन का पक्षपात करने में उनकी पारिवारिक प्रतिष्ठा की रक्षा भी हो रही हो। निस्सन्देह कितने ही लोग अपने घरवालों की अपेक्षा उन लोगों के प्रति अधिक उदार स्नेह दिखलाते हैं जो उनकी कृपादृष्टि के विशेष लक्ष्य होते हैं। किन्तु, पुस्तकों में लिखी हुई यह बात भी तो मेरे पक्ष में अयथार्थ ही सिद्ध होकर रही। क्योंकि मेरी अन्त-रात्मा इस बात को जानती है कि बाबू दीनानाथ को मुझसे प्रेम था और फिर भी उन्होंने माता के अनुरोध को मानकर चपला के साथ विवाह कर लेना स्वीकार किया। बाबू श्याम-किशोर में फिर ऐसी कौन सी विशेषता है जो मै उनसे कोई और आशा करूँ ?

इस प्रकार अपनी परिस्थिति की आलोचना करके कमला अन्त में इसी परिणाम पर पहुँचती कि मैं सर्वदा असहाय हूँ, मैं अनाथ पैदा हुई, और शायद सम्पूर्ण जीवन अनाथ ही रह कर बिता दूँगी। चारों ओर अन्धकार और निराशा ही निराशा देख कर उसका हृदय अधीर हो गया और एक बार उसका जी चाहा कि कमरे की किवाड़ों को बन्द कर के फूट फूट कर रोऊँ। इतने में उसे सामने दिखाई पड़ा कि बोर्डिङ्ग की दो तीन लड़कियाँ हरिन के बच्चे के साथ खेल कर रही हैं। थोड़ी देर तक किवाड़ों को जरा सा खुला रख कर और बीच में स्वयं खड़ी रह कर वह इस खिलवाड़ को देखने लगी। एक ठण्डी साँस भर के उसने कहा—आह ! एक ओर इतनी निश्चिन्तता और दूसरी ओर इतनी चिन्ता, इतनी ज्वाला, इतनी वेदना कि चुपचाप जीवन बिताना भी दूभर हो जाय। संसार कितना विकराल है ! वह कितना पक्षपातपूर्ण है ! किसी को वह सब कुछ देता है, और किसी को कुछ भी नहीं देता—यही सब सोचती हुई किवाड़ों में साँकल लगा कर वह चारपाई पर

वेदम सी गिर पड़ी और गरम-गरम आँसुओं की बूँदों से अपने कपोल-मण्डल को भिगोने लगी।

[३६]

कई कारणों से श्यामकिशोर एल-एल० बी० कक्षा के व्याख्यानों में उतने दिनों तक उपस्थित नहीं रहे जितने दिन परीक्षा में बैठने के लिए होना चाहिए था। इस साल की गर्मियों की छुट्टी में बाबू रघुनाथप्रसाद ने बहुत चाहा कि लड़के की शादी ाय; क्योंकि अच्छी अच्छी हैसियत के लड़की वाले आ आकर उनके चरणों पर अपना माथा रगड़ रहे थे। किन्तु श्यामकिशोर ने यही उत्तर दिया कि वकालत पास करने के पहले मै विवाह नहीं कर सकूँगा। इस पर भी एक सज्जन, जो किसी जिले में कलेक्टर थे, सगाई की व्यवस्था कर ही गये।

जुलाई से श्यामकिशोर फिर कालेज जाने लगे थे। नवम्बर मास में कमला का एक पत्र आया और वह उन्हें कालेज ही में मिला। उसमें उसने लिखा था—

मेरे प्रियतम ;

लगभग एक सप्ताह से मै नित्य ही आप को पत्र लिखने का विचार कर रही थी। किन्तु इधर अनेक झंझटों में फँसी रहने के कारण मैं ऐसा न कर सकी; इसके लिए मुझे खेद है।

आशा है, आप सकुशल होंगे और मुझ अभागिनी को भुलाकर कार्य्य में दत्त-चित्त होंगे। उचित तो यह है कि आप मेरी ओर तनिक भी ध्यान न दें, मैं बारम्बार कह चुकी हूँ कि मैं एक अत्यन्त अभागिनी नारी हूँ, वर्त्तमान स्थिति में मैं अपनी जीवन-रक्षा करना भी अनावश्यक समझती, किन्तु एक वासना मुझे आत्म-हत्या से विमुख करती रही है और शायद अन्त तक करती रहे—जीवन का अन्त कर के मै जिस

लोक को जाऊँगी वहाँ आप के मुखारविन्द का दर्शन किस तरह कर सकूँगी ?

आप कहेंगे, मैं कितनी झूठी हूँ। यदि मेरे हृदय में आप के दर्शन की सच्ची प्यास होती तो क्या मैं आपके पास से यों भाग खड़ी होती—आप यह मन में जरूर सोचते होंगे। फिर विचार करती हूँ कि जब अन्तर्यामी की तरह आप मेरे घट में व्याप्त हो रहे हैं तब यह कैसे हो सकता है कि आप मेरे हृदय की वास्तविक स्थिति को न जानते हों। श्याम बाबू, इस संसार के सभी लोगों ने मुझे करुणा की दृष्टि से देखा; केवल आप ने मुझे वह प्रेम दिया जिसकी मैं भूखी थी। मैं इतनी रंक हूँ कि आप के उतने ही प्रेम को पाकर मैं कृतार्थ हूँ; यदि अधिक के लिए मैं अपनी प्यास प्रगट नहीं करती हूँ तो इसका यह अर्थ नहीं कि मैं प्यासी नहीं हूँ; बल्कि यही कि अधिक के लिए मैं साहस नहीं कर सकती।

मिस मारगरेट मिस्टर सिंह के साथ आज यहाँ बनारस से आयी थीं। वे अपने नैनीताल-प्र र के सम्बन्ध में अनेक रोचक बाते बता रही थी। मिस मारगरेट में मैंने यह नई बात देखी कि उन्होंने आप की कोई चर्चा ही नहीं चलायी। क्या आपने कोई ऐसी बात कर दी है जिससे वे नाराज हो गयी हैं? यदि आपने ऐसा किया है तो ठीक नहीं किया। मैं भविष्यवाणी करती हूँ कि आप का विवाह यदि किसी के साथ हो सकेगा तो मिस मारगरेट के साथ ही हो सकेगा। इसके दो कारण हैं; एक तो यही कि मारगरेट का आपके प्रति अपार प्रेम है और वे वह युवती नहीं है जो किसी वस्तु को हृदय से चाहे और उसे प्राप्त किये बिना ही सन्तुष्ट हो सके; दूसरा कारण यह है कि मारगरेट के साथ आप का विवाह होने में बाबू जी को तो कोई

आपत्ति होगी ही नहीं; साथ ही अम्मा जी भी उसके अनुकूल हो जायँगी !

कृष्णकुमार की तबियत खराब होने के कारण मैं कई रोज से बाबू दीनानाथ के यहाँ ठहर रही हूँ। अभी उनके अनुरोध के कारण, नहीं जा सकी हूँ। अब जब तक उनकी अनुमति न मिल जायगी तब तक तो बोर्डिंग नहीं जा सकूँगी; अपना असबाब भी मैंने यहीं मँगा लिया है। चपला देवी विद्यालय में वाइस प्रिंसिपल हो गयी हैं।

आपकी,
कमला

इस पत्र को एक बार सरसरी तौर से देख लेने के बाद श्यामकिशोर ने उसे जेब में रख लिया और अपने मित्रों के साथ फिर बातचीत शुरू कर दी।

कालेज से छुट्टी होने के बाद जब वे घर पहुँचे तो वहाँ अपने कमरे में पलँग पर लेटे-लेटे उन्होंने कमला के पत्र को फिर दो-तीन बार पढ़ा। इसके बाद जलपान आदि से निवृत्त होकर उसका यह उत्तर लिखा :

प्रिय कमला;

तुम्हारा प्रेमपूर्ण पत्र मिला। तुमने यह बहुत अच्छा किया जो बाबू दीनानाथ के संकट में उनका साथ दिया। वे बड़े ज्ञान-शील, बड़े ही सज्जन और अनुभवी व्यक्ति हैं; उनके साथ रह कर तुम सदा की भाँति बहुत सी बातों का ज्ञान भी सहज ही प्राप्त कर लोगी।

मैंने तो अपना हृदय तुम्हें दे दिया है। इसके बाद मुझे चिन्ता नहीं कि तुम यहाँ हो या वहाँ हो। तुम अगर यहाँ से भाग न खड़ी होतीं, मुझसे बेहद चिपक जातीं और बाबू जी तथा अम्मा जी के भावों के प्रति वह आदर न रखती जो रखती हो तो शायद तुम्हारे लिए मेरा प्रेम भी सीमित हो

जाता। किन्तु विलक्षण हृदय की जिस महत्ता से तुम्हारा वह संकोच प्रसूत हो रहा है जिसके कारण तुम मेरे सर्वस्व की अधिकारिणी हो कर भी उसके स्पर्श से भी बच रही हो—वही महत्ता तुमसे मिलने के लिए मेरे हृदय-सागर को अधिकाधिक उल्लसित करती जा रही है। अपनी अपूर्व उच्च भावनाओं के कारण तुम मुझे मिलकर भी मेरे लिए दुर्लभ बनी हो; इस दुर्लभता से मेरी दृष्टि में तुम्हारा सौन्दर्य प्रतिपल निखरता जा रहा है, और मैं अनुभव कर रहा हूँ कि तुम्हारे वियोग-काल में मेरे जीवन में जैसा माधुर्य-संचार हो रहा है वैसा कभी नहीं हो सका। देवि! मेरे जीवन घट को ऐसे ही आनन्द-पीयूष से भरती रहो।

अच्छा, ये तो हुईं प्रेम की बातें, अब तुमसे काम की भी एक बात कर लूँ। तुम जानती हो कि मैं अधिकतर अपने पढ़ने-लिखने में लगा रहता हूँ और किसी संस्था के सार्वजनिक कार्य्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं करता। 'स्वतन्त्र नारी समाज' में पिता जी मुझे ठेलना चाहते थे और मिस मारगरेट भी उसमें खींचना चाहती थीं; लेकिन मैंने अपनेको उससे भी अलग रखा। अपनी यह उदासीनता कुमारी मारगरेट के सामने, जब वे नैनीताल जानेके पहले मुझसे इलाहाबाद में मिली थीं, मैंने प्रगट भी कर दी थी। किन्तु, यहाँ हाल में एक ऐसी बात हो गयी है जो मेरे हृदय में रह रह कर वेदना उत्पन्न करती है, जो पढ़ने में मेरा चित्त नहीं लगने देती, जो मेरी कर्मण्यता को ललकार रही है और अधिक से अधिक त्याग करने के लिए मुझे प्रेरित कर रही है।

सब बात तुम्हें अच्छी तरह समझा दूँ। स्थानीय आर्य्य-समाज का वार्षिक अधिवेशन होने वाला है। प्रति वर्ष अधिवेशन के कार्यक्रम में जुलूस का भी स्थान रहा है; इस जुलूस में

नगर-संकीर्त्तन होता रहा है। आर्य्य समाज का संदेश समस्त नगर-वासियों के कानों तक पहुँच जाय, इस उद्देश्य से शहर के प्रत्येक भाग में जुलूस को ले जाने की परिपाटी है। अनेक वर्षों तक यह कार्य्य निर्विघ्न और शान्ति-पूर्वक होता रहा। किन्तु जब से इस नगर का दशहरा बंद हो गया है तब से आर्य्यसमाज की क्रियाशीलता को भी आबद्ध करने की ओर अधिकारियों का ध्यान जाने लगा है। कभी आर्य्यसमाज की सभाओं में रुकावट डाली जाती है, कभी आर्य्यसमाजी व्याख्यानदाताओं के व्याख्यान बंद कर दिये जाते हैं। आज से चार वर्ष पहले जिस समय दशहरा बन्द हुआ था उस समय भी मेरा खून खौल उठा था; उन दिनों मैं बी० ए० के प्रथम वर्ष में पढ़ता था। लेकिन तब मेरे विचार परिपक्व नहीं हुए थे। वैसी ही परिस्थिति अब भी उत्पन्न हो रही है, और मुझे भय है, सरकारी अनुचित शर्तों को स्वीकार करने के स्थान में स्थानीय आर्य्यसमाजी नेता अधिवेशन ही बंद कर देंगे। मैं अधिवेशन बन्द करने के पक्ष में नहीं हूँ। मैं यह चाहता हूँ कि हम लोग अपनी ऐसी शक्ति प्रगट करें जिससे सरकार को अनुचित शर्तें उपस्थित करके हमारे मनुष्यत्व का अपमान करने का साहस न हो। इस सम्बन्ध में तुम्हारी क्या सम्मति है? इतना तो मैं तुम्हें अभी से लिखे देता हूँ कि यदि आर्य्य-समाजी नेताओं ने शैथिल्य का परिचय दिया तो अब मैं निश्चेष्ट होकर बैठनेवाला नहीं हूँ, मेरे सामने कठिनाइयाँ क्यों न उपस्थित हो जायँ।

कुमारी मारगरेट को असन्तुष्ट करने का कोई उद्योग मैंने नहीं किया, हाँ अपनी परिस्थिति उन्हें अच्छी तरह समझा दी थी। बाबूजी तथा अम्माजी अच्छी तरह हैं। चपला की पदो-

न्नति को अपनी ही पदोन्नति समझो। रामकरन कहीं से अपने लिए एक औरत उड़ा लाया है। रमदेइया बतलाती है कि वह मुसलमान थी, उसे उसने किसी पंडित की सहायता से हिन्दू धर्म में दीक्षित कर लिया है। भारतीय समाज के विकास में यह एक विचित्र दृश्य देखने में आ रहा है कि अब हिन्दू भी अधिकाधिक उत्साह के साथ अन्य धर्म्मावलम्बियों को अपने धर्म्म में समाविष्ट कर रहे हैं। बाबू जी तो रामकरन के इस काम से बहुत प्रसन्न हैं; रहीं अम्मा जी, सो तुम उनको जानती ही हो। लेकिन मैं यहाँ भूलता हूँ; शायद अम्मा जी ही का पक्ष तुम भी ग्रहण करो; क्योंकि, तुम भी तो कट्टर सनातन धर्म्मी हो। अम्मा जी ने रामकरन का रसोई-सम्बन्धी कार्य्य तो बंद ही कर दिया है; अब वह अधिकांश में बाबू जी की चपरासगीरी में रहता है।

और सब कुशल है। तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा करूँगा।

तुम्हारा ही, श्यामकिशोर

इस पत्र से निबट लेने के बाद श्यामकिशोर भोजन करने चले गये।

[३७]

श्यामकिशोर न सनातनधर्म्मी थे और न आर्य्यसमाजी; उन्हें धर्म्म से विशेष प्रेम न था, विशेष कर उसके उस रूप से जिसे लोग धर्म्म कहते हैं। वे यह बात नहीं समझ सकते थे कि सवेरे और शाम को संध्या कर लेने तथा मन्दिर में महादेव जी को जल चढ़ाने ही में लोग धर्म्म की इतिश्री क्यों समझते हैं। उन्हें यही शिकायत ईसामसीह के भक्तों और मुहम्मद के अनुयायियों से भी थी। वे एक प्रतिभाशाली और विचारवान युवक थे और सामाजिक नेताओं के कार्य्यों तथा व्याख्यानों

की सूक्ष्म आलोचना कर के ही उचित सार को ग्रहण करते थे। ऐसी अवस्था में आर्य्यसमाज की भी बहुत सी कार्य्यवाहियों को वे नापसन्द किये बिना नहीं रह सकते थे और पिता से उनके सम्बध में प्रश्न किये जाने पर अपना मत प्रगट कर देते थे। बाबू रघुनाथप्रसाद आर्य्य-समाज के सम्बंध में पुत्र में उत्साह न देख कर कभी कभी निराश तो होते थे; किन्तु उसकी तर्कप्रियता, स्पष्टवादिता आदि गुणों से मुग्ध हुए बिना भी नहीं रहते थे।

श्यामकिशोर की एक बात पिता को पसंद नहीं थी – यह थ उसकी आवश्यकता से अधिक साहसिकता। यही साहसिकता यदि दूसरे में होती तो वे उसकी सराहना करते। विशेष विचित्र बात तो यह थी कि जिस आर्य्यसमाज की वेदी पर उनका जीवन समर्पित था उसके मान-सम्मान का प्रश्न खड़ा होने पर जैसे वे कोई ऐसा कार्य्य नहीं करना चाहते थे जिससे उनकी भावी पेंशन खतरे में पड़ जाय वैसे ही श्यामकिशोर को ऐसा कोई काम नहीं करने देना चाहते थे जिससे उन्हें वकालत परीक्षा पास करने में कोई रुकावट उत्पन्न हो।

जिन दिनों आर्य्यसमाज के कार्य्यकर्त्ता अधिवेशन-सम्बंधी अनुचित सरकारी शर्त्तों पर विचार कर रहे थे और प्रतिवाद-स्वरूप अधिवेशन स्थगित करना निश्चित कर रहे थे उन दिनों बाबू रघुनाथप्रसाद ने श्यामकिशोर के विचारों का जो परिचय पाया उसके विरोध में तो वे आवाज नहीं उठा सकते थे, किन्तु वकालत की अन्तिम परीक्षा निकट होने की बात याद दिलाकर उन्होंने उन्हें सावधान करने का प्रयत्न किया। पिताकी यह चेता-वनी श्यामकिशोर पर विपरीत प्रभाव डालनेवाली ही सिद्ध हुई; क्योंकि उससे उनको केवल उसी मनोवृत्ति का परिचय मिला

जिसके अधीन होकर लोग अपने छोटे छोटे स्वार्थों के लिए देश और जाति की इज्जत-आबरू की हत्या कर डालते हैं।

अधिवेशन के स्थगित होने के कार्य्य में बाबू रघुनाथप्रसाद ने जो भाग लिया था उसके प्रति तो श्यामकिशोर को अरुचि थी ही; किन्तु, जब उन्होंने श्यामकिशोर को उक्त मामले में सर्वथा उदासीन हो जाने का आदेश दिया तब इस युवक की आत्मा उस उचित विद्रोह की अग्नि से प्रदीप्त हो गयी जो हमारे जीवन को गौरव प्रदान करती है। श्यामकिशोर ने निश्चय कर लिया कि मैं जीवन-समुद्र के किनारे के घोंघों और सीपियों से ठगा नहीं जाऊँगा; वकालत की झूठी प्रतिष्ठा मुझे उस कर्त्तव्य-पालन से विरत नहीं कर सकेगी जो यौवन का शृंगार है।

बाबू रघुनाथप्रसाद को किसी तरह की सूचना दिये बिना ही श्यामकिशोर आर्य्यसमाज के स्थानीय नेताओं से विवाद तथा उनकी साहस-शून्यता की आलोचना करते रहे। उनकी इस मानसिक क्रियाशीलता का क्रमशः नवयुवकों पर प्रभाव पड़ने लगा और एक ऐसी मंडली बनने लगी जो सरकारी शर्तों की कोई परवा न कर के, प्राणों को हथेली में लेकर जुलूस और नगर-संकीर्त्तन का समारोह करने के पक्ष में हो गयी। तीन महीनों के भीतर ही, समाचार-पत्रों के सहयोग से, इस आन्दोलन ने जोर पकड़ लिया, यद्यपि इसका सब से अधिक विरोध बाबू रघुनाथप्रसाद ने किया। जब तक बात केवल लेखों और साधारण व्याख्यानों तक रही तब तक बाबू रघुनाथ प्रसाद उतने गंभीर नहीं हुए थे, यद्यपि समय समय पर वे श्यामकिशोर से इस ढंग की बातें करते ही रहते थे जिनसे स्पष्ट हो जाता था कि वे उनकी कार्य्य-प्रणाली को नहीं पसन्द करते, विशेष कर इस कारण कि अभी वे विद्यार्थी थे।

किन्तु श्यामकिशोर को इन दिनों दिन रात अपने आन्दोलन ही की धुन सवार रहती थी। उन्होंने एक नोटिस निकाली—

'आर्य्य-समाज के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर जुलूस और नगर-सङ्कीर्त्तन के सम्बन्ध में अनुचित शर्तें उपस्थित कर के तथा सरकार की इस कार्य्यवाही के विरोध में आर्य्यसमाजी कार्य्यकर्त्ताओं ने अधिवेशन को ही स्थगित कर के बड़ी गलती की है। मैं न आर्य्यसमाजी हूँ और न सनातनधर्म्मी। मैं इस प्रश्न को किसी भी धर्म्म की दृष्टि से नहीं देखता। मेरा निवेदन केवल इतना है कि नागरिकों के उचित अधिकारों पर सरकार को इस तरह आक्रमण न करना चाहिए; ऐसे आक्रमण प्रायः तभी सम्भव होते हैं जब नागरिकों की ओर से दुर्बलता और अनिश्चय का परिचय सरकारी अधिकारियों को मिलता सरकार की इस धारणा को मिटा देने का उत्तरदायित्व युवक नागरिकों ही पर है। प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार है कि वह समाज के किसी वर्ग को भी उत्तेजना का कोई कारण न देता हुआ सार्वजनिक मार्ग का सदुपयोग कर सके। कमजोर नागरिक अपने इस अधिकार को गँवा देता है, और पुनः तभी प्राप्त कर सकता है जब वह उसकी प्राप्ति के लिए उपयुक्त बलिदान करता है। सरकार ने प्रयाग नगरवासियों के एक वर्ग को अधिकार-वंचित करके केवल उसी का अपमान नहीं किया है; यह अपमान सम्पूर्ण नगर का है और आज एक वर्ग को अधिकार-च्युत करके कल दूसरे वर्ग को भी वैसा ही करने का पथ प्रशस्त किया गया है। सरकार ने यह ज्यादती करके प्रयाग के युवकों के सम्मुख—वे हिन्दू हों या मुसलमान, सिख हों या ईसाई—एक ललकार उपस्थित कर दी है। क्या इस ललकार का उचित उत्तर न दिया जायगा? क्या हम सब असङ्गठित

होकर सरकार के अन्याय के सामने घुटने टेक देंगे ? नहीं, प्रयाग के युवक-वृन्द से मुझे बहुत बड़ी आशाएं हैं; मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे अपने यौवन के अनुकूल ही त्याग करके आगे के लिए सरकार को अधिक सावधान रहने की शिक्षा देंगे।

निवेदक,
श्यामकिशोर

इस घोषणा-पत्र की एक प्रति लेकर श्यामकिशोर पिता की सेवा में पहुँचे। उसे पढ़कर वे मुसकराये, फिर बोले 'तुम्हारी यह घोषणा मेरे लिए तो है नहीं; मै तो बूढ़ा हूँ।'

'आप का आशीर्वाद चाहिए, उसके बिना मेरा सम्पूर्ण परिश्रम व्यर्थ हो जायगा'—श्यामकिशोर ने उत्तर दिया।

बाबू रघुनाथप्रसाद बोले 'बेटा, तुममें महान् कार्य्य करने की इच्छा है, मै तुम्हें हृदय से आशीर्वाद देता और तुम्हारी सफलता की शुभकामना करता हूँ। मैंने जो कुछ विरोध किया उसका कोई खयाल न करना। मैंने जीवन में बड़े कार्य्य नहीं किये हैं, किन्तु उन्हें पहचान सकता हूँ। जाओ, ईश्वर करे तुम्हें इस कार्य्य से यश और मुझे गर्व करने का उचित कारण मिले।'

पिता का आशीर्वाद पाकर श्यामकिशोर निश्चिन्त हो गये। फिर तो प्रज्वलित अग्नि की तरह उत्साह से उद्दीप्त होकर उन्होंने कार्य करना शुरू कर दिया। घोषणापत्र की कुछ प्रतियाँ बाहर भेज देने के बाद वे उसे प्रयाग के कालेजों और स्कूलों में बाँटने के लिए स्वयं गये। स्वयसेवकों की भर्ती होने लगी। एक सप्ताह के भीतर ५०० युवकों ने नाम लिखाकर श्यामकिशोर की अध्यक्षता में कार्य्य करना स्वीकार किया। यह सब होने पर भी श्यामकिशोर को एक अभाव बहुत खटक रहा

था—कमला का कोई पत्र न आना। एक दिन उसके नाम एक कड़ी चिट्ठी लिख कर तैयार करने के वाद जव उन्होंने लिफाफा ढूँढ़ना शुरू किया तो उन्हें कमला के नाम की पहली चिट्ठी मिल गयी। लज्जित होकर उन्होंने नयी चिट्ठी फाड़ डाली और पहली चिट्ठी को नौकर के द्वारा लेटर बक्स में डलवा दिया।

[३८]

चपला सुन्दरी थी और अपने सौन्दर्य पर गर्व करती थी। परन्तु वह कितनी कठोर शासक थी, इसका पता विद्यालय की साधारण अध्यापिकाओं और कर्मचारियों ही को था। वात वात में बिगड़ना, क्रोधपूर्वक चिल्लाना और छोटे से अपराध को बहुत वड़े रूप में उपस्थित करना उसका दैनिक कार्य था। उसका लोहा न मान कर कमला ने औरों के सामने उसको कलंकित सिद्ध करने का जो प्रयत्न किया था उसका पता जव उसे लगा तो अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास रखने के कारण वह खूब जोर से हँसी। जिस समय कमला अपने कमरे में चिराग भी न जला कर सिसक सिसक कर रो रही थी उस समय वह डाक्टर साहव तथा विद्यालय की अन्य दो तीन लड़कियों के साथ अपने प्रभाव की प्रौढ़ता का अनुभव करती हुई कमला-सम्बन्धी क्षमा-याचनात्मक प्रस्ताव के विपय में तरह-तरह की वातें कह कर सम्पूर्ण मण्डली का मनोविनोद कर रही थी। किशोरावस्था में स्वच्छन्द लड़कियों को हँसने ही की सामग्री चाहिए; अपने लिए यथेष्ट मात्रा में मानसिक आहार पाकर आज वे फूली नहीं समाती थीं। चपला एक बात कहती थी तो ये उसकी टीका-टिप्पणी कर उसमें अनेक शाखाएँ फोड़ती थीं; और डाक्टर साहव इन विनोदशीला रमणियों को अपने वाएँ हाथ की इस करामात पर इतनी अधिक प्रसन्न और अपनी शक्तियों के परिचय से इतनी प्रभावित

देखकर मौज के साथ सिगार धुआँ फेंकते थे। थोड़ी देर के मनोरंजन के बाद डाक्टर साहब अपने बँगले पर गये और लड़कियाँ अपने अपने कमरों में गईं।

भोजन आदि से निवृत्त होने के बाद चपला ने आराम-कुर्सी के सहारे पड़े पड़े एक बात सोची—कमला अपने किये पर लज्जित तो हो ही चुकी है, क्या अब और भी कोई ऐसा उपाय है जिससे वह सदा के लिए परास्त हो जाय, सिर उठाने योग्य न रहे। क्योंकि यदि कमला ने कमजोरी न अनुभव की, यदि अपने प्राण और प्रतिष्ठा को अपनी हथेली पर रख कर उसने मेरे जीवन का भंडाफोड़ करने ही का निश्चय किया तो इसमें तनिक सन्देह नहीं कि मैं कहीं की न रह जाऊँगी। यही नहीं, डाक्टर साहब के साथ साथ सभापति आदि को भी ऐसा धक्का लगेगा कि कोई मुँह दिखाने-योग्य न रह जायगा। ऐसी दशा में अधिक अच्छा यह है कि कमला का नैतिक पतन भी हो। और, बचपन से लेकर आज तक गर्व में डूबी रहने वाली, सत्य, सदाचार आदि का नाम लेकर स्वयं को उच्च और मुझे नीच समझने वाली कमला का नैतिक पतन करा देना न केवल इस दृष्टि से आवश्यक है, बल्कि इसलिए भी कि कमला के घमंडी सिर को नीचा कर देना मेरे जीवन की एक आकांक्षा भी है।

इस प्रकार निश्चय कर के चपला ने कमला के दरवाजे पर आकर किवाड़ खटखटाये। जब साधारण आवाज से कोई फल न निकला तो उसने अपनी पूरी शक्ति के साथ किवाड़ों पर धक्का दिया। इस बार सफलता मिली। कमला दोना हाथों से आँखे मींजती हुई, भीतर से साँकल खोल कर सामने आयी; और बोली—'क्या है चपला ! क्यों इस समय कष्ट किया ?'

चपला ने उत्तर दिया—'वहिन जी ! मैंने कष्ट किया या

दिया ? तुम्हें सोते से जगा दिया, क्या यह साधारण अपराध है ?'

कमला झेंप गई। जीवन भर उसने चपला की बड़ी बहन होने का दम भरा था तथा उसकी भलाई के लिए कड़ी-कड़वी सीख दी थी, किन्तु उसका वर्त्तमान आचरण स्पष्ट रूप से उसे असंगत दिखाई पड़ रहा था। कहीं चपला कुछ और न कह बैठे—यह सोच कर कमला का कलेजा धुक धुक करने लगा।

और कोई रास्ता न देखकर उसने बातों का सिलसिला ही बदलने का उद्योग करते हुए कहा—'योंही जरा लेट गई थी, सो ऐसी गहरी नींद आ गयी। अच्छा किया जो तुमने जगा दिया, यह भी कोई सोने का वक्त है ! अभी आठ बजे होंगे ?'

चपला ने उत्तर दिया – 'नहीं बहिन, अब तो नौ बज रहे होंगे।'

कमला ने चौंक कर कहा—'नौ बज गये, अभी तो मैंने भोजन भी नहीं किया। महराजिन आई होगी, दरवाजा खट-खटा कर चली गई होगी। चपला बोली- जाओ, खा आओ, मैं तब तक बैठी हूँ।

कमला असमंजस में पड़ गई। उसने मन में सोचा—इस समय चपला पर विश्वास न करना चाहिए, क्योंकि उसके साथ मैंने शत्रुता का व्यवहार किया है।

उसके इस भाव को ताड़ते हुए चपला ने कहा -जाओ बहिन खा आओ, मैं एक कुर्सी बाहर बरामदे में निकाल कर बैठूँगी।

'नहीं, नहीं, चपला ! यह भी कोई बात है, मैं सोच रही हूँ

कि खाने जाऊँ भी या नहीं, क्योंकि भूख नहीं मालूम हो रही है'—अपनी स्थिति को सँभालते हुए कमला ने कहा।

इसी समय महराजिन फिर कमला को बुलाने के लिए आ गई।

कमला की सारी कठिनाई हल हो गई। उसने महराजिन से कहा—जाओ, थाली लगा कर यहीं ले आओ, रोज से आधा भोजन हो, भूख न होने पर भी इतना इस वजह से खा लूँगी कि कहीं रात को भूख न लग जाय।

महराजिन ने आज्ञानुसार किया। कमला चटाई पर बैठ कर भोजन करने लगी।

चपला चारपाई पर बैठ गई। कुछ देर के बाद बोली—'कमला बहिन! बुरा न मानो तो एक बात कहूँ।'

कमला का हृदय धड़कने लगा। फिर भी अप्रभावित होने का भाव प्रकट करते हुए उसने तनिक आकुलता से पूर्ण स्वर में कहा—'कहो, कहो, चपला! भला मैंने तुम्हारी बात से कभी बुरा माना है।'

च०—'मैं चाहती हूँ कि एक बार तुम डाक्टर साहब से खुल कर बातें करो। गलती तो आदमी से हो ही जाती है, किन्तु, गलती क्षमा करने में मनुष्य कितना उदार हो सकता है, यह मैंने डाक्टर साहब से ही जाना। बहिन! डाक्टर साहब के बारे में तुम्हारे पहले के विचार मुझे सब मिथ्या मालूम होते हैं। तुमने आदमी पहचानने में भूल की। इतना सहृदय और दयालु कोई दूसरा पुरुष तो मेरे देखने में नहीं आया।'

क०—'चपला! अब जो हो गया सो हो गया। उसके लिए पछताना क्या। यह मैं अब भी शुद्ध हृदय से कहती हूँ कि मेरा उद्देश्य तुम्हें कलङ्कित सिद्ध करना नहीं था। मैं तो डाक्टर साहब की ज्यादती की बातें अधिकारियों के सामने लाना

चाहती थी। उसमें तुम्हारा प्रसंग तो थोड़ा था। लेकिन मैं यह नहीं जानती थी कि सभी लोग डाक्टर साहब को देवता-तुल्य समझते हैं और उनकी एक भी त्रुटि बताते ही बिगड़ खड़े हो जायँगे।'

सत्य बात कहने से अपनी क्षुद्रता प्रकट होने की आशंका थी, क्षुद्रता भी ऐसी जिसका कारण मनोभावों के भीतर छिपाने की चीज़ है, न कि दिखाने की। इसलिए कमला ने आज तथ्य बात में जरा सा नमक-मिर्च लगाने का पहला प्रयत्न किया।

च०—'कमला बहिन! मुझे तो इस बात का विश्वास है कि तुम मुझे कोई हानि नहीं पहुँचा सकतीं; क्योंकि तुम मुझसे बड़ी हो, मेरी कोई बात भी बिगड़ती देखोगी तो बाज़ार में ढिंढोरा न पीट कर मुझ से ही कहना अधिक पसन्द करोगी। परन्तु इसी तरह मेरा भी तो कर्तव्य है कि तुम्हें कष्ट न होने दूँ। बात यह है कि डाक्टर साहब सीधे के लिए बहुत सीधे और टेढ़े के लिए बहुत टेढ़े हैं। इसलिए मेरी राय यह है कि उनसे विरोध मिटा लो; पानी में रह कर मगर से बैर करना ठीक नहीं। यही सब बातें सोच कर तो मैं उनकी हाँ में हाँ मिलाया करती हूँ। बहिन जी नौकरी नौकरी ही है, अपने अफ-सरों की बातें माने बिना, उनकी अदब किये बिना काम चल नहीं सकता। अगर अपने बल पर जीविका चलानी है तो दबना पड़ेगा। बहुत अधिक गंभीरता और एकान्त-सेवन से अधिक लाभ नहीं दिखायी देता।'

कमला ने कहा 'तो मैं क्या करूँ, यह बतलाओ। क्या डाक्टर साहब के पास चल कर उनसे क्षमा-प्रार्थना करूँ।'

च०—'नहीं उनके पास चले चलना ही क्षमा-प्रार्थना का सूचक है। मैं तो समझती हूँ कि न इसे करने में कोई हानि है

और न इसे न करने पर तुले रहने में कोई लाभ है। शाम को घूमते हुए चले गए, पार्क वगैरह में जरा साथ साथ हो आये। बस इतने ही में लोग प्रसन्न हो जाते हैं और इतने में अपनी क्षति ही क्या है।'

'फिर मुझे लिखित क्षमा-याचना-पत्र न देना होगा?'—कमला ने कुछ कातर शब्दों में पूछा।

चपला ने उत्तर दिया—'मैं कहती तो हूँ कि जिस प्रस्ताव की प्रतिलिपि तुम्हारे पास आयी है उसे फाड़ कर फेंक दो। डाक्टर साहब से जवाब तलब करने वाला विद्यालय में कोई नहीं है। सभापति वगैरह तो सब उनकी हाँ में हाँ मिलाते रहते हैं। ऐसा करें न तो क्या करें? डाक्टर साहब सभी तरह से तो इन लोगों से बढ़े-चढ़े हैं, विद्या में, धन में, प्रभाव में, पद में। जिन कलेक्टर कमिश्नर आदि सरकारी अफसरों को देख कर हमारे सभापति जी चारपाई से उठ कर प्रणाम करेंगे वे डाक्टर साहब के यहाँ मिलने के लिए आते हैं। डाक्टर साहब और उन लोगों में जमीन-आसमान का फर्क है, कमला बहिन!'

कमला ने उस थोड़े से भोजन में भी अधिकांश छोड़ दिया। उसका मस्तिष्क ऐसी उधेड़बुन में पड़ गया था कि भोजन उसे अच्छा ही नहीं लगा। थाली अलग हटा कर उसने हाथ-मुँह धोया और एक कुर्सी पर बैठ कर कहा—'चपला! मैं थोड़ा विचार करने क लिए समय चाहती हूँ। मैं तुम्हारे प्रस्ताव के अनुसार कर सकूँगी या नहीं—यह मैं कल बता दूँगी।'

'बहुत अच्छा' कह कर चपला उठ खड़ी हुई और कमला से विदा माँग कर कमरे के बाहर हुई। भावी सफलता की कल्पना कर के वह मन ही मन बहुत प्रसन्न हो रही थी।

[३८]

चपला के चले जाने पर कमला विचार सागर में डूब गयी। मैं क्या करूँ—इस प्रश्न का कोई संतोष-जनक उत्तर उसे नहीं मिलता था। जिस व्यक्ति के सम्बन्ध में उसने जन्म भर अच्छी धारणा नहीं रखी उसी के सामने सिर झुका दूँ इसे कमला का अहंकार-पूर्ण व्यक्तित्व स्वीकार नहीं करता था। जिन भावों और सिद्धान्तों का आदर कर के वह डाक्टर शिवप्रसाद की अवज्ञा करती थी उनको सदा के लिए तिलांजलि देकर ही तो वह डाक्टर साहब का आदर करने की ओर प्रवृत्त हो सकती थी। इसलिए उसे वास्तव में दो बातें निश्चित करनी थीं। एक तो यह कि क्या सदाचार का कोई पुरस्कार नहीं? क्या उसके बदले में कष्ट और असुविधा मिलना ही निश्चित है? दूसरी बात यह कि क्या एक अनाथ स्त्री, जिससे जीवन भर किसी ने प्रेम नहीं किया, डाक्टर शिवप्रसाद की चाटुकारी किये बिना निर्वाह नहीं कर सकती? उसे इस समय उन विवाहिता स्त्रियों की याद आई जो पति की जीविका के सहारे अन्तःपुर में महारानी की तरह रहती हैं और लड़कों-बच्चों के साथ गृहस्थी के सुख भोगती हुई जीवन के दिन बिताती हैं। परन्तु, अविवाहिता रहने में भी वह अपना ही अपराध पाती थी। जिस समय डिप्टी साहब उसके विवाह का प्रबन्ध कर रहे थे उस समय उसी ने तो उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। अतएव, वह अपनी इस गलती के लिए पश्चात्ताप करती हुई अपने सामने उपस्थित दोनों प्रश्नों पर विचार करने लगी।

कमला ने सदाचार की जो मीमांसा प्रारम्भ की उसमें वह न जाने कैसे यह बात बिलकुल भूल गई कि किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में बदनामी की बातें फैलाना सदाचार के अन्तर्गत नहीं है, चाहे वह सच ही क्यों न हो; विशेष कर के उस समय तो

उसका औचित्य और भी संदिग्ध हो जाता है जब कोई व्यक्तिगत हानि सहन करने के बाद वह कार्य किया जाता है। साधारण मनुष्य की बुद्धि प्रायः इस प्रकार की ममता से लिपटी रहती है, जिससे सत्य के शुद्ध स्वरूप को देखने में अनिवार्य्य बाधाएँ पड़ जाती हैं। कमला भी यही गलती कर रही थी। परिणाम भी वही हुआ जो ऐसी स्थितियों में प्रायः होता है। धीरे धीरे उसके चित्त में यह बात पैठने लगी कि सदाचार से कोई लाभ नही। यह ऐसे देवता की आराधना है जो कभी बरदान नहीं दे सकता। आजकल उसी स्त्री की पूछ है जो बड़े-बड़े अधिकारियों का मनोरंजन करती रहे, वह मनोरंजन किसी भी सीमा को क्यों न पहुँचे। मैं भी ऐसे ही मनोरंजन की सामिग्री क्यों न बनूँ ? यदि पतन के द्वारा ही मैं अपना सिर ऊँचा कर सकती हूँ, अध्यापिकाओं की मंडली में चमक सकती हूँ, कीमती साड़ियाँ और बढ़िया से बढ़िया गहने पहन सकती हूँ, मोटरों में दोस्तों के साथ उनका और अपना जी बहलाती हुई घूम सकती हूँ तो फिर उस पतन को क्यों न स्वीकार करूँ ? जिस सदाचार के कारण मुझे उपवास, निन्दा और विरोध सहन करना पड़ रहा है उसे लेकर मैं क्या करूँ ? उससे इस जीवन में मुझे कौन सा लाभ मिलेगा ? कमला की विचार-धारा क्रमशः उसे ऐसे पड़ाव पर पहुँचा चुकी थी, जहाँ उसके थके-हारे मन को विश्राम मिल जाने की आशा थी लेकिन आशा की यह धुँधली किरण निराशा के अंधकार में शीघ्र ही विलीन हो गयी; एक भूली बात की स्मृति ने आकर उसके हृदय को फिर से चंचल कर दिया। यह कौन सी बात थी ?

कमला अपने आप को, अपने जीवन के उद्देश्य को भुला कर ही भ्रम के प्रवाह में बही जा रही थी। एकाएक

उसका ध्यान यह सोचने की ओर गया कि मैंने अन्ततो-गत्वा अध्यापिका-जीवन स्वीकार क्यों किया? क्या रोटी के लिए? उसने अपने आप से पूछा। रोटी तो मुझे अपने धर्मपिता के घर मे ही आराम से मिल सकती थी। मैंने तो वास्तव में समाज के उस ऋण को चुकाने के लिए आतुर होकर अध्यापिका-जीवन को स्वीकार किया जो उसने अपनी कृपा-द्वारा मेरे ऊपर चढ़ा रखा है। इस ऋण को चुकता करने का क्या एक यही रास्ता है कि मैं डाक्टर शिवप्रसाद की वासनाओं की पूर्ति का साधन बनूँ? इस प्रश्न की चट्टान पर गिर कर उसकी पूर्व विचार-धारा एक दम से चकनाचूर हो गई।

कमला उच्च आदर्शों के आवरण में फुसलायी जा सकती थी, वह भी धीरे-धीरे। विशेष कर जहाँ चपला से स्पर्धा का भी समावेश हो सकता, वहाँ तो वह शीघ्र ही आकर्षित की जा सकती थी। लेकिन डाक्टर शिवप्रसाद में उसने थोड़े ही दिनों के भीतर इतनी स्थूलता, इतनी अमर्यादा देखी थी कि उनका प्रेम प्राप्त करने में सफल होने के लिए वह चपला के प्रति ईर्षा का अनुभव नहीं करती थी, बल्कि उस पर तरस खाती थी। ऐसी अवस्था में अपने जीवन के मूल उद्देश्य ही को नष्ट होता देख कर वह घबरा गयी और सदाचार की रास ढीली करने के लिए जितनी ही उद्यत हो गयी थी उतनी ही संकुचित हो गयी। आह! मैंने अपने प्यारे धर्मपिता का घर छोड़ कर कितना बड़ा प्रमाद किया! मैं इस स्थान को स्वर्ग समझ कर आई थी, और यह रौरव नरक से भी वीभत्स निकला। और विचित्र बात तो यह कि मैं यहाँ की घृणित वैतरणी नदी में आनन्दपूर्वक स्नान करने के लिए प्रवेश करने जा रही थी। कमरे के किवाड़ द[illegible]कर

के वह चारपाई पर लेट रही; पश्चात्ताप की अग्नि में उसका हृदय जल रहा था।

जिन दिनों कमला चपला की विरोधिनी बन गई थी, उन दिनों मारगरेट लखनऊ में डाक्टर शिवप्रसाद के यहाँ ही ठहरी हुई थी। कमला ने चपला और डाक्टर शिवप्रसाद के कलंकित संबन्ध पर जो आक्रकण करना चाहा था उसको विफल करके कमला का पूर्ण संहार करना ही अब डाक्टर शिवप्रसाद और चपला का उद्देश्य था। इसमें उन्होंने मारगरेट से भी सहायता ली। मारगरेट भी कमला को अपने रास्ते में से निकालना चाहती थी।

लगभग आठ बजे रात को मारगरेट अकेली मोटर में आयी। वह सीधी कमला के बँगले पर आकर दरवाजा खट-खटाने लगी। कमला ने किवाड़ खोल दिये। एक कुत्रिम मुस्क-राहट के साथ उसने मारगरेट का स्वागत किया और आराम कुर्सी में बैठाया; स्वयं चारपाई पर एक हलका रैपर ओढ़ कर बैठ गई।

क०—'अब बनारस जाने का कब विचार है?'

मा०—'मैं तो अब तक चली गयी होती, लेकिन डाक्टर साहब के साथ तुमने जो झगड़ा मोल लिया है उसने मुझे रोक लिया है। उन्होंने तो कार्यकारिणी समिति में अपना त्यागपत्र भी दे दिया था, किन्तु समिति ने स्वीकार न करके उनमें अपनी श्रद्धा प्रकट की है। इसके सिवा डाक्टर साहब यह एक पत्र रजिस्टरी डाक द्वारा बाबू श्यामकिशोर के पास भेज रहे हैं। मैंने समझा बुझा कर आज भर के लिए रोक लिया है।'

यह कह कर मारगरेट ने एक खुला लिफाफा कमला के हाथ में फेंक दिया। कमला पत्र निकाल कर पढ़ने लगी। उसमें लिखा था—

लखनऊ

प्रिय डाक्टर साहब !

मैं जब से विद्यालय में हूँ तब से बराबर देखती आ रही हूँ कि आप चपला ही का पक्षपात करते हैं; मेरे ऊपर तनिक भी कृपादृष्टि नहीं करते। मेरा तो यह जीवन भर का दुर्भाग्य रहा है कि किसी ने मुझे अपने हृदय का प्रेम नहीं दिया। इस प्रेम के लिए भूखी और प्यासी रह कर कब तक मैं गरम आहें भरा करूँ? आप ने एक बार भी मुझे प्रेम भरी निगाह से देखा होता तो मैं अपने जीवन को सफल समझती। आप एक ओर तो मेरी उपेक्षा करते हैं, दूसरी ओर चपला पर सौ जान से निछावर हैं। बाबू श्यामकिशोर से न मेरा व्याह हो सकता है और न मैं उनसे व्याह करना चाहती ही हूँ। वास्तव में विवाह के सम्बन्ध में मेरे और आप के विचार एक से हैं। यह सब होने पर भी आप न जाने क्यों मुझे फूटी आँख भी देखना नहीं चाहते। आप की इसी प्रवृत्ति से ऊब कर मैंने आपके विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ कर दिया है। क्या मैं आशा करूँ कि अब भी आप मेरी ओर दृष्टिपात करेंगे।

आपकी प्रेमदृष्टि की प्यासी

कमला

पत्र पढ़ कर कमला ने मारगरेट की ओर उसे लौटाते हुए कहा, 'तो यह पत्र श्यामकिशोर के पास इस लिए भेजा जा रहा है कि मैं उनकी दृष्टि से गिर जाऊँ। अच्छा है, आप लोगों को जैसा रुचे वैसा कीजिए।'

'नहीं, कमला, मेरे रहते यह बात नहीं होने पावेगी। तुममें और डाक्टर साहब में समझौता कराने ही के लिए मैं ठहर गयी हूँ और यदि तुम मेरी बात मानो तो इस पत्र के भेजे जाने की नौबत ही नहीं आवेगी। मेरे साथ इसी समय चली चलो।

नौ बजे डाक्टर साहब सिनेमा देखने जायँगे। आज तुम भी उनके साथ सिनेमा देख आओ। रास्ते में उन्हें अपनी परिस्थति समझा देना।'

'किस अपराध के लिए मैं उन्हें अपनी परिस्थिति समझाऊँ? मैंने कोई दूषित कार्य नहीं किया है। विद्यालय के सदस्यों के सामने मैंने चपला और उनके सम्बन्ध में जो बातें कहीं वे यथार्थ हैं, उन्हें मैं वापिस नहीं ले सकती। आप लोगों ने मेरा जीवन नष्ट करने का जो षडयन्त्र रचा है उसे मैं अच्छी तरह समझती हूँ। मुझे और किसी ढङ्ग से नहीं दबा पाया तो झूठ और पाप से लदा हुआ जाली पत्र बाबू श्यामकिशोर के पास भेज कर उनकी दृष्टि में मुझे गिराना आप लोगों का उद्देश्य है। आप ले जाइए, इस पत्र को रवाना कर दीजिए।'

यह कहते-कहते कमला की आँखें भर आयीं और रूमाल से वह उन्हें पोछने लगी।

मारगरेट ने कहा, 'कमला भावुकता से काम मत लो। जो बात आसानी से सँभल सकती है उसे उलझाओ मत। मै तुम्हारे हित के लिए कहती हूँ कि तुम डाक्टर साहब के पास चली चलो।'

'मिस मारगरेट, मै आपकी सारी बातें समझती हूँ। आप मेरे हित के लिए व्याकुल न हों; अपने हित के लिए चिन्तित हों। इस जालो पत्र की तैयारी में चपला और डाक्टर शिवप्रसाद को पूरी सहायता देने के बाद मेरे हित के लिए अतिशय आग्रहशाल होने का जो जाल आप बिछा रही हैं, उसमें मैं नहीं आने की। जाइए, कमला अधिक समय तक आप की राह का काँटा न बनेगी।'

मारगरेट का चेहरा सफेद पड़ गया। कमला की बातों के उत्तर में वह कोई जोरदार बात नहीं कह सकी। कुछ देर तक

वह मौन बनी रही। फिर चलने का रुख दिखाते हुए उसने कहा, 'कमला, तुम बड़ी गलती कर रही हो, स्त्रियाँ एक बार बदनाम होकर सदा के लिए मिट जाती हैं। मैं तुम्हें यही सलाह दूँगी कि अपनी अधिक बदनामी मत कराओ।'

'आपकी इस सलाह की मुझे कोई जरूरत नहीं है'—कमला ने तुरन्त ही उत्तर दिया।

मारगरेट कमरे में से निकल कर मोटर में बैठी और डाक्टर शिवप्रसाद के बँगले की ओर रवाना हो गयी।

[४०]

कमला अपने कमरे के भीतर बिजली की रोशनी में घिरी हुई होने पर भी ऐसा अनुभव कर रही थी मानों सघन अंधकार के डरावने काले मुँह में वह न जाने किस ओर धँसती चली जा रही है। उसके पैर चारपाई पर रैपर के भीतर थे, कहीं डगमगाते नहीं थे, लेकिन उसे ऐसा जान पड़ रहा था मानों आँखों के आगे बड़ी ऊँची पहाड़ी चोटियों से भयानक खाइयों और गर्त्तों की ओर ढाल था और एक कदम भी आगे चलने के पहले ही पैर थरथरा रहे थे। लखनऊ मे इन दिनों गुलाबी जाड़ा तो अवश्य ही पड़ने लगता है, लेकिन न जाने क्यों उसके माथे से पसीने की बूँदें चूने लगीं। वह घबरा कर उठी और रैपर चारपाई पर ही फेंक कर कमरे में इधर से उधर टहलने लगी।

कमला निस्सन्देह इस समय संकट-रूपी हिमालय के उस खतरनाक ढाल पर खड़ी थी, जो उसे धक्का देकर बेतहाशा मौत के मुँह की ओर ठेलने ही वाला था—मौत, मौत, भयानक मुँह फैलाये हुए ये दो अक्षर अजगर की तरह उसे निगल जाने के लिए सचेष्ट हो रहे थे। मौत किसे कहते हैं? कमला ने अपने आप से प्रश्न किया। जब मनुष्य में गति का

अभाव हो जाता है, जब वह संसार में केवल दुर्गन्धि फैलाने और दूसरों के जीवन को विषाक्त, रोगपूर्ण बनाने ही में सफल होता है, तभी कहा जाता है कि उसकी मौत हो गई। दुर्गन्धि केवल शरीर ही से नहीं आती, गन्दे मन से भी आती है। तो फिर जिसका मन गन्दा है वह भी तो मर गया। मौत की इस परिभाषा को मान लेने पर क्या डाक्टर शिवप्रसाद और चपला को मुर्दा कहना ठीक न होगा? वास्तव में इन्हें ऐसा मुर्दा मानना चाहिए जिन्हें न क़ब्र मिलती है और न आग। क्या ऐसा मुर्दा बन कर मुझे भी जीना चाहिए? क्या अपने मन में कलंक और लांछन का मैल लपेट कर भी मुझे बेहयाई की जिन्दगी व्यतीत करनी चाहिए? बाबू श्यामकिशोर मेरी कल्पित चिट्ठी के पढ़ने पर क्या मुझे अस्पृश्य, कलुषित न समझेंगे? बाबू जी, अम्मा जी तथा दूसरे सैकड़ों लोग जिनका इस घराने से सम्बन्ध है, मुझे पापिनी समझे बिना कैसे रहेंगे? अधिक से अधिक यही तो होगा कि मेरे सम्बन्ध के इस दोषारोपण पर पहले विश्वास न करें। किन्तु जब कुमारी मारगरेट चपला, डाक्टर शिवप्रसाद आदि मेरे शत्रु उन लोगों को अच्छी तरह समझायेंगे तब वे कब तक इस निराधार लांछन को भी साधार न मानेंगे? इस विषैले वातावरण में मै कैसे जी सकूँगी? और जी कर भी जीवन का कौन-सा उपयोग, कौन सा आनन्द प्राप्त करूँगी! यह सब सोचते-सोचते कमला जीवन की प्राप्ति से विरक्ति का अनुभव करने लगी। यह मौत से मिलने के लिए वैसी ही उत्कण्ठित हो गई जैसी चातकी स्वाती के जल के लिए और कमलिनी सूर्य्य की किरणों के लिए होती है।

यह परिस्थिति क्यों उत्पन्न हो गई, क्यों उसके इतने विरोधी पैदा हो गये, इस सम्बन्ध में स्वयं उसकी कितनी जिम्मेदारी

आतीहै, इस पर विचार करते-करते कमला ने देखा कि वह कम दोषी नहीं है। जिसके पिता द्वारा पालित-पोषित होकर मैंने जीवन पाया, उसी की निन्दा चारों ओर फैलाते फिरना किस प्रकार अनुमोदनीय हो सकता है? डाक्टर शिवप्रसाद में चरित्र-सम्बन्धी दूषण भले ही हों, किन्तु जब तक मेरे पास उन्हें प्रमाणित करने के लिए अकाट्य प्रमाण न हों तब तक उन्हें विज्ञापित करने का मुझे क्या अधिकार है? जब मैंने औरों को लज्जा-पूर्ण स्थिति में रखा तब वे भी मेरे साथ रूरियायत क्यों करें? रही मारगरेट, सो वह अङ्गरेज जाति की कुमारी है। प्रभावशाली पिता की लड़की है, उसके साथ मुझ अनाथ बालिका को प्रतिद्वन्दिता न करनी चाहिए थी। उससे भिड़ने का यह स्वाभाविक परिणाम है कि वह मुझे उचित अथवा अनुचित सभी प्रकार के साधनों द्वारा पराजित करने की कोशिश करे। इतनी गलतियों का परिणाम मौत के सिवा और क्या हो सकता है? केवल मौत मेरे मुँह के कालिख को मिटा सकती है, मेरे यश पर पड़े हुए धब्बे को धो सकती है। तो फिर, आओ मेरी सखी, सबसे प्यारी सखी मौत रानी, मुझे अपनी गोद में लेकर चिर शान्ति दे दो।

लगभग साढ़े आठ बज गये थे। पास ही विद्यालय की छात्राएँ बोर्डिङ्ग में अट्टहास से कमरों को गुँजा रही थीं। गप-शप, आमोद-प्रमोद को छोड़कर उनके सामने दूसरी कोई बात नहीं थी। उन्हें यह क्या पता कि उनकी एक प्रिय अध्यापिका, जिसे वे जी से प्यार करती थीं, ऐसी परिस्थिति में पड़ गई है कि उसके जीवन की रक्षा अब किसी प्रकार नहीं हो सकती।

क्रमशः कमला का विचार निश्चय के रूप में बदला और कुर्सी पर बैठकर वह एक पत्र लिखने लगी :—

श्रीमान् बाबू रघुनाथप्रसाद जी और श्रीमती गायत्री देवी की सेवा में –

मुझे आप लोगों ने अपनी ही कन्या के समान आराम से पाला-पोसा, किन्तु मन्द भाग्य ने मेरा पीछा न छोड़ा और जिसे आपने बचपन में मरने से बचा लिया उसे जवानी में इस समय ईश्वर भी नहीं बचा सकता। आपके प्रेम का अपरिमित मूल्य है, धन्यवाद देकर मैं उसे घटाना नहीं चाहती। बाबू श्यामकिशोर, बहन चपला, रामकरन, रमदेइया आदि सभी को मेरा प्रणाम आशीर्वाद यथायोग्य कहियेगा। जीजा दीनानाथ से मैं अपने सन्देहों को मिटाया करती थी, अगले जन्म में फिर उन्हें कष्ट दूँगी। उनसे मेरी ओर से सब दोषों के लिए क्षमा-याचना कीजिएगा। डाक्टर शिवप्रसाद, कुमारी मारगरेट, आदि के लिए भी मेरे हृदय में द्वेष नहीं है, उन्हें भी मेरा नमस्कार कहिएगा।

एक बार फिर सबको मेरा अन्तिम नमस्कार। गोमती की लहरों में मैं आज लगभग दस बजे रात को अपनी शान्ति पाने के लिए जाती हूँ।

सबकी अपराधिनी
अभागिनी कमला।

यह पत्र लिख कर कमला ने लिफाफे में बन्द किया और उसके ऊपर बाबू रघुनाथप्रसाद का पता लिखा। फिर गोंद लगा कर उसने उसे मेज पर रख दिया। इसके बाद दीनानाथ के नाम डाक से भेजने के लिए एक पत्र तैयार किया और एक बहुमूल्य साड़ी और जम्पर पहन कर उसे जेब में डाला। इस समय उसकी प्रसन्नता का पार न था, इतनी प्रसन्न शायद वह जीवन भर में नहीं थी। कमरे में ताला लगा कर वह छात्रावास की लड़कियों से उनके कमरे में जा-जाकर भेंट करने लगी।

[४१]

सवेरे छात्राएँ यह देख कर बड़ी चकित हुईं कि कमला देवी के भवन में ताला लगा हुआ है। चपला देवी को सूचना दी गई। उन्होंने आकर ताला खुलवाया तो मेज पर पड़े हुए पत्र को पढ़कर अवाक् हो गयीं, उनकी आँखों से आँसू की धारा निकल पड़ी। छात्राओं में से अधिकांश की आँखों में आँसू थे।

कमला का पत्र पढ़कर चपला बड़ी मर्म्माहत हो गयी। डाक्टर शिवप्रसाद और मारगरेट के साथ सहयोग करके उसने कमला के लिए हाल में जो भयानक परिस्थिति खड़ी की थी उसके कारण उसके हृदय में पश्चात्ताप होने लगा। आह! यदि मैंने तनिक भी पता पाया होता कि कमला बहन इतना आघात नहीं सहन कर सकेंगी तो मैं उन्हें क्यों काँटों में घसीटने का प्रयास करती। यह सोचते-सोचते चपला की आँखों से रह-रह कर आँसू निकल आते थे और उसका जी ऐसा हो जाता था कि सब की निगाहों से बच कर वह फूट-फूट कर रोये। लेकिन ऐसा एकान्त उसे मिल नहीं रहा था।

खबर मिलते ही डाक्टर शिवप्रसाद, प्रोफेसर दीनानाथ तथा और बहुत से लोग विद्यालय के भवन में एकत्र हो गये। सब ने कमला का पत्र पढ़ा और हृदय में उसके आन्तरिक भावों का एक चित्र तैयार किया। उस चित्र में कहीं उन्होंने लज्जित होने का कारण और कहीं अनुताप से व्यथित होने की प्रेरणा प्राप्त की। हाल के थोड़े से मतभेद की बात को जाने दीजिए, चपला कुल मिला कर कमला को बहुत प्यार करती थी और उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी। उसकी ओर से जो प्रमाद हो गया था उसकी तह में वास्तव में यह खीझ भी थी कि कमला अपने ऊँचे आसन से उतरकर उसके विरुद्ध

आन्दोलन करने के लिए क्यों तैयार हो गयी; उसने तो समाज की सेवा को ही अपने हृदय में प्रधान रूप से स्थान देकर विद्यालय में प्रवेश किया था, फिर पद-गौरव के अहंकार में उसने अपने आप को क्यों तिरोहित कर दिया? रहे डाक्टर साहब और कुमारी मारगरेट, सो मन ही मन लज्जा और ग्लानि से इनका सिर नीचा हो जाता था, किसी की आँख से आँख मिलाने में इन्हें घबराहट का अनुभव हो रहा था, अनिवार्य्य कर्त्तव्य का पालन करके वे जल्दी से जल्दी वहाँ से भाग जाने ही के लिए रास्ता ढूँढ़ रहे थे। फिर भी किसी की इतनी तीखी निगाह नहीं थी कि वह कमलाके प्राण लेनेवाले अपराधियोंका पता लगाले।

चपला ने सवेरे ही तार दे दिया था; उसके परिणाम स्वरूप बाबू रघुनाथप्रसाद, बाबू श्यामकिशोर, श्रीमती गायत्री देवी आदि सभी शाम तक लखनऊ पहुँच गये।

बाबू दीनानाथ कमला के आत्मोत्सर्ग से बहुत दुखी हुए। उन्होंने अनुमान लगा लिया कि हो न हो कमला की मौत के लिए चपला, डाक्टर शिवप्रसाद और कुमारी मारगरेट उत्तरदायी हैं। वे डाक्टर शिवप्रसाद और कुमारी मारगरेट की मनोवृत्तियों का अध्ययन करने की कोशिश करने लगे। अगले दिन उनके बड़े मकान के किसी कमरे में बाबू रघुनाथप्रसाद, किसी में बाबू श्यामकिशोर, किसी में श्रीमती गायत्री देवी बैठ कर कमला के जीवन की विशेपताओं का स्मरण कर-कर के व्यथित हो रही थीं, इसी तरह एक अलग कमरे में बाबू दीनानाथ भी मग्न थे। यह जो काण्ड हो गया, उसका उत्तरदायित्व किस पर है, इसी की विवेचना करने में वे तन्मय थे, किन्तु ठीक तौर से निश्चय पर वे पहुँच नहीं पाते थे।

एकाएक दीनानाथ को यह स्मरण हो आया कि अगर वे प्र रणा न करेंगे तो बहुत सम्भव है कि लोग भोजन-स्नान आदि

आन्दोलन करने के लिए क्यों तैयार हो गयी; उसने तो समाज की सेवा को ही अपने हृदय में प्रधान रूप से स्थान देकर विद्यालय में प्रवेश किया था, फिर पद-गौरव के अहंकार में उसने अपने आप को क्यों तिरोहित कर दिया? रहे डाक्टर साहब और कुमारी मारगरेट, सो मन ही मन लज्जा और ग्लानि से इनका सिर नीचा हो जाता था, किसी की आँख से आँख मिलाने में इन्हें घबराहट का अनुभव हो रहा था, अनिवार्य्य कर्त्तव्य का पालन करके वे जल्दी से जल्दी वहाँ से भाग जाने ही के लिए रास्ता ढूँढ़ रहे थे। फिर भी किसी की इतनी तीखी निगाह नहीं थी कि वह कमलाके प्राण लेनेवाले अपराधियोंका पता लगाले।

चपला ने सवेरे ही तार दे दिया था; उसके परिणाम स्वरूप बाबू रघुनाथप्रसाद, बाबू श्यामकिशोर, श्रीमती गायत्री देवी आदि सभी शाम तक लखनऊ पहुँच गये।

बाबू दीनानाथ कमला के आत्मोत्सर्ग से बहुत दुखी हुए। उन्होंने अनुमान लगा लिया कि हो न हो कमला की मौत के लिए चपला, डाक्टर शिवप्रसाद और कुमारी मारगरेट उत्तरदायी हैं। वे डाक्टर शिवप्रसाद और कुमारी मारगरेट की मनोवृत्तियों का अध्ययन करने की कोशिश करने लगे। अगले दिन उनके बड़े मकान के किसी कमरे में बाबू रघुनाथप्रसाद, किसी में बाबू श्यामकिशोर, किसी में श्रीमती गायत्री देवी बैठ कर कमला के जीवन की विशेषताओं का स्मरण कर-कर के व्यथित हो रही थीं, इसी तरह एक अलग कमरे में बाबू दीनानाथ भी मग्न थे। यह जो काण्ड हो गया, उसका उत्तरदायित्व किस पर है, इसी की विवेचना करने में वे तन्मय थे, किन्तु ठीक तौर से निश्चय पर वे पहुँच नहीं पाते थे।

एकाएक दीनानाथ को यह स्मरण हो आया कि अगर वे प्रेरणा न करेंगे तो बहुत सम्भव है कि लोग भोजन-स्नान आदि

में भी आलस्य कर दें। इससे शिवराम और नये रसोइये को बुलाकर उन्होंने सबके जलपान, स्नान और उचित समय पर भोजन की व्यवस्था के लिए सावधान रहने की हिदायत कर दी। इसके बाद वे फिर विचार में तल्लीन हो गये। मृत्यु क्या है? जीवन किसे कहते हैं? मनुष्य में वासनायें कहाँ से आती हैं? आदि प्रश्नों की गुत्थियाँ सुलझाने में लगकर वे थोड़ी देर के लिए अपने आप को भी भूल गये।

कुछ देर बाद शिवराम ने आकर कहा, 'आप को बाबू साहब चाय पीने के लिए बुला रहे हैं।'

दीनानाथ ने अपने विचारों को जहाँ का तहाँ छोड़ा और जहाँ बाबू रघुनाथप्रसाद थे वहीं को वे चल पड़े।

चाय पीने के लिए कुर्सी में बैठते हुए दीनानाथ ने बाबू रघुनाथ प्रसाद से कहा, 'बाबू जी, कमला की जीवनी पत्रों में प्रकाशित करानी चाहिए।' श्यामकिशोर और गायत्री देवी ने इसका अनुमोदन किया। बाबू रघुनाथ प्रसाद को भी बात पसन्द आयी। वे थोड़ी-थोड़ी सी चाय पीते हुए कमला के बाल-जीवन की बातें बताने लगे।

उस दिन दोपहर के पहिले ही बाबू दीनानाथ ने कमला की एक जीवनी अंगरेजी और हिन्दी दोनों में लिखकर पत्रों में भिजवा दी। अगले दिन के दैनिक पत्रों में कमला के चित्र के साथ वह छप गयी।

बाबू रघुनाथप्रसाद ने गोमती में कमला की लाश का पता लगाने के लिए बड़ी कोशिश की, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। अन्त में निराश होकर वे सपरिवार प्रयाग वापस चले गये।

श्रीमती गायत्री देवी ने बाबू रघुनाथप्रसाद से आग्रह किया कि कमला का संस्कार सनातन धर्म्म की रीति से होना चाहिए।

इसके लिए कमला के परलोकवास की दसवीं और तेरहवीं तिथि मनाने और कमला के समस्त परिचितों को उक्त तिथियों पर आमंत्रित करने का उन्होंने प्रस्ताव किया। रघुनाथप्रसाद ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। अगले दिन चारों ओर आमंत्रण भेज दिया गया।

दसवीं तिथि के सवेरे से लेकर दस बजे तक खास खास सभी व्यक्ति आ गये—दीनानाथ तथा अन्य सम्बन्धी तो आये ही, डाक्टर शिवप्रसाद, कुमारी मारगरेट लखनऊ से, और मिस्टर सिंह बनारस से आये। मिस्टर सिंह आते ही दीनानाथ के गले लग गये। रघुनाथप्रसाद उनके इस विचित्र व्यवहार से चकित हो गये। उनको चकित देख कर मिस्टर सिंह ने कहा, 'बाबू रघुनाथप्रसाद, मैं आज आपको अपना भाई, कहने के लिए आया हूँ। आप ने मेरी लड़की कमला का पालन पोषण किया और अन्त तक उसे अपनी ही लड़की के बराबर आराम दिया, इसके लिए मैं जीवन भर आपका आभार मानूँगा।'

'आप यह कैसी बात कह रहे हैं, मिस्टर सिंह? आप ईसाई हैं, कमला हिन्दू बालिका थी।'

'नहीं यह सच नहीं है, कमला ईसाई लड़की थी, और मैं उसका पिता हूँ। मैंने उसका नाम मेरी कमलिनी रखा था। बाद को आप के घर आकर वह कमला हो गयी। बाबू दीनानाथ के नाम से पत्रों में कमला की जो जीवनी प्रकाशित हुई है, उसे पढ़ने पर और तारीख मिलाने पर मुझे इसी निर्णय पर आना पड़ा है। आप को कमला प्रदर्शिनी में मिली थी और मेरी लड़की मेरी कमलिनी प्रदर्शिनी ही में खोयी थी। और भी सब बातों पर मैंने अच्छी तरह विचार कर लिया है। आप इसे मानने में आपत्ति क्यों कर रहे हैं?'

रघुनाथप्रसाद ने एक हलकी हँसी हँस कर कहा, 'नहीं, नहीं मुझे आपत्ति क्या हो सकती है? कोई आधार हुए बिना आप जैसा विचारशील आदमी ऐसी बात कैसे कह सकता है!' मैं सहर्ष आप को अपना बन्धु मानता हूँ। पहले भी मानता था, किन्तु अब अधिक घनिष्टता के साथ मानूँगा।'

मिस्टर सिंह—'लेकिन इस घनिष्टता की स्वीकृति का कुछ स्वरूप भी तो होना चाहिए; यदि मैं आप के निकट आऊँगा तो वह दूरी घटेगी ही जो इस समय मुझमें और आप में है। मैं अब अपनी प्यारी लड़की की यादगार में अपने उस सम्पूर्ण रोष को जो मुझे हिन्दू समाज के प्रति है, भुला कर फिर उसमें प्रवेश करूँगा। आपने जिस सहृदयता का परिचय दिया है उसे प्राप्त कर के मैं आप से अलग नहीं रह सकता। मुझे अपनी गोद में लीजिए।'

रघुनाथप्रसाद—'जहाँ भाव है, हृदय का परिवर्तन है, वहीं सब कुछ है। डाक्टर शिवप्रसाद में भाव नहीं था, हृदय-परिवर्त्तन नहीं था, फिर भी कृत्रिम धर्मान्धता-वश, प्रलोभन-द्वारा भी धर्मपरिवर्त्तन कराने वाले ईसाइयों आदि का अनुकरण करके हम लोगों ने उन्हें आर्य्यसमाज में दीक्षित किया। उसका फल क्या हुआ? हमने दीनानाथ को हानि पहुँचा कर कुसंस्कारों से पूर्ण एक व्यक्ति को शक्तिशाली बनने का अवसर दिया, और अपनी शक्ति से उस व्यक्ति ने किसी को लाभ नहीं पहुँचाया। आप यदि हिन्दू समाज में आना चाहते हैं तो आप को शुद्धि के कृत्रिम नियमों का पालन करने की आवश्यकता नहीं है। आप संकल्प मात्र से हमारे हो गये। यही हम लोगों की प्राचीन शुद्धि-परम्परा है। इसी मनुष्य-त्वपूर्ण शुद्धि के द्वारा हमने भूत काल में न जाने कितने विदेशियों को अपना बना लिया था।'

मि० सिंह—'फिर भी लोगों को यह सूचना कैसे मिलेगी कि अब मैं हिन्दू समाज का अंग हूँ।'

रघु०—'आज ही आप कमला के सम्बन्ध के सब कृत्यों का पालन कीजिए; गंगा स्नान, मुंडन आदि आप के हिन्दूत्त्व की घोषणा कर देंगे।'

थोड़ी ही देर में गंगा किनारे लोगों को यह मालूम हो गया कि मिस्टर सिंह सोलहो आने हिन्दू हैं।

[४२]

कमला की तेरहवीं तिथि के समाप्त होने पर दीनानाथ ने दूसरे दिन एकत्र लोगों से कहा, 'आप के जाने के पहले मैं आप को एक सूचना देना चाहता हूँ। कमला ने अपने आत्म-त्याग के पहले एक पत्र बाबू रघुनाथप्रसाद के लिए रख दिया था, जो सबसे पहले चपला के हाथ लगा और उसके हाथ से बाबूसाहब ने पाया। इस पत्र के अतिरिक्त उसी समय उसने एक पत्र मेरे नाम डाक द्वारा रवाना किया जो मुझे, सात आठ दिन हुए, मिला है। वह पत्र मैं आप को पढ़ कर सुनाता हूँ। इस पत्र से आप को मालूम होगा कि कमला कितने उच्च चरित्र वाली महिला थी—

लखनऊ

श्रद्धेय बाबू दीनानाथ जी;

आज मैं आप को अंतिम पत्र लिख रही हूँ और अंतिम बार नमस्कार कर रही हूँ। यह तो आप को मालूम ही होगा कि समाज की सेवा के उद्देश्य से ही, उसके ऋण से उऋण होने के अभिप्राय से ही मैंने 'महिला-विद्यालय' में पैर रखा था। ऐसा जान पड़ा था जैसे महिला-विद्यालय मेरी अनेक कठिनाइयों को हल कर देगा।

मैं बाबू श्यामकिशोर को प्यार करती रही हूँ और यदि व्याह हो सकता तो मैं उनके साथ व्याह करती। किन्तु माता जी और बाबू जी का रुख मैंने इसके अनुकूल नहीं पाया। उनको असुविधा न हो, इसलिए मैं अपने प्यारे घर से भाग खड़ी हुई। बाबू श्यामकिशोर के साथ व्याह कर के भी मैं समाज ही की सेवा करती और प्रयाग में उन्होंने जो सत्याग्रह आरम्भ किया था और जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली—स्वयं मुसलमानों ने प्रार्थना-पत्र दिया कि मसजिद के सामने बाजा बजने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं है—उसमें भाग लेने का मैं विचार करने ही वाली थी कि प्रधान अध्यापिका के पद पर चपला को बिठा कर डाक्टर शिवप्रसाद ने मुझे एक असहनीय व्यथा दे दी। मैं यह मानती हूँ कि मुझे इससे व्यथित न होना चाहिए था। लेकिन मानवी दुर्बलता ने मुझे विवश कर दिया और उसी का परिणाम यह है कि आज मैं आत्म-बलिदान कर रही हूँ।

मै जीना चाहती तो जी सकती थी। असत्य का बादल मेरे निष्कलङ्क जीवन को अधिक समय तक ढके नहीं रख सकता था; कभी न कभी भंडाफोड़ होता और जो लोग थोड़ी देर के लिए मुझे घृणा के योग्य समझते वे ही बाद को सच्ची बात जान कर पश्चात्ताप करते। लेकिन औरों के पाप से अधिक मुझे अपने पाप के लिए प्रायश्चित करना था और मेरा वह पाप था चपला के प्रति ईर्ष्या-द्वेष की आग में जलना। अपने इसी द्वेष-भाव के कारण मैंने अपनी प्यारी छोटी बहन के प्रति अन्याय किया है, यही नहीं स्वयं अपनी आत्मा पर परदा डाला है। इसलिए मेरे इस प्रायश्चित्त को आप उचित और उपयोगी मानिए। इसके द्वारा मेरा चरित्र धुल कर निर्मल हो जायगा।

मेरे इस प्रायश्चित्त का एक और रहस्य है। मानव जीवन आजकल एक अत्यन्त संकीर्ण घेरे में सिमिट कर बैठ गया है। विज्ञान की उन्नति में अपना चरम संतोष अनुभव कर के मनुष्य केवल अपनी स्थूल भूख को मिटाने के सुन्दर से सुन्दर साधन एकत्र कर रहा है; किन्तु इस प्रकार जहाँ वह एक ओर मोटा पड़ रहा है वहाँ दूसरी ओर अत्यन्त जर्जर कंकालप्राय दिखायी देकर एक विचित्र कुरूपता का दृश्य भी उपस्थित कर रहा है। उसने जीवन में सम्पूर्णता और सरलता का प्रवेश करने वाले उस सत्य की खोज बन्द कर दी है, जिसके रस से हमारे शरीर और मन को आहार मिलता है। नागरिक जीवन का विकास और ग्राम-जीवन का ह्रास हमारे भीतर इस वृद्धि-शाली कृत्रिमता का परिणाम है। इसी कृत्रिमता ने हमारी सत्य-सम्बन्धी खोज को बाजारू काम बना दिया है; हमारे चरित्र की महत्ता को चाँदी के टुकड़ों के लोभ के नीचे दबा दिया है; हमें पड़ोसी के जीवन को विषादमय बनाने वाली विषाक्त गैस बना डाला है। मैं अपना बलिदान कर डंकेकी चोट पर कहना चाहती हूँ कि स्त्रियों और पुरुषोंकी शिक्षा का जो उद्देश्य और जो स्वरूप हमारे विद्यालयों और कालेजों में प्रचलित है उसका अन्त होना चाहिए; हमारी शिक्षण-संस्थाओं में शरीर के झूठे शृंगार और मन के अनवरत संहार, तथा कामुकता, विलासिता आदि के प्रसार का जो व्यापार प्रचलित है उसे बिदा करके हमें उन आश्रमों की स्थापना करनी चाहिए जहाँ सत्य की खोज के दीवाने भूखे और प्यासे रह कर भी अपना कार्य्य जारी रख सकें। ये आश्रम बड़े-बड़े रेल के स्टेशनों और सिनेमा-'मन्दिरों की बगल में नहीं बनाये जा सकते; इनका निवास तो प्रकृति की गोद में शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा करने वाले, कोलाहल से परे सुदूर ग्रामों ही में हो सकता है। मैं मर

कर अपनी पूरी शक्ति के साथ समाज से कहना चाहती हूँ कि नागरिक जीवन का मूल्य बढ़ा कर गावों को उजाड़ो मत। यही मेरी सेवा है। आशा है, इस क्षुद्र सेवा को प्राप्त करके समाज मुझे अपने ऋण से मुक्त कर देगा।

भूल चूक के लिए क्षमा कीजिएगा। श्याम बाबू से कहिएगा कि मैं उन्हें अगले जन्म में मिलूँगी। इस जन्म में, यदि हो सके तो, कुमारी मारगरेट को निराश न करें।

आप की कृपापात्री
कमला

कमला के इस पत्र को सुन कर किसी की आँखों में आँसू आये, किसी के कलेजे से ठंडी साँस निकली, और किसी के चेहरे पर की सारी श्री खो गयी।

\+ + +

इसी दिन संध्या की धुंधली रोशनी में अपने चेहरे की प्रभा को धूमिल बनाये हुए मारगरेट श्यामकिशोर के कमरे में आयी, जहाँ चपला अपने भाई से सहायता लेकर एक तैल-चित्र की सफाई में लगी हुई थी।

'मैं आप से कुछ कहना चाहती हूँ', श्यामकिशोर को सम्बोधित करते हुए मारगरेट ने कहा।

मारगरेट की ओर पूरा रुख करके श्यामकिशोर ने कहा, 'क्या अलग चलूँ ?'

'नहीं, यहीं कहूँगी। मैंने कमला के बलिदान की विभीषिका प्रस्तुत करने में प्रमुख भाग लिया है। यह अपराध मैंने आप के प्रति किया है। इसका प्रायश्चित मुझे आप से ही पूछना है।'

श्या०—'इसका प्रायश्चित यही है कि कमला के आदर्श की पूर्ति में लगो। इस जीवन में मेरा और तुम्हारा मिलना

यदि कहीं हो सकता है तो इसी प्रयत्न में। अपना एक एक मिनट इसी कार्य्य में लगा कर मैं भी शुद्ध हो जाऊँगा और तुम भी शुद्ध हो जाओगी।'

मारगरेट ने खोकर भी श्यामकिशोर को पा लिया। वह चपला के पास बैठ कर उसके काम में सहयोग करने लगी।

तैलचित्र की सफाई हो चुकने के पश्चात् चपला ने अपने बक्सों में से कीमती साड़ियाँ, जेकेट और जम्परों का गट्ठर इकट्ठा कर के बंगले के फाटक के पास दियासलाई लगा दी। बरामदे में खड़े खड़े दीनानाथ और मिस्टर सिंह मुसकराते हुए इस दृश्य को देख रहे थे। डाक्टर शिवप्रसाद स्टेशन जाने के लिए ताँगे पर बैठ चुके थे। वे वहाँ की बहुत सी बातों को अनदेखी कर डालना चाहते थे और वहाँ से भागना तो इतने वेग से चाहते थे कि शायद हवाई जहाज की तेजी भी उन्हें कम लगती। फिर भी था तो ताँगा ही, कुछ देर तक रुकना ही पड़ा, निगाह दौड़ी तो देखा कि चपला दीनानाथ के पैर पकड़ कर फूट फूट कर रो रही है और स्वयं दीनानाथ की आँखों से आँसू की धारा बह रही है।

डाक्टर शिवप्रसाद ने ताँगे वाले से चिढ़कर कहा, 'क्यों देर करते हो जी, जल्दी चलो।'

ताँगा चल पड़ा, एक बनावटी मुसकराहट के साथ उन्होंने दीनानाथ और मिस्टर सिंह आदि की ओर हाथ उठाये और क्षण भर की भी उनकी दृष्टि को सहन करने में असमर्थ हो कर अन्यमनस्क हो गये।

क्या कमला के त्याग ने उनमें भी कोई परिवर्त्तन उत्पन्न किया था?